

आनन्दाश्रमं कृतग्रन्थावलिः

ग्रन्थाङ्कः ५९

केळकरोपाहवापूजद्विरचिता

श्राद्धमञ्जरी ।

एतत्पुस्तकं

वे० शा० रा० आगाशे इत्युपाह्वित्तात्रेयशास्त्रिभिः संशोधितम् ।

तच्च

हरि नारायण आपटे

इत्यनेन

पुण्याख्यपत्तने

आनन्दाश्रममुद्रणालये

आयसाक्षरैर्मुद्रयित्वा

प्रकाशितम् ।

शालिवाहनशकाब्दाः १८३१

ख्रिस्ताब्दा. १९०९

(अस्य सर्वेऽधिकारा राजशासनानुसारेण स्थायतीकृताः)

मूल्यं रूपकद्वयम् । (रु० २)

आदर्शपुस्तकोल्लेखपत्रिका

अस्य श्राद्धमञ्जरीग्रन्थस्य पुस्तकानि यैः परहितैकपरतया संस्करणार्थं प्रदत्तानि तेषां नामादीनि संज्ञाश्च कृतज्ञतया प्रकाश्यन्ते—

- (क.) इति संज्ञितम्—रत्नागिरिनिवासिनां वे० सं० रा० वाळ्दीक्षित पाठ-
णकर इत्येतेषाम् । अस्य लेखनकालः शके १७८९
- (ख.) इति संज्ञितम्—रत्नागिरिनिवासिनां वे० रा० गोपाळदीक्षितपटवर्धन
इत्येतेषाम् । अस्य लेखनकालः शके १८०७
- (ग.) इति संज्ञितम्—पुण्यपत्तननिवासिनां वे० रा० रामभट्टगुणे इत्येतेषाम् ।
अस्य लेखनकालः शके १८००

समाप्तेयमादर्शपुस्तकोल्लेखपत्रिका ।

अथ श्राद्धमञ्जरीस्थविषयानुक्रमः ।

| विषयाः | पृष्ठाङ्कः | विषयाः | पृष्ठाङ्कः |
|---|------------|--|------------|
| अथ मङ्गलाचरणम् | १ | पयः | ११ |
| श्राद्धपरिभाषारम्भः | ११ | निर्यासाः | ११ |
| श्राद्धयोग्यदेशः | ११ | इक्षुविकाराः | ११ |
| निषिद्धदेशः | ११ | लवणानि | ११ |
| परकीयगृहे श्राद्धप्रसक्तौ | ११ | दूपितान्नानि | ११ |
| श्राद्धात्पूर्वं बालादीनां भोज- नादिनिषेधः | ११ | जलम् | ११ |
| स्त्रीणां नियमाः | ११ | पाकपात्राणि | ५ |
| श्राद्धयोग्यदर्भाः | ११ | आयसनिषेधः | ११ |
| चन्दनाद्यनुलेपनानि | ११ | आसनानि | ११ |
| श्राद्धयोग्यपुष्पाणि | २ | भोजनपात्राणि | ११ |
| निषिद्धपुष्पाणि | ११ | अर्घ्यपात्राणि | ६ |
| उक्तपात्राणि | ११ | अर्चनादिपात्राणि | ११ |
| निषिद्धपात्राणि | ११ | संभारनिधानार्थं कृष्णाजिनम् | ११ |
| अथ धूपदीपौ | ११ | पाकार्थमग्निः | ११ |
| वस्त्राणि | ११ | श्राद्धदिनकृत्यम् | ११ |
| यज्ञोपवीतानि | ११ | पाककर्तारः | ११ |
| श्राद्ध उक्तान्नानि | ११ | श्राद्धभूमौ निषिद्धपदार्थाः | ११ |
| निषिद्धान्नानि | ११ | श्राद्धकाले कुक्कुटादिदर्शन- निषेधः | ११ |
| अथोक्तशाकानि | ३ | अन्नदोषे शुद्धिः | ११ |
| उक्तफलानि | ११ | अथ ब्राह्मणाः | ७ |
| निषिद्धफलानि | ११ | ब्राह्मणपरीक्षावश्यकत्वम् | ११ |
| मूलानि | ११ | ब्राह्मणसंख्या | ११ |
| कन्दाः | ११ | शाखाभेदाद्यवस्था | ११ |
| जलजानि | ११ | ब्राह्मणनिमन्त्रणम् | ११ |
| इक्षुदण्डः | ११ | विप्रकर्तृकजपः | ८ |
| शुण्ठ्यादीनि | ११ | विप्रनियमाः | ११ |
| द्रवाः | ११ | कर्तुर्नियमाः | ११ |

| विषयः | पृष्ठाङ्कः | विषयः | पृष्ठाङ्कः |
|---|------------|---|------------|
| संध्याद्यधिकारार्थं प्रायश्चित्तम् | ११ | नामगोत्राद्युच्चारणसंकल्प- कालः | ११ |
| निमन्त्रितविप्रत्यागे | १२ | सव्यापसव्यनिर्णयः | ११ |
| विप्रस्यान्यत्र गमने | ११ | देवकर्मधर्माः | १९ |
| श्मश्रुकर्मादि विप्राणाम् | ११ | पित्र्यकर्मधर्माः | ११ |
| श्राद्धारम्भकालः | ११ | मन्त्रादौ प्रणवादिनिषेधः | ११ |
| श्राद्धकाले श्राद्धतिथ्यमावे पार्वणश्राद्धतिथिनिर्णयः | ११ | उपचाराणां द्विस्त्रिर्दानम् | ११ |
| एकोद्दिष्टतिथिनिर्णयः | ११ | यवोदकादि | ११ |
| आमश्राद्धे हिरण्यश्राद्धे च तिथिनिर्णयः | ११ | पदार्थप्रोक्षणादि | २० |
| अथामावास्यानिर्णयः | ११ | ब्रह्मदण्डः | ११ |
| प्रसङ्गादिष्टिनिर्णयः | १२ | स्वागतम् | ११ |
| पार्वणस्थालीपाकनिर्णयः | १३ | द्वितीयनिमन्त्रणम् | ११ |
| इष्टौ चन्द्रदर्शननिषेधः | ११ | पाद्यमण्डलम् | ११ |
| पिण्डपितृयज्ञेऽमावास्यानि- र्णयः | १४ | पाद्यविधिः | ११ |
| अथ श्राद्धारम्भः | ११ | पाद्यान्त आचमनम् | २१ |
| पवित्रकानिर्णयः | १५ | विप्रोपवेशनम् | ११ |
| धर्मधारणकालादि | ११ | दीपस्थानम् | ११ |
| आचमनकालः | ११ | अतिथिमोजनम् | ११ |
| श्राद्धसंकल्पः | ११ | नीवीबन्धः | २२ |
| पितृशब्दोच्चारणनिर्णयः | १६ | तृतीयसंकल्पादि | ११ |
| संबन्धादिक्रमः | ११ | पाकप्रोक्षणम् | ११ |
| नामोच्चारणम् | ११ | श्राद्धमूमौ गयादिध्यानम् | ११ |
| नामाज्ञाने | ११ | अथ देवार्चा | ११ |
| गोत्राज्ञाने | १७ | अर्घ्यविधिः | २३ |
| दर्शश्राद्धे पितरः | ११ | आवाहनम् | ११ |
| धैश्वदेवनामानि | ११ | देवोत्पत्तिध्यानम् | ११ |
| विभक्तिनियमाः | १८ | ऊर्ध्वपुण्ड्रादिनिषेधः | २४ |
| | | काण्डानुसमयादि | ११ |
| | | अथ पित्रर्चा | ११ |
| | | अर्घ्यादिविधिः | ११ |
| | | अर्चनोत्तरकृत्यम् | २५ |

श्राद्धमञ्जरीस्थावंपयानुक्रमः ।

| विषयाः | पृष्ठाङ्कः | विषयाः | |
|-------------------------------|------------|-------------------------------|-----|
| भोजने मण्डलम् ... | ... | काकस्पर्शं न दोषः... | ... |
| भोजनपात्रस्थापनम् ... | ... | पत्न्याः पिण्डप्राशनम् ... | ११ |
| मस्ममयादा ... | २६ | अनेकमायापक्षे ... | ११ |
| करशुद्धिः ... | ... | गर्भिण्यादीनां पिण्डप्राशन- | |
| अथाग्नौकरणम् ... | ... | निषेधः ... | ३८ |
| अन्नपरिवेषणम् ... | २८ | पिण्डप्रतिपत्तिः ... | ११ |
| अन्ननिवेदनम् ... | ... | विकिरदानम् ... | ११ |
| ब्रह्मार्पणम् ... | २९ | विकिरप्रमाणम् ... | ३९ |
| भोजने विप्रनियमाः ... | ... | विकिरप्रतिपत्तिः ... | ११ |
| अभिभ्रवणम् ... | ३० | विप्रहस्तशुद्ध्यादि ... | ११ |
| अथ प्रायश्चित्तानि... | ... | कर्तुंस्तिलकविधिः... | ४० |
| विप्रयोर्मिथः स्पर्शं ... | ... | उच्छिष्टपात्रचालनम् ... | ११ |
| उच्छिष्टस्पर्शं ... | ... | स्वस्तिवाचनादि ... | ११ |
| उच्छिष्टपात्रे ... | ... | दक्षिणादानम् ... | ११ |
| अमेध्यस्पर्शं ... | ... | विशेषदक्षिणाः ... | ११ |
| मार्जारादिस्पर्शं ... | ... | अथ स्वधावाचनादि ... | ४१ |
| मक्षिकाद्युपघाते ... | ... | उच्छिष्टोद्वासनकालः ... | ४२ |
| विप्रवमने होमविधिः ... | ... | गृहशुद्धिः ... | ४३ |
| पुनःश्राद्धावृत्तिः ... | ३२ | अथ वैश्वदेवनिर्णयः ... | ११ |
| विप्रगुदस्रावे ... | ३३ | श्राद्धाङ्गभोजनम् ... | ११ |
| विप्रस्य मार्जारस्पर्शं ... | ... | उपवासप्राप्तौ ... | ११ |
| मूत्रकरणे ... | ... | ग्रहणवेधे ... | ४४ |
| शूद्रादिस्पर्शं ... | ... | अन्यश्राद्धशेषभोजने ... | ११ |
| तृप्तिप्रश्नः ... | ... | शूद्रभोजननिषेधः ... | ११ |
| उत्तरापोशनादिं ... | ३४ | अथ श्राद्धाङ्गतर्पणम् ... | ११ |
| हस्तधावनम् ... | ... | क्वचित्तर्पणनिषेधः ... | ११ |
| पिण्डदानम्... | ... | तर्पणविधिः... | ४५ |
| पिण्डप्रमाणम् ... | ३५ | नित्यतर्पणे क्वचित्तिलानिषेधः | ४६ |
| नीवीविसर्जनम् ... | ३६ | जीवत्पितृकस्य ... | ४७ |
| पिण्डपूजनम् ... | ... | पितरि संन्यस्ते ... | ११ |
| पिण्डोपघाते प्रायश्चित्तम् .. | ३७ | अथ पार्वणश्राद्धकालः ... | ११ |

| विषयः | पृष्ठाङ्क | विषयः | पृष्ठाङ्क. |
|---|-----------|---------------------------------------|------------|
| अथ दर्शश्राद्धप्रयोगः ... | ४८ | वृद्धिश्राद्धीयपरिभाषा ... | ११ |
| अथ दर्शश्राद्धाङ्गन्तर्पणम् ... | ४९ | अत्र वैश्वदेवनिर्णयः ... | ८४ |
| दर्शश्राद्धमनुपनीतोऽपि कुर्यात् ... | ६२ | मातृकापूजननिर्णयः ... | ११ |
| दर्शश्राद्धाकरणे प्रायश्चित्तम् | ११ | मात्रादिजीवने निर्णयः ... | ११ |
| अथ गृह्यपरिशिष्टोक्तश्राद्ध- प्रयोगः ... | ११ | मातृकापूजनप्रयोगः ... | ८५ |
| सूत्रोक्तपार्वणश्राद्धप्रयोगः | ६७ | नान्दीश्राद्धप्रयोगः ... | ८६ |
| व्यतिषङ्गप्रयोगः ... | ७१ | सूत्रोक्तो नान्दीश्राद्धप्र० ... | ९३ |
| अधिकारिभेदाद्यवस्था ... | ७३ | अथ श्राद्धानुकल्पाः ... | ९७ |
| केवलाग्नीकरणप्रयोगः ... | ७४ | यथोक्तविप्रालाभे ... | ११ |
| अथ काम्यश्राद्धम् ... | ११ | मातृश्राद्धे सुवासिन्यः ... | ११ |
| शास्त्रान्तरोक्तानि काम्यश्रा- द्धानि ... | ७५ | विप्रैकत्वे श्राद्धविधिः ... | ११ |
| तिथिश्राद्धानि ... | ११ | वर्मबहुश्राद्धम् ... | ९८ |
| वारश्राद्धानि ... | ११ | पतिनिधिना श्राद्धम् ... | ९९ |
| नक्षत्रश्राद्धानि ... | ७६ | अथाऽऽमश्राद्धम् ... | ११ |
| योगश्राद्धानि ... | ११ | अथ हिरण्यश्राद्धम् ... | १०१ |
| पिण्डरहितश्राद्धानि ... | ११ | सांकल्पविधिना श्राद्धम् ... | ११ |
| काम्यश्राद्धे विश्वे देवाः ... | ७७ | ब्रह्मार्पणविधिना श्राद्धम् | १०३ |
| काम्यश्राद्धे पितरः ... | ११ | संकटे होमविधिना श्राद्धम् | १०४ |
| काम्यश्राद्धानां प्रयोगः ... | ११ | केवलपिण्डदानम् ... | ११ |
| चतुर्दश्यामेकोद्विष्टम् ... | ७८ | यथासंभवदानादि ... | ११ |
| सपिण्डकसांकल्पिकश्रा- द्धानि ... | ११ | गवां तृणदानादि ... | ११ |
| नक्षत्रयोगाणां ह्यासवृद्धित्वे निर्णयः ... | ११ | अष्टकाश्राद्धाशक्तौ ... | १०५ |
| काम्यश्राद्धानां तर्पणनिर्णयः | ११ | अथ क्षयाहश्राद्धम् ... | ११ |
| अथ वृद्धिश्राद्धं तत्कालः... | ७९ | मलमासे प्रथमाब्दिकनि- र्णयः ... | १०६ |
| अत्र विश्वे देवाः ... | ११ | दर्शे वार्षिकप्राप्तौ ... | ११ |
| ब्राह्मणसंख्या ... | ११ | क्षयाहतिथिमासयोरज्ञाने निर्णयः ... | ११ |
| | | भार्यारजोदर्शने निर्णयः ... | ११ |
| | | आशौचप्राप्तौ ... | ११ |
| | | ग्रहणप्रसक्तौ ... | ११ |

| विषयः | पृष्ठाङ्कः | विषयः | पृष्ठाङ्कः |
|---|------------|--|------------|
| श्राद्धदिने भार्याया ऋतावे- कादशीवते च पार्वणेको- द्विष्टनिर्णयः | १०७ | कृत्तिकाश्राद्धम् | ११ |
| पितृव्यादीनां श्राद्धनिर्णयः | १०७ | कपिलापथीश्राद्धम् | ११ |
| जीवत्पितृकर्तृकश्राद्धम्... | १०८ | माघ्यावर्षश्राद्धम् ... | ११ |
| एकोद्विष्टश्राद्धविधिः ... | १०८ | अन्वटक्यश्राद्धम् ... | १३० |
| आब्दिकश्राद्धप्रयोगः ... | १०९ | नवम्यां मातुः श्राद्धम् | ११ |
| मातृश्राद्धे विशेषः ... | १०९ | सापत्नमातृबहुत्वे विधिः ... | १३१ |
| सापत्नमात्राविश्राद्धप्रयोगः | ११० | द्वादश्यां संन्यस्तपितुः श्राद्धम् | १३२ |
| सहगमनश्राद्धप्रयोगः ... | १११ | मघान्नयोदशीश्राद्धम् | ११ |
| पितामहजीवने | १११ | गजच्छायाश्राद्धम् ... | १३३ |
| अतिक्रान्तश्राद्धप्रयोगः ... | १११ | चतुर्दश्यां शस्त्रहतश्राद्धम् ... | १३४ |
| एकोद्विष्टश्राद्धप्रयोगः ... | ११२ | दौहित्रकर्तृकश्राद्धम् | ११ |
| संन्यासिनामाब्दिकश्रा० | ११२ | अथ ग्रहणश्राद्धम् ... | १३५ |
| आराधनप्रयोगः | ११५ | अर्धोदयश्राद्धम् ... | ११ |
| चतुर्विधा भिक्षवः | ११५ | पक्षकयोगश्राद्धम् ... | १३६ |
| विधवाकर्तृकश्राद्धम् | ११७ | अमायां योगविशेषश्रा० | ११ |
| विधवाया नित्यतर्पणम् ... | ११७ | महाव्यतीपातश्राद्धम् | ११ |
| विधवाया नान्दीश्राद्धप्रसक्तौ | ११७ | महावारुणीश्राद्धम् | ११ |
| अनुपनीतकर्तृकश्राद्धम् ... | ११७ | व्यतीपातयोगश्राद्धम् | १३७ |
| सकृन्महालयश्राद्धनिर्णयः.. | १२० | मीमाष्टमीश्राद्धम्... | ११ |
| सकृन्महालयश्राद्धप्रयोगः | १२० | युगादीनां योगविशेषे श्रा- द्धम् | १३८ |
| अथ नित्यश्राद्धम्... | १२३ | शौर्णमासीश्राद्धानि | ११ |
| पणवतिश्राद्धानि ... | १२४ | गोष्ठीश्राद्धम् ... | १३९ |
| अथ युगादिश्राद्धम् ... | १२५ | शुद्धिश्राद्धम् ... | ११ |
| अथ मन्वादिश्राद्धम् ... | १२५ | दैविकश्राद्धम् ... | ११ |
| अथ संक्रान्तिश्राद्धम् ... | १२६ | औपचयिकश्राद्धम् | ११ |
| वैधृत्यव्यतीपातश्राद्धम् ... | १२७ | अथ सद्यःश्राद्धम् ... | १४० |
| महालयश्राद्धानि | १२८ | ऐच्छिकश्राद्धम् ... | ११ |
| प्रोष्ठपदीश्राद्धम् | १२९ | नवान्नश्राद्धम् ... | ११ |
| भरणीश्राद्धम् | १२९ | तीर्थयात्रायां घृतश्राद्धम् ... | १४१ |

| विषयाः | पृष्ठाङ्कः | विषयाः | पृष्ठाङ्कः |
|------------------------------|------------|-----------------------------|------------|
| यात्रायां प्रस्थानविधिः ... | १४१ | नदीलक्षणम्... .. | १५० |
| प्रसङ्गात्तीर्थविधिः ... | १४२ | महानदीनां रजोदोषः ... | १५१ |
| तत्र कार्पटीविषः ... | १४३ | महानद्यः | १५२ |
| मार्गगमनधर्माः ... | १४४ | गङ्गादीनां रजोदोषामावः | १५३ |
| मार्ग आशौचप्राप्तौ ... | १४५ | सप्त नदाः | १५४ |
| रजस्वलायाम् ... | १४६ | अधिमासादौ यात्रानि० | १५५ |
| यानेषु फलतारतम्यम् ... | १४७ | तीर्थविधिप्रयोगः ... | १५६ |
| नावा गमने | १४८ | तत्र सर्वप्रायश्चित्तम् | १५७ |
| मार्गे कर्मनाशा नदी चेत् ... | १४९ | वपनविधिः | १५८ |
| अधिकारिनिर्णयः ... | १५० | दन्तधावनम् | १५९ |
| अस्थिनयनेऽधिका० ... | १५१ | महासंकल्पः | १६० |
| अन्योद्देशेन स्नानम्... .. | १५२ | दशविधस्नानानि ... | १६१ |
| कुशप्रतिकृतौ स्नानम् ... | १५३ | अथ तीर्थप्रार्थनामन्त्रः | १६२ |
| प्रसङ्गेन यात्रागमने ... | १५४ | स्नानविधिः | १६३ |
| अन्ययात्राकरणे फलम् ... | १५५ | तर्पणप्रयोगः | १६४ |
| तीर्थादि गच्छन्परावृत्तौ ... | १५६ | तीर्थश्राद्धप्रयोगः ... | १६५ |
| मार्गे पुण्यनदीप्राप्तौ ... | १५७ | संक्षेपतस्तीर्थश्राद्धम् | १६६ |
| तीर्थप्राप्तौ विधिः ... | १५८ | तीर्थपूजादिप्रथमादिनकृत्यम् | १६७ |
| तीर्थोपवासः | १५९ | द्वितीयादिदिनकृत्यम् | १६८ |
| अथ तीर्थस्नानविधिः ... | १६० | प्रत्यागमनविधिः | १६९ |
| मुण्डनविधिः... .. | १६१ | घृतश्राद्धं दधिश्राद्धं वा | १७० |
| पुनस्तीर्थप्राप्तौ | १६२ | प्रयागयात्रायां विशेषः | १७१ |
| प्रयागे विशेषः | १६३ | सुवासिन्याः स्नानविधिः | १७२ |
| क्वचित्स्नाननियेधः | १६४ | वेणीदानविधिः | १७३ |
| मलमासप्राप्तौ | १६५ | गङ्गाप्रार्थनादिमन्त्रः | १७४ |
| आशौचप्राप्तौ | १६६ | यमुनाप्रार्थनादि | १७५ |
| तर्पणनिर्णयः | १६७ | सरस्वतीप्रार्थनादि ... | १७६ |
| तीर्थश्राद्धनिर्णयः | १६८ | अस्थिप्रक्षेपनिर्णयः | १७७ |
| तीर्थश्राद्धानुकल्पाः ... | १६९ | अस्थिशुद्धिप्रयोगः ... | १७८ |
| अविभक्तानां भ्रातृणां नि० | १७० | अस्थिवेदनद्रव्याणि | १७९ |
| नदीनां रजोदोषे | १७१ | अस्थिनयनविधिः ... | १८० |

| विषया. | पृष्ठाङ्कः | विषयाः | पृष्ठाङ्कः |
|------------------------------|------------|---|------------|
| अस्थिप्रक्षेपविधिः ... | ... | समुद्रदर्शनादौ मन्त्राः ... | ... |
| प्रयागे देहत्यागविधिः ... | १६६ | ज्ञानसंकल्पः ... | ... |
| तीर्थादौ प्रतिग्रहनिषेधः ... | १६७ | ज्ञानविधिः ... | १७६ |
| गर्मलक्षणम् ... | १६८ | तर्पणप्रयोगः ... | ... |
| तीरलक्षणम् ... | ... | समुद्रपूजाप्रयोगः ... | १७७ |
| क्षेत्रलक्षणम् ... | ... | प्रकीर्णकतीर्थधर्माः ... | ... |
| संकटे प्रतिग्रहे ... | ... | श्राद्धसंपाते निर्णयः ... | १७८ |
| काशीयात्रासंकल्पः ... | ... | श्राद्धविधौ निर्णयः ... | १८० |
| गयायात्रासंकल्पः ... | ... | कर्तुराशौचप्राप्तौ ... | ... |
| गयाश्राद्धमाहात्म्यम् ... | ... | दातृगृहे मरणादौ ... | १८१ |
| गयायात्राविधिः ... | ... | कर्तुर्भार्यारजोदर्शने ... | ... |
| गयाश्राद्धविधिः ... | १६९ | श्राद्धकर्त्र्याः पत्न्या रजोदर्शने ... | ... |
| संन्यासिनां विशेषः ... | ... | श्राद्धमोजने प्रायश्चित्तम् ... | १८२ |
| जीवत्पितृकाणां विशेषः ... | ... | प्रायश्चित्तप्रत्याम्नायाः ... | १८३ |
| मातृश्राद्धे विशेषः ... | ... | निमन्त्रितो विप्रोऽन्यत्र मोक्षं | |
| गोदावरीप्रार्थनादि ... | ... | गच्छेत्तदा ... | ... |
| सिंहस्थे गुरौ विशेषः ... | ... | मोजनसमये शूद्रादिदर्शने | |
| कन्यागते गुरौ ... | ... | प्रायश्चित्तम् ... | ... |
| कृष्णाप्रार्थनादि ... | ... | श्राद्धदिने कर्तुर्वन्तधावने | |
| समुद्रयात्राविधिः ... | १७० | प्रायश्चित्तम् ... | ... |
| समुद्रघानकालः ... | ... | ऋतौ भार्यागमने प्रायश्चित्तम् | ... |
| क्षेत्रवासिनां विशेषः ... | ... | अनृतौ भार्यागमने प्रायश्चि- | |
| समुद्रदर्शनादिमहिमा ... | ... | त्तम् ... | ... |
| दर्शनप्रकारः ... | १७२ | वाग्लोपे प्रायश्चित्तम् ... | १८४ |
| मुण्डने विशेषः ... | ... | अनादेशे साधारणानि प्राय- | |
| तर्पणविधिः ... | ... | श्चित्तानि ... | ... |
| समुद्रपूजनादि ... | १७३ | श्राद्धाकरणे दोषः ... | ... |
| श्राद्धविधिः ... | ... | श्राद्धकर्तुः फलम् ... | ... |
| समुद्रयात्राप्रयोगः ... | १७४ | ग्रन्थसमाप्तिलक्षणम् ... | ... |

ॐ तत्सद्ब्रह्मणे नमः ।

श्राद्धमञ्जरी

केळकरोपाह्ववापूभट्टविरचिता ।

नत्वा गणाधिपं दुर्गां श्रीसाम्बं विमलेश्वरम् ।
आश्वलायनमाचार्यं सद्गुरुं ब्रह्मपूरुषम् ॥ १ ॥
सूत्रं नारायणीं वृत्तिं कारिकाः परिशिष्टकम् ।
धर्मशास्त्रनिबन्धांश्च विलोक्य विदुषां मुदे ॥ २ ॥
केळकरोपनाम्ना श्रीमहादेवस्य सूनुना ।
वापूभट्टेन विदुषा क्रियते श्राद्धमञ्जरी ॥ ३ ॥

अथातः पार्वणे श्राद्धे काम्य आभ्युदयिक इत्यादि भगवताऽऽश्वलाय-
नेन गृह्यसूत्रे श्राद्धान्युक्तानि अन्यान्यपि शास्त्रान्तरोक्तानि तेषां मध्ये
कतिपयानां प्रयोगोऽभिधीयते । तत्राऽऽदौ प्रयोगलाघवार्थं संक्षेपात्परि-
भापार्थः संगृह्यते । श्राद्धार्थं पुण्यदेशे पुण्यतीर्थे^१ तुलसीवनादौ वा तद-
लामे स्वगृहे शीलग्रामसंनिधौ दक्षिणाप्रवणं स्थलं परिकल्प्य परिश्रित्य
तद्गोमयेनोपलेपयेत् । रुक्षकृमिहतदुष्टगन्धयुक्तपरकीयदेशान्तरिक्षदेशा-
दिनिषिद्धदेशे श्राद्धं न कार्यम् । प्रवासादौ परकीयगृहे श्राद्धप्रसक्तौ
तद्गृहस्यामिनोऽनुज्ञां गृहीत्वा श्राद्धं कार्यम् । श्राद्धदिने श्राद्धात्पूर्वं
बालेभ्यो भोजनदानमतिथिभ्यो भिक्षादिदानं गृहे रङ्गमालाकरणं कर्त्वा
कण्ठे मालाधारणं गन्धाद्यलंकरणं च न कार्यम् । स्त्रियोऽपि मुक्तकेश-
त्वरोदनहसनाकारणभाषणादीनि न कुर्युः ।

अथ श्राद्धे ग्राह्याग्राह्यपदार्थाः । तत्र दर्भाः समूलाः सकृदाच्छिन्ना
वा स्निग्धाः पुष्टा निर्दोषा ग्राह्याः । हरिता अतिप्रशस्ताः । वर्ज्यानाह
लघुहारीतः—

पथि दर्भाश्चितौ दर्भा ये दर्भा यज्ञभूमिषु ।
स्तरणासनपिण्डेषु पद् कुशान्परिवर्जयेत् ॥
ब्रह्मयज्ञे च ये दर्भा ये दर्भाः पितृतर्पणे ।
हता मूत्रपुरीषाभ्यां तेषां त्यागो विधीयते ॥ इति ।

अथानुलेपनानि । चन्दनागरुकेशरकस्तूरिकायक्षकर्दमादीनि प्रश-
स्तानि । यक्षकर्दमलक्षणं विष्णुधर्मोत्तरे—

कर्पूरागरुककोलदर्पकुङ्कुमचन्दनैः ।

यक्षकर्षम इत्युक्तो गन्धः स्वर्गेऽपि दुर्लभः ॥ इति ।

दर्पः कस्तूरिका । कुङ्कुमं केशरम् ।

अथ पुष्पाणि । चम्पकागरत्यशतपत्रिकातिलपुष्पकमलमल्लिकातगराशोकादीनि प्रशस्तानि । वर्ज्यानि तु केतकी शोणकरथी रधतूरकिंशुकजपास्त्रापिका कुरण्टकबहुलकुन्दादीनि । उग्रगन्धानि अगन्धानि श्मशानवृक्षोद्भवानि रक्तवर्णानि च वर्जयेत् । कमलानि तु आरक्तान्यापि प्रशस्तानि । जातीपुष्पं निषिद्धमिति वृद्धपाज्ञरत्नकव्यः । प्रशस्तमिति स्कान्दे । उक्तानुक्तग्रहणाद्विकल्प इति हेमाद्रिः । निषेधः पिण्डविषय इति कमलाकरः । पत्राणि तुलसीभृङ्गराजर्वायवाङ्कुरादीनि प्रशस्तानि । विल्वपत्रं निषिद्धम् । माधरीये स्मृत्यर्थसारे च तुलसी निषिद्धा । तुलसीनिषेधो निर्मूल इति हेमाद्रिः ।

अथ धूपः । गुग्गुलचन्दनागरुकर्पूरदेवदार्दादिनिर्मितो घृतमधुयुक्तः प्रशस्तः । प्राण्यङ्गजो हस्तमातहत उग्रगन्धश्च निषिद्धः । दीपरतु तिलतैलयुक्तो घृतयुक्तो वा प्रशस्तः । वसोद्भवो निषिद्धः ।

अथ वस्त्राणि । कौशेयक्षौमकार्यासकुङ्कुलादीन्यस्तानि प्रशस्तानि अहतलक्षणमाह चन्द्रिकायां प्रचेताः—

इयच्छौतं नमं श्वेतं सदृशं यन्न धारितम् ।

अहतं तद्विजानीयात्सर्वकर्मसु पावनम् ॥ इति ।

अटहस्तं नमं श्वेतमिति ग्रन्थान्तरे पाठः । कृष्णवर्णमलिनोपमुक्तसच्छिद्रदशरहितरजकधौतानि निषिद्धानि । कार्यासवस्त्रं निषिद्धमिति हेमाद्रावादित्रपुगणे । कार्यासवस्त्रानिषेधोऽन्यसंभव इति निर्णयसिन्धौ । वस्त्राभावे यज्ञोपवीतानि । सत्यपि वस्त्रे यज्ञोपवीतानि दातव्यानीति हेमाद्रिः ।

अथान्नानि । वीहियत्रमुद्ग्यामाकिनीपारप्रियङ्गुमापतिलचणकयावनालवेषुयत्रगोधूमादिनिर्मितादनपक्वान्नपरमान्नभक्ष्यभोज्यपूरिकाकृसरपायसादीनि प्रशस्तानि । तानि च तैलपक्वानि सिग्धान्युष्णान्यतिप्रशस्तानि । आढक्यराजमाषमसूराकोद्भवनिष्पावमारिपगवेधुकशतपुष्पाराजसर्पपवनमुद्गकुलित्यादीनि वर्जयेत् । तिलमुद्गमापातिरिक्तानि सर्वाणि

कृष्णधान्यानि निपिद्धानि । यावनाला जोंधळा इति प्रसिद्धाः । राज-
मायाश्वला इति प्रसिद्धाः । निष्पावा यक्षाः । मारिपं राजगिरा इति
प्रसिद्धम् । केषांचिन्मते यावनालचणकादीनि निपिद्धानि । विहि-
तनिपिद्धानां विकल्प इति कमलाकरः । धाना लाजाः पृथुकाश्च शकं-
राक्षीरसंयुक्ताः प्रशस्ताः ।

अथ शाकानि । कालशाकतण्डुलीयफल्गुवांस्तुकपनसकोशातकी*
कदलवृहतीफेलादीर्घश्वेतमूलककुस्तुम्बरीशीतकन्दल्यादीनि प्रशस्तानि ।
तण्डुलीयं माठ इति प्रसिद्धम् । फल्गु, उदुम्बरम् । वास्तुकं चन्दनव-
धुवा इति प्रसिद्धम् । शीतकन्दली रतालू इति प्रसिद्धा । फाञ्जीचूका-
धारण्यकानि च प्रशस्तानि । वज्यानि तु कृष्माण्डशिग्रुवंशाग्रकृष्णक-
र्कटीपारिभद्रच्छत्राकादीनि । अलाबुपटोउपिण्डाल(लु?)कादीनां विहि-
तनिपिद्धत्वाद्विकल्पः । पिण्डालक पंढरमिति प्रसिद्धम् । घृत्तालाबु
निपिद्धनेवेति निर्णयसिन्धौ । श्वेतघृन्ताकं निपिद्धमिति हेमाद्रिः । तेन
कृष्णस्यानिषेध इति चन्द्रिकामाधवौ । कृष्णस्यापि निषेध इति कम-
लाकरः ।

अथ फलानि । कदलीफलाभ्रफलबदरपनसामलकदाडिमखजूरद्रा-
क्षाप्रियालबीजपूराबिल्वकपित्थनोरिकेलादीनि प्रशस्तानि । निपिद्धानि
तु करीरबिडङ्गजम्बीरजम्बूकरमर्दशेलुटुण्डीफलकलिङ्गादीनि । प्रियालं
चारमिति प्रसिद्धम् । करमर्दं करवन्दम् । शेलुः श्लेष्मांतको भोक-
रसंज्ञः । लोमशानि फलानि च निपिद्धानि । केषांचिन्मते बिल्वकपि-
त्थनालिकेरादीनि निपिद्धानि । विहितनिपिद्धत्वाद्विकल्पः । रक्ताबिल्वं
तु निपिद्धमेव ।

मूलानि त्वाद्रंकरुहरिद्रादीनि श्वेतमूलानि च प्रशस्तानि । गाज-
रादीनि रक्तमूलानि च निपिद्धानि ।

कन्दाः सूरणादयः प्रशस्ताः । पलाण्डुलशुनगृञ्जनादयो निपिद्धाः ।
गृञ्जन पलाण्डुमेद इति सिन्धौ । लशुनभेद इति ग्रन्थान्तरे ।

* क ख. पुस्तकाया समसे दोडकी इतिटिप्पणी ।

१ ग केवि° । २ क. ख 'शाक त°' । ३ ग 'वास्तुक°' । ४ क ख 'फल दी°' । ५ ग.
नालिकेरादी° । ६ ग 'ग्रन्थान्तरे' । ७ ग केवि° ।

मरुण्डशृङ्गाटकादीनि जलजानि प्रशस्तानि । मरुण्डं मखाणा इति प्रसिद्धम् । शृङ्गाटकं शिङ्गाटक इति प्रसिद्धम् ।

इक्षुदण्डः प्रशस्तः । शुण्ठी प्रशस्ता । पिप्पलीमरीचानि च प्रशस्तानि । मरीचान्याद्राणि निपिद्धानि शुष्काणि प्रशस्तानीति हेमाद्रौ । पिप्पल्यपि निपिद्धेति तत्रैव । कमलाकरस्तु पिप्पलीमरीचादेः प्रत्यक्षस्य निषेधो न त्वन्यद्रव्यमिश्रस्येत्याह । सर्पपद्रवो मधु महिषीघृतं च प्रशस्तम् । गोरसाः सर्वे प्रशस्ताः । तत्रापि कपिलायाः प्रशस्ततरः । महिषीक्षीरमाविकं पयश्च निपिद्धम् । लोहिता वृक्षनिर्यासा निपिद्धाः । हिङ्गुर्कूर्पूरजीरकलवङ्गैलापत्रिकादीनि प्रशस्तानि । इक्षुविकाराः शर्करागुडादयः प्रशस्ताः । सैन्यचं सामुद्रं च लवणं प्रशस्तम् । अन्यानि निपिद्धानि । पित्रादेर्जीवतो यत्पियं दातुश्च यन्मनोभिलषितं प्रशस्तं वेत्तद्यत्नेन देयम् । प्रियमपि निपिद्धं चेन्न दातव्यमिति सिन्धौ ।

हेमाद्रौ ब्रह्माण्डे—

आसनाखटमन्नाद्यं पादोपहतमेव च ।

अमेध्यैर्जङ्गमैः स्पृष्टं शुष्कं पर्युषितं च यत् ॥

द्विःस्विन्नं परिदग्धं च तथैवाग्रावलेहितम् ।

शर्कराकीटपापाणैः केशैर्यच्चाप्युपहृतम् ॥

पिण्याकं मथितं चैव तथा लवणकं च यत् ।

सिद्धाः कृताश्च ये भक्ष्याः प्रत्यक्षलवणीकृताः ॥

वाससा चावधूतानि वज्यानि श्राद्धकर्माणि ॥ इति ।

अस्यार्थं कमलाकर आह—द्विःस्विन्नं यत्सकृत्पाकेन भक्ष्यमपि हिङ्गुजीरकादिसंस्कारार्थं पुनः पच्यते तद्द्वयम् । यत्तु तिक्तशाकान्नाधिकारादि द्विःपाकेनेव भक्षणार्हं तन्न निपिद्धम् । अग्रावलेहितमास्वादितपूर्वम् । पर्युषितस्य सदा निषेधोऽपि पुनर्वचनं स्नेहरकस्य वटकादेः पर्युषितस्य ग्राह्यत्वेनोक्तस्यापि निषेधार्थमिदमिति ।

चन्द्रिकायां शङ्खः—विडालोच्छिष्टमाघ्रातं श्राद्धे यत्नेन वर्जयेत् । इति ।

अथ प्रशस्तं जलमाह याज्ञवल्क्यः—

शुचि गोतृप्तिरुत्तोर्यं प्रकृतिस्थं महोगतम् ॥ इति ।

वज्र्यं जलमुक्तं ब्राह्मे—दुर्गन्धि फेनिलं क्षार पङ्किलं पल्लोदकम् ।

न भवेद्यत्र गोतृप्तिर्नक्तं यच्चाप्युपाहृतम् ॥

यच्च सर्वार्थमुत्सृष्टं यच्चाभोज्यनिपातजम् ।

तद्वर्ज्यं सलिलं तात सदैव श्राद्धकर्मणि ॥ इति ।

निपातो जलाशय इति कमलाकरः । नारदीये—

त्यजेत्यर्युषितं पुष्पं त्यजेत्यर्युषितं जलम् ।

न त्यजेज्जाह्नवीतोयं तुलसीपद्मबिल्वकम् ॥ इति ।

पाकपात्राणि तु सुवर्णादिधातुजानि तदलाभे नयान्याच्छिद्राणि
सृन्मयानि प्रशस्तानि । आयसपात्रादीनि निन्दितानि न ग्राह्याणि ।

आयसनिषेधो वायुपुराणे—

न कदाचित्यजेदन्नमयस्थालीषु पैतृकम् ।

अयसो दर्शनादेव पितरो विद्ववन्ति हि ॥

कालायसं विशेषेण निन्दन्ति पितृकर्मणि ॥ इति ।

फलानां चैव शाकानां छेदनार्थानि यानि च ।

महानसेऽपि शस्त्राणि तेषामेव हि संनिधिः ॥

इष्यते नेतरस्यात्र शस्त्रमात्रस्य दर्शनम् ।

श्राद्धदेशेषु विदुषा पितृणां प्रीतिमिच्छता ॥

महानसोपयुक्तानामपि कार्यं न दर्शनम् ॥ इति ।

आदित्यपुराणे—पक्वान्नस्थापनार्थेषु शस्यन्ते दारुजान्यपि ।

दूर्वादीन्यपि कार्याणि यज्ञियैरपि दारुभिः ॥ इति ।

अथ विप्रोपवेशनार्थान्यासनानि सौवर्णानि राजतानि ताम्रमयानि वा
प्रशस्तानि । तदशक्तौ क्षौमदुकूलनेपालकम्बलादीनि । तत्राप्यशक्तौ
श्रीपर्णावारणक्षीरजम्बूकदम्बाम्रार्थकुलशमीशेलुवृक्षोद्भवानि । अत्य-
शक्तौ तृणमयानि पर्णजानि कुशनिर्मिता वृसी(वृषी)विष्टरादि च प्रश-
स्तानि । अयःशङ्कुमयानि भग्नान्यग्निदग्धानि आयसानि च वर्जयेत् ।

अथ भोजनपात्राणि । तानि सौवर्णराजतकांस्यमयानि प्रशस्तानि ।
तदलाभे पलाशपत्रमधूरुपत्रानामतानि । तद(तेषाम)प्यलाभे कुटजो-
दुम्बरफुक्षचूतपनसजम्बूपुन्नागचम्पकपत्रनिर्मितानि । उक्तान्यवृक्षोद्भ-
वानि ताम्रपैत्तलायससीसत्रपुजादीनि निषिद्धानि । पृथ्वीचन्द्रोद-
यस्तु कांस्यपात्रं निषिद्धमित्याह । ग्राह्यकदलीपत्राण्यपि प्रशस्तानीति
स्मृतिसंग्रहे । निषिद्धानीति हेमाद्रौ । उक्तानुक्तग्रहणाद्विकल्पः । विक-
ल्पितानामपि पदार्थानामाचाराद्यवस्था बोध्या ।

अथाध्यपात्राणि । तान्याहाऽऽचार्यः-तैजसाश्ममयमृन्मयेषु त्रिषु
पात्रेष्वेकद्रव्येषु धेति । अश्ममयं स्फटिकादिनिर्मितमिति कमलाकरः ।
मृन्मयं तु हस्तघटितमेव ।

कुलालचक्रनिष्पन्नमासुरं दैविकं न तत् ।

तदेव हस्तघटितं दैविकं मृन्मयं भवेत् ॥

इति च्छन्दोगपरिशिष्टात् । गृह्यकारिकाभाष्ये-

अष्टाङ्गुलं भवेत्पात्रं पितृणां राजतं शुभम् ।

दशाङ्गुलं तु देवानां सौवर्णं यच्च चोदितम् ॥ इति ।

हेमाद्रौ प्रजापतिः-सौवर्णं राजतं ताग्रं सङ्गं मणिमयं तथा ।

यज्ञियं चमसं चापि अर्घ्यार्थं पूरयेद्बुधः ॥ इति ।

दैवे पित्र्ये च ताम्रपात्राणीति वैजवापः । अलाभे यथासंभवं पलाशप-
त्रपुटादीनि वा भवन्तीति कारिकाभाष्ये । सङ्गपात्रमतिप्रशस्तमिति
कलिकायाम् । शिलापात्रं दारुपात्रं च निषिद्धमिति सिन्धौ । अर्चना-
दिपात्राणि रौप्यमयानि सङ्गमयानि च प्रशस्तानि । तदलाभे ताम्र-
मयानि । संभारनिधानार्थं कृष्णाजिनमतिप्रशस्तम् । तदुक्तं प्रयोगपारि-
जाते नागरसण्डे-

कृष्णाजिनस्य सांनिध्यात्पितृणामक्षया गतिः ।

आस्तीर्य दक्षिणाग्नीवमेवमुत्तरलोमकम् ॥

सर्वांश्श्राद्धस्य संभारांस्तस्योपरि निवेशयेत् ॥ इति ।

पाकार्थमग्निस्तु यथाचारं गृह्याग्निर्लौकिकाग्निर्वा । आश्वलायनानां
तु लौकिकाग्निरेवेति बहवः । एवं श्राद्धार्हपदार्थानुयकल्प्य गोमयोदका-
दिभिर्भूमिभाजनादिशौचं दिधाय कर्ता श्राद्धदिने प्रातः स्नात्वा शुक्ल-
वासा मौनी जितेन्द्रियः सङ्गश्राद्धार्थं पात्रं स्वयमेव कुर्यात् । अशक्तौ
पत्नी । तदभावे बान्धवाः । तदभावे सपिण्डसगोत्रसमानप्रवरमित्र-
कृतोपकारिणः । तदभावे मातृपितृवंशजाः । पतिपुत्रवत्यः स्त्रियोऽपि ।
मातृपितृवंशजा अपि बन्ध्याजारिणीर्गार्मणीविधवाद्यो वज्याः ।
श्राद्धमूर्धौ पादुकोपानच्छत्रचित्रान्वररक्ताम्यररक्तपुष्पमार्जारवण्टारवा-
दीनि वर्जयेत् । श्राद्धकाले कुङ्कुटवराहपतिका रुवृषलवृषलीपतिरजस्व-
लापण्डादीनां दर्शनं निषिद्धम् । कुङ्कुटवराहश्वकाकादिस्पृष्टमन्नं त्यजेत् ।

रजस्वलाचण्डालादिवीक्षितमपि त्यजेत् । आपदि त्वल्पोपहतौ मृद्भस्म-
-हिरण्योदकं चान्ने प्राक्षिप्य शुद्धवतीभिः कूष्माण्डीभिः पावमानीभिस्त-
-रत्समन्दीभिरभिमन्त्रितजलेन दूर्भैः प्रोक्षणाच्छुद्धिः । याज्ञिकास्तु
शुद्धवत्यादिभिर्यवोदकाभिमन्त्रणं कृत्वा तेनैव पाकप्रोक्षणं कुर्वन्ति ।

अथ ब्राह्मणाः । ते च श्रुतशीलवृत्तसंपन्ना ब्रह्मविदः सत्यभाषिण
आहिताग्नेयस्तत्सुता वाऽसमानगोत्रा असमानप्रवरा असंबन्धिनश्चो-
-त्तमाः । तदलाभे मातामहमातुलभागिनेयदौहित्रजामातृगुरुशिष्यत्विग्मि-
-त्रश्वशुरशालकबन्धुत्रयसंबन्धिनोऽन्तेवासी समानप्रवरैकगोत्राः श्रुताद्यु-
-क्तगुणयुक्ता भोज्याः । कर्तुर्दौहित्रो गुणयुक्तश्चेदतिप्रशस्तः । द्विपदो-
-गिहीनाधिकाङ्गकृतमज्योतिषवेद्यवृत्तिराजभृत्यगायकवेदविक्रयिदेवलक-
-दारसुतामित्यागिकाणान्धबधिरमूकपङ्गुखल्वाटकुनसिनटकृष्णदन्तपाति-
-तवात्यजारकर्मनिरतशूद्रयाजकग्रामयाजकायाज्ययाजऋश्मश्रुहीनजटिल-
-क्लीबकुष्ठिकुब्जवामनपुत्रहीनपरशासोपनीतवार्धुपिकसर्धविक्रयचौरकर्म-
-निरतादयो वर्जनीयाः । एकस्मिन्भ्रातृ द्वौ भ्रातरौ पितृपुत्रौ च नैव
भोज्यौ । ब्राह्मणपरीक्षावश्यकृत्यगुक्तं मनुना—

न ब्राह्मणं परीक्षेत दैवे कर्मणि धर्मवित् ।

पित्र्ये तु कर्मणि प्राप्ते परीक्षेत प्रयत्नतः ॥

देवकार्याद्विजातीनां पितृकार्यं विशिष्यते ॥ इति ।

ब्राह्मणसंख्यामाह चन्द्रिकायां वसिष्ठः—

द्वौ दैवे पितृकृत्ये त्रीनेकैकमुभयत्र वा ।

भोजयेत्सुसृद्धोऽपि न प्रसज्जेत विस्तरे ॥ इति ।

वैश्वदेविके दशाष्ट पद् चत्वारो वेति चन्द्रिकायाम् । पित्रादीनामेकै-
-कस्य स्थाने त्रयः पञ्च सप्त नव वेति वृत्तौ । अत्र शाखापरत्वेन शक्त्या
वा व्यवस्था बोध्या । दैवे न्यूनवयस्का पित्रादिषु क्रमेण वृद्धवृद्धतर-
-वृद्धतमा इति शौनकीये वृत्तौ च । सति संभवे पितृस्थान बह्वृचाः
पितामहस्थाने याजुषाः प्रपितामहस्थाने सामगाः । एकश्चेच्छन्दोग
एव । तदलाभे बह्वृचाः । यत्नेन भोजयेच्छ्राद्धे बह्वृचं वेदपारगामिति
मनूक्तेः । तदसंभवे यथालाभमृग्वेदाद्यन्यतमवेदपारगाः । अथ ब्राह्मणनि-

मन्त्रणम् । तच्च श्राद्धदिनात्पूर्वेद्युः सायंहोमानन्तरं मुक्तवत्सु द्विजेषु श्राद्धदिने वा प्रातर्होमानन्तरं ब्राह्मणगृहं गत्वा कार्यम् । अशक्तौ पुत्रादिना । तद्विधिमाह शौनकः—

गृहीत्वाऽमुकसंज्ञस्यामुकगोत्रस्य चामुके ।

श्राद्धे तु वैश्वदेवार्थं करणीयः क्षणस्त्रया ॥ इति ।

गृहीत्वित्यत्र पादाविति शेषः । उभौ चरणौ गृहीत्वा निमन्त्रयेदिति नागरखण्डोक्तेः । दैवे दक्षिणं पादं पित्र्ये सव्यमुपसंगृह्य निमन्त्रयेदिति प्रचेताः । जानुं(नु) स्पृष्ट्वा निमन्त्रयेदिति वाजपेययाजिपद्धतौ । विप्रधर्ममाह मयूखे भृगुः—

आमन्त्रितो जपेद्दोग्धीमासीनस्तु निपद्भिणः ।

श्राद्धान्ते वामदेवीयं श्राद्धमोक्ता न दोषभाक् ॥ इति ।

आमन्त्रितो निमन्त्रितः । आसीन उपविष्टः । श्राद्धान्ते विसर्जनोत्तरम् । उच्छिष्टाचमनान्त इति केचित् । दोग्धीमुपह्वये सुदुयामिति हिंकृष्वतीमिति वा । एकवचनादेकामेवेति मयूखे । निपद्भिणस्तु इन्द्र इहयाम कौशा०वाशीमन्त ऋष्टिम०स इपुहस्तैः०इति तिस्र ऋचः । वामदेवीयं कथा नश्चित्र इति तृचम् । केचिद्द्वामदेव्यं सामेत्याहुः । अथर्ववेदी तु हिंकृष्वतीमित्यादिमन्त्रान्स्वशासोक्ताञ्जपेत् । यजुर्वेदी तु आब्रह्मन्ब्राह्मण इत्यादीनि यजूंषि दोहनपदोपेतानि जपेदिति हेमाद्रिः । स इपुहस्तैः०नमः ककुमाय०नमो निपद्भिण०इति निपद्भिण(णो) मन्त्राः । वामदेवीयं कथा न इति तृचम् । सामवेदिनस्त्वाह गोभिलः—

आमन्त्रितो जपेद्दोहान्त्रियुक्तस्त्वृषभाञ्जपेत् ।

अतीपद्गंश्च तत्रैव जप्त्वाऽश्रीयाद्विजोत्तमः ॥ इति ।

निमन्त्रणानन्तरं ब्राह्मणानां श्राद्धकर्तुंश्च ब्रह्मचर्यं भवति । तदाह जावालः—

दन्तधावनताम्बूलं तैलाभ्यङ्गममोजनम् ।

रत्यौपधपरान्नं च श्राद्धकृत्सप्त वर्जयेत् ॥

शुद्धीचन्द्रोदये यमः—पुनर्मोजनमध्वानं भाराध्ययनमैशुनम् ।

संध्याप्रतिग्रहं होमं श्राद्धमोक्ताऽष्ट वर्जयेत् ॥

संध्यानिषेधः प्रायश्चित्तात्पूर्वं ज्ञेयः । तत्प्रायश्चित्तमाहोशना—

दशकृत्यः पिवेदापो गायत्र्या श्राद्धभुग्द्विजः ।
ततः संध्यामुपासीत जपेच्च जुहुयादपि ॥ इति ।

होमोऽत्र स्वस्यैव । अन्यहोभेऽनधिकारदर्शनात् । निर्णयसिन्धौ
बृहस्पतिः—

द्विनिशं ब्रह्मचारी स्याच्छ्राद्धकृद्ब्राह्मणैः सह ।
पुनर्भोजनमध्याने भारमायासमैथुनम् ॥
श्राद्धकृच्छ्राद्धभुक्चैत्र सर्वमेतद्विवर्जयेत् ।
स्वाध्यायं कलहं चैव दिवास्वापं तथैव च ॥ इति ।

चन्द्रिकायां प्रचेताः—श्राद्धमुक्त्वातरुत्थाय प्रक्षुर्याद्वन्तधावनम् । इति ।

कर्ता निमन्त्रितं विप्रं नैव त्यजेत् । प्रमादात्त्यागे तं प्रयत्नेन प्रसाद्य
भोजयेत् । बुद्धिपूर्वकत्यागे चान्द्रायणप्रायश्चित्तम् । निमन्त्रितो विप्रोऽपि
नान्यत्र भोक्तुं गच्छेत् । विलम्बं च न कुर्यात् । दोषश्रवणात् ।
श्राद्धकर्ता पण्मुहूर्तानन्तरं निमन्त्रितान्विप्रान्समाहूय प्रत्युत्थानादिना
सत्कृत्य तेषां श्मश्रुकर्मतैलाभ्यङ्गामलकाद्युद्धर्तनपूर्वकं स्नानं कारयेत् ।
सूर्योदयानन्तरं प्रातरेव विप्राणां श्मश्रुकर्मादीति चन्द्रिकायाम् । अह्नः
पञ्चदश मुहूर्ताः । तत्राष्टमो मुहूर्तः कुतपसंज्ञस्तस्मिञ्श्राद्धारम्भः ।
कुतपादारभ्य मुहूर्तपञ्चकं श्राद्धकालः । द्वादशो मुहूर्तो रौहिणसंज्ञः ।
तं न लङ्घयेत् । तदुक्तं चन्द्रिकायां मात्स्ये—

सायाह्नस्त्रिमुहूर्तः स्याच्छ्राद्धं तत्र न कारयेत् ।
राक्षसी नाम सा वेला सर्वकर्मसु गर्हिता ॥ इति ।

एवमुक्ते काले श्राद्धतिथेरप्रवृत्तावपि श्राद्धानुष्ठानं कार्यम् ।

यां तिथिं समनुप्राप्य अस्तं याति दिवाकरः ॥
सा तिथिः सकला ज्ञेया पितृकर्मणि सूरिभिः ।

इति हेमाद्रचुदाहृतवचनात् । तिथिसमाप्तावप्येवमेव । अथ प्रसङ्गा-
त्तिथिद्वैधे सामान्यतः श्राद्धतिथिनिर्णयः । त्रिपुरुषोद्देश्यकं पार्श्वणश्राद्धं
यस्यां तिथौ विहितं सा चेद्दिनद्वयसंबन्धिनी तदा या संपूर्णापराह्णव्या-
पिनी सा ग्राह्या । अपराह्णस्तु पञ्चधा विभक्तस्य दिनस्य चतुर्थी
भागः । यदा तु दिनद्वयेऽपि संपूर्णापराह्णव्यापिनी तदा पूर्वेव । यदा
दिनद्वयेऽप्यपराह्णसंबन्धो नास्ति तदाऽस्तात्पूर्वं त्रिमुहूर्तां चेत्पूर्वा ।

तदभावे तु परैव । यदा दिनद्वयेऽप्यपराह्लैकदेशव्यापिनी तदा यस्मि-
न्नहन्यधिकव्यापिनी सैव ग्राह्या । दिनद्वयेऽप्यपराह्लैकदेशे व्याप्तौ
तिथिक्षये पूर्वा । तिथिवृद्धौ तिथिसाम्ये च परेति बहवः । साम्ये
पूर्वेति हेमाद्रिः । अस्मिन्नर्थे दीपिकाश्लोकः—

यत्राहन्यधिकाऽपराह्लसमये सा स्यात्तिथिः पार्वणे
साम्येन ह्यपराह्लभागयुगसौ वृद्धौ तिथेरुत्तरा ।
ग्राह्या ह्राससमत्वयोस्तु पुरतोऽथो नापराह्लं स्पृशे-
द्यद्वा याऽसिलमश्नुते ह्यहगता सा सर्वदाऽऽद्या स्मृता ॥

अत्र तिथिसमत्वे पूर्वेति हेमाद्रिमतेनोक्तम् । अत्र क्षयवृद्धी, उत्तर-
तिथिगते ग्राह्ये न ग्राह्यतिथिगते । तत्र क्षयस्योदाहरणम्—त्रिंशद्घ-
टिकापरिमिते दिनमाने प्रतिपद्द्विंशतिघटिकापरिमिता । द्वितीया द्वाविं-
शतिघटिका । तृतीयैकविंशतिघटिका । तदा द्वितीयाश्राद्धं प्रतिपदि
कार्यम् । साम्योदाहरणं यथा—प्रतिपद्द्वितीये यथास्थिते । तृतीया
द्वाविंशतिघटिका । वृद्धचुदाहरणम्—प्रतिपद्द्वितीये यथास्थिते । तृतीया
त्रयोविंशतिघटिका । एतदुदाहरणद्वये द्वितीयाश्राद्धं द्वितीयायामेव ।
एवमन्यत्रापि बोध्यम् । केचिद्दिनद्वये संपूर्णापराह्लव्यापित्वेऽपि क्षयसा-
म्यवृद्धिभिर्निर्णय इत्याहुः । व्रतार्के तु दिनद्वये संपूर्णापराह्लव्याप्तौ
पूर्वतिथिभोगापेक्षया ग्राह्यतिथिभोगस्य क्षयसाम्यवृद्धिभिर्निर्णय इत्यु-
क्तम् । तत्रत्योदाहरणानि । यदा दिनमानं षड्विंशति २६घटिकाप-
रिमितं तदा पूर्वतिथ्यपेक्षया ग्राह्यतिथिगतक्षयोदाहरणम्—चतुर्दशी
दश १० घटिका । अमावास्या सार्धपञ्चदश १५ । ३० घटिका ।
प्रतिपदष्टाचत्वारिंशत्पलाधिकविंशति २० । ४८ घटिका । अत्रामा-
भोगः सार्धपञ्चपष्टि ६५ । ३० घटिकापरिमितः । प्रतिपद्भोगोऽष्टादश-
पलाधिकपञ्चपष्टि ६५ । १८ घटिकापरिमितः । एवं सति ग्राह्यायाः
प्रतिपत्तिथोर्दिनद्वये संपूर्णापराह्लव्याप्तिः । पूर्वतिथ्यपेक्षया ग्राह्यप्रति-
पत्तिथिगत एव च क्षयो द्वादश पलानीति क्षयोदाहरणसंभवात्तत्र प्रति-
पत्तिमित्तकं श्राद्धममायुक्तप्रतिपद्येव भवति । वृद्धचुदाहरणं यथा—चतु-
र्दशी सप्तपलाधिकदश १० । ७ घटिका । अमा पञ्चविंशतिपलाधिक-
पञ्चदश १५ । २५ घटिका । प्रतिपत्पञ्चाशत्पलाधिकविंशति २० । ५५
घटिका । अमाभोगोऽष्टादशपलाधिकपञ्चपष्टि ६५ । १८ घटिकापरि-

मितः । प्रतिपद्भोगः सार्धपञ्चपष्टि ६५ । ३० घटिकापरिमितः । एवं सति द्वादश पलानि पूर्वतिथ्यपेक्षया ग्राह्यायाः प्रतिपत्तिथेर्वृद्धिः स्पष्टैव । साम्योदाहरणं यथा—चतुर्दशी दश १० घटिका । अमा पञ्चविंशति-पलाधिकपञ्चदश १५ । २५ घटिका । प्रतिपत्पञ्चाशत्पलाधिकविंशति-२० । ५० घटिका, अत्रामाप्रतिपदोः पञ्चविंशतिपलाधिकपञ्चपष्टि-६५ । २५ घटिकापरिमितो भोग इति पूर्वतिथ्यपेक्षया ग्राह्यप्रतिपत्तिथेः साम्यमिति । इति पार्वणश्राद्धतिथिनिर्णयः । एकोद्दिष्टे तु मध्याह्नव्यापिनी तिथिर्ग्राह्या । अत्र मध्याह्नशब्देन मध्याह्नैकदेशः कुतपरौहिणाख्य-मुहूर्तद्वयात्मको गृह्यते । कुतपपूर्वभाग एवाऽऽरम्भः । अत्रापि तिथिद्वैधे पार्वणतिथिवन्निर्णयो ज्ञेयः । दिनद्वये तुल्यैकदेशव्याप्तौ पूर्ववेति कमलाकरः । आमश्राद्धे तु पूर्वाह्नव्यापिनी तिथिर्ग्राह्या । आमश्राद्धं तु पूर्वाह्न इति वचनात् । अत्र पूर्वाह्नशब्देन संग्रहकालो गृह्यते ।

कालात्प्रातस्तनादूर्ध्वं त्रिमुहूर्ता तु या तिथिः ।

आमश्राद्धं तत्र कुर्याद्विमुहूर्ताऽपि यां भवेत् ॥

इति व्याघ्रपादवचनात् । हिरण्यश्राद्धस्याप्ययमेव कालः । समानधर्म-त्वात् । तिथिद्वैधे तु पूर्ववन्निर्णयः । इति सामान्यश्राद्धतिथिनिर्णयः ।

अथ दर्शश्राद्धेऽमावस्या निर्णयते । तत्र या पञ्चधा विभक्तस्य दिनस्य चतुर्थभागरूपापराह्नव्यापिन्यमावास्या सा ग्राह्या । दिनद्वयेऽपराह्नैकदेश-व्याप्तौ यस्मिन्नहन्यधिकव्यापिनी सैव ग्राह्या । दिनद्वये तुल्यैकदेशव्याप्तौ तिथिक्षय आहिताग्नीनां गृह्याग्निमतां च पूर्वा । निरग्निकब्रह्मचारिविधुरा-नुपनीतस्त्रीशूद्राणामुत्तरा । तिथिसाम्ये तिथिवृद्धौ च सर्वेषामुत्तरैव । दिनद्वये संपूर्णापराह्नव्याप्तौ दिनद्वयेऽपराह्नस्पर्शाभावे वाऽऽहिताग्नेर्गृ-ह्याग्निमतश्च पूर्वा । निरग्निकादीनामुत्तरा । हेमाद्रिस्तु दिनद्वयेऽपरा-ह्नव्याप्त्यभावे निरग्निकानां कुतपकालव्यापिन्यमावास्येत्याह । दिनद्वये पराह्नस्पर्शे कुतपकालव्यापिनीति माधवः । इदमेव युक्तमि-^{म-}लाकरः । अपरे तु द्विधा विभक्तस्य दिनस्य कुतपोत्तर-^{द्विरूपा}याऽपराह्नव्यापिनी सा निरग्निकैः श्राद्धे ग्राह्येति वदन्ति । दिनद्वयेऽपि कुतपकालव्याप्तौ तिथिक्षये पूर्वा । वृद्धिसाम्ययोः । अत्राप्यपराह्न-^{म-}एव श्राद्धानुष्ठानं युक्तम् । कुतपे प्रारब्धस्य प्रति-^{म-}समाप्तौ न दोषः ॥

इति सामान्यनिर्णयः । अथ शाखाभेदेनाऽऽहिताग्नीनां निर्णयः ।
साग्निकविषयं त्रेधाविभक्तदिनतृतीयांशे योऽपराह्णभागस्तद्यापिन्यमा-
वास्येति कमलाकरः । प्रायः साग्निकानामिष्टिदिनात्पूर्वदिने यथा दर्श-
श्राद्धं भवेत्तदनुकूलवाक्यार्थग्रहणेन निर्णयः कर्तव्यः । तस्मात्पूर्वद्युः
पितृभ्यः क्रियत उत्तरमहर्द्धवान्यजन्त इति श्रुतेः । तैत्तिरीयाणां तु
कचिदिदृश्यन्तरमपि श्राद्धप्रसक्तिरिति गम्यते । दिनद्वयेऽपराह्णसत्त्वे
दिनद्वयेऽप्यपराह्णस्पर्शाभाधे वा बह्वृचैः पूर्वाऽमावास्या ग्राह्या । तैत्ति-
रीयैरुत्तरा । सामगैः पूर्वोत्तरा वा । तदाह हारीतः—

त्रिमुहूर्ताऽपि कर्तव्या पूर्वा सर्वाऽपि बह्वृचैः ।
कुहूरध्यर्षुभिः कार्या यथेष्टं सामगीतिभिः ॥ इति ।

त्रिमुहूर्ताभावे तु पूर्वा नेति कमलाकरः । अत्राध्यर्षुशब्दरतैत्तिरी-
यपरः । अत्रापि यदा तिथिदृद्ध्या कार्त्स्न्येनोभयापराह्णव्यापिन्यमा-
वास्या प्रतिपदिन एवेष्टिस्तदा सर्वेषामुत्तरैव । एकदेशेनापराह्णव्या-
तावपि प्रतिपद्वृद्ध्या प्रतिपदि यागस्तदा परैव सर्वेषाम् । यदा प्रति-
पक्षयात्संधिमद्दिने यागस्तदा हारीतोक्तनिर्णय इति । येषां बौधायन-
कात्यायनादीनां चन्द्रदर्शनवति प्रतिपदिने यागनिषेधस्तैर्निर्णीतस्व-
स्वान्याधानदिने विष्वदिपितृयज्ञोत्तरं दिनान्तमुहूर्तयागेन दर्शश्राद्धं
कार्यम् । अत्र चतुर्दश्यामपि श्राद्धानुष्ठाने न दोषः ।

चतुर्दशी च संपूर्णा द्वितीया क्षयकारिणी ।
चरुतिष्ठिरगायां स्याद्भूते कव्यादिका क्रिया ॥

इति माध्वोदाहृतवचनात् । आश्वलायनानामप्येवमेवेति प्रतिभाति ।
तत्रोच्यते—आश्वलायनानामिष्टेस्तु द्वेधाऽप्याचारो दृश्यते । केचित्—
द्वितीयामहितायां प्रतिपदि चतुर्थभागेऽपि यागं कुर्वन्ति । केषांचिद्द्व-
न्धकाणामुक्तिरपि तदनुकूलैव । तद्विचारणीयम् । अन्ये तु पूर्वद्युर-
पराह्णसंधावपि पराह्णे प्रातर्यागपर्याप्तिपरिमितप्रतिपत्तृतीयांशसत्त्वं एव
परादिनेऽन्यथा पूर्वर्द्ध्व संधिमद्दिने यागं कुर्वन्ति । अत एव यदा पर्व-
ण्यन्तमयात्पूर्वं ह्यश्ववृद्धिवशेन सप्ताष्टवटिकापरिमितः प्रतिपत्तिथिप्र-
वेशस्तस्मिन्नहनि यागः पूर्वद्युरन्वाधानमिति प्रायश्चित्तप्रदीप उक्तम् ।
युक्तं चैतत् ।

पर्वणोऽंशे द्वितीये तु कर्तव्येद्विजातिभिः ।
 द्वितीयासहितं यस्माद्द्रूपयन्त्याश्वलायनाः ॥
 न यष्टव्यं चतुर्थेऽंशे यागेः प्रतिपदि क्वचित् ।
 रक्षांसि तद्विलम्पन्ति द्रूपयन्त्याश्वलायनाः ॥
 यस्तु न प्रारभेतेष्टिमन्त्यांशे पर्वणो द्विजः ।
 प्रतिपदश्चतुर्थांशात्प्राग्यश्च न समापयेत् ॥
 कृतावप्यकृतैवेष्टिस्तयोः स्यान्नात्र संशयः ।
 पुनरेवाऽऽचरेदिति शुभेऽहनि यथाविधि ॥

इति प्रयोगपारिजात आश्वलायनोक्तेः । पर्वणोऽंशे द्वितीय इति द्वितीयेऽर्ध इत्यर्थः । पार्वणस्थालीपाकस्यापीत्यमेव निर्णयः । अथ पार्वणस्थालीपाकस्तस्य दर्शपूर्णमासाम्बामुपवास इत्याश्वलायनगृह्यात् । यैर्बोधायनीयमाध्वर्यवं स्वीकृतं तेषां बोधायनमतानुसारित्वाद्ध्वर्युप्रत्ययं तु व्याख्यानं कामकालदेशदक्षिणानामित्याश्वलायनसूत्र आध्वर्यवोक्तकालग्रहणाभ्यनुज्ञानाच्चन्द्रदर्शनवति प्रतिपद्दिने यागो नैवोचित इति प्रतिभाति । अत एव प्रकृत आश्वलायनाचार्यवचनानां निरवकाशत्वात्तदुक्तकालग्रहणस्यैवोचितत्वात्पौर्णमास्यां मुहूर्तत्रयपरिमितप्रतिपत्तृतीयांशलाभ एव द्वितीयदिने यागोऽन्यथा पूर्वदिने । तथाऽमावास्यायामपराह्लसंधौ परदिने षण्मुहूर्तप्रतिपत्तृतीयांशसत्त्व एव परदिनेऽन्यथा चतुर्दश्यामन्वाधानं कृत्वा बोधायनवत्संधिमद्दिन एव यागः कर्तव्य इति पुरुषार्थचिन्तामणिकारेण सिद्धान्तितम् । ननु प्रातर्यजध्वमित्यादिश्रुत्या यागस्य प्रातःकालविधानात्

प्रतिपद्यप्रविष्टायां यदि चेष्टिः समाप्यते ।

पुनः प्रणीय कृतस्नेष्टिः कर्तव्या यागवित्तमैः ॥

इति गार्ग्यवचनविरोधात् कथमपराह्लसंधिमद्दिन इति चेत्तत्रोच्यते—
 अन्याधानादिब्राह्मणभोजनान्तकर्मप्रमुदायरूपयागस्य ब्राह्मणतर्पणरूपान्तिमपदार्थस्य प्रतिपदि समापिते न कोऽपि विरोधः । उक्तं च कातीयपरिशिष्टे—

आवर्तनेऽथवा तत्प्राग्यदि पर्व समाप्यते ।

तन्त्रं पूर्वाह्न एव स्यात्संधेरूर्ध्वं द्विजाशनम् ॥

इत्यलं प्रसक्तानुप्रसक्त्या । अथ पिण्डपितृयज्ञेऽमावास्या निर्णयते । तत्र कात्यायनानां यागदिनात्पूर्वेद्युरेव पिण्डपितृयज्ञः । तन्मते यागस्य पूर्वाङ्गमेवासौ । कर्काचार्यव्याख्यानमपि तथैव । आपस्तम्बहिरण्यकेशी-यादीनां पर्वसंधिमदहोरात्रे मुहूर्तमात्रायामप्यमावास्यायां पिण्डपितृ-यज्ञः । तत्सूत्रस्य तथैव रुद्रदत्तरामाण्डारादिव्याख्यानात् । आश्वलाय-नानां तु यस्मिन्नहोरात्रे प्रतिपत्यञ्चदश्योः संधिस्तस्मिन्दिनेऽपराह्णेऽह-श्चतुर्थे माग औपवसथ्येऽहन्यन्वाधानोत्तरं यजनीथेऽहनि यागोत्तरं वा पिण्डपितृयज्ञः । यदा त्वहोरात्रसंधौ तिथिसंधिः स्यात्तदाऽन्वाधानदिन इति वृत्तिकृत् । अत्र किञ्चिदुच्यते—अहोरात्रसंधिशब्देन सूर्योदयः । तिथिसंधिस्त्वमाप्रतिपदोः संधिः । स चाक्षरद्वयोच्चारणपरिमितः काल इति पुरुषार्थचिन्तामणौ । हेमाद्रौ तु—

कुहेति कोकिलेनोक्ते याधोन्कालः समाप्यते ।

तत्कालसंज्ञिता चैषा अमावास्या कुहूः स्मृता ॥

इति मात्स्यात्कोकिलशब्दमात्रः । एतादृशस्य सूक्ष्मसंधिकालस्य दुर्ल-क्ष्यत्वाद्गणितेनापि ज्ञातुमशक्यत्वाच्च मध्ये निशाह्नोः पञ्चविंशति चेति ज्योतिःशास्त्रोक्तौ मध्याह्नमध्यरात्रकालौ तद्वद्वापि विंशतिपलात्मकः कालो ग्राह्यः । अत एवाऽऽह हेमाद्रौ शौनकः—

मुहूर्तस्पृगमावास्या प्रतिपद्यपि चेद्भवेत् ।

तद्वत्तमक्षयं ज्ञेयं पर्वशेषं तु पर्ववत् ॥ इति ।

अत्र मुहूर्तशब्देन क्षणो ग्राह्यः । ज्योतिःशास्त्रे मुहूर्तशब्दस्य क्षण-परत्वदर्शनात् । क्षणस्तु दशपलात्मकोऽमरकोशे प्रसिद्धः । एवं च सूर्यो-दयोत्तरं दशपलाधिकायाममावास्यायां सत्यां तद्दिनेऽपराह्णे पिण्डपितृ-यज्ञः कर्तव्यः । तन्न्यूनत्वे पूर्वद्युरिति गम्यते । कमलाकराशयस्त्वेवमेव । यदत्र युक्तं तद्ग्राह्यम् । अत्रवृत्तिकृदुक्तं पञ्चधाविभक्तस्य दिनस्य चतुर्थ-भागरूपेऽपराह्णे यथासंभवं दिनान्तत्रिमुहूर्तत्यागेन पिण्डपितृयज्ञानु-ष्ठानं कर्तव्यम् । एतन्निर्णयविधायकमूलवाक्यानि न्यायाश्च सर्वत्र प्रसिद्धा इति नात्र लिखिता इति दिक् । इति श्राद्धतिथिनिर्णयः ।

अथ प्रकृतमनुसरामः । श्राद्धकर्ता पाकसिद्धयनन्तरं स्नात्वा विप्रानु-ज्ञातः पूर्वोक्तकाले श्राद्धारम्भं कुर्यात् । तत्रोभयोर्हस्तयोरनामिकाभ्यां

ब्रह्मग्रन्थिसमन्विते दर्भचतुष्टयात्मके वा पवित्रे धारयेदिति चन्द्रिका-
दावुक्तम् । दर्भत्रयात्मक इति केचिद्वदन्ति तत्र मूलं मृग्यम् । पवित्र-
धारणे पवित्रवन्तः परिवाचमासत इति मन्त्रश्चन्द्रिकायामुक्तः । पवित्रं
ते विततं ब्रह्मणस्पत इति वाजपेययाजिपद्धतौ । शिसायां यज्ञोपवीते
दक्षिणोत्तरयोः कटिदेशयोश्च दर्भान्धारयेत् । दर्भत्यागपुनर्ग्रहणकालश्च-
न्द्रिकायाम्—

श्राद्धारम्भेषु ये दर्भाः पादशौचे विसर्जयेत् ।
अर्चनादौ तु ये दर्भा उच्छिष्टान्ते विसर्जयेत् ॥
मार्जनादौ तु ये दर्भाः पिण्डोत्थाने विसर्जयेत् ।
उत्तानादौ तु ये दर्भा दक्षिणान्ते विसर्जयेत् ॥
प्रार्थनादौ तु ये दर्भा नमस्कारे विसर्जयेत् । इति ।

आचमनकालस्तत्रैव—

श्राद्धारम्भेऽवसाने च पादशौचार्वनान्तयोः ।
विकिरे पिण्डदाने च पट्स्वाचमनमिष्यते ॥
आद्यन्तयोर्द्विराचामेच्छेपाणि तु सकृत्सकृत् । इति ।

आचमनं त्वन्न स्मृत्युक्तं ग्राह्यम् । संध्यायां कर्मकाले च स्मृतेराच-
मनं भवेदिति स्मरणात् । अत्र पवित्रधारणोत्तरमाचमनं कर्तव्यम् ।
तदाह चन्द्रिकायां मार्कण्डेयः—

सपवित्रेण हस्तेन कुर्यादाचमनक्रियाम् ।
नोच्छिष्टं तत्पवित्रं स्याद्भुक्तोच्छिष्टं तु वर्जयेत् ॥ इति ।

यत्तु—काशहस्तस्तु नाऽऽचामेत्कदाचिद्विधिशङ्कया ।
प्रायश्चित्तेन युज्येत दूर्वाहस्तस्तथैव च ॥

इति सिन्धौ शङ्खवचनं तत्पवित्राभावे केवलकाशधारणपरमुन्नेयम् ।
संकल्पप्रकार उक्तो नारदीये—

तिथिवारादिकं स्मृत्वा संकल्प्य च यथाविवि ।
प्राचीनावीतिना कार्यं सर्वसंकल्पनादिकम् ॥

देशकालोच्चारणं सव्येन संकल्पोऽपसव्येनेत्युत्सर्गः । संकल्पशब्देन
पित्रादिनामोत्कीर्तनान्तेऽमुकश्राद्धं सदैव सपिण्डं पार्वणेन विधि-
नाऽन्नेन हविषा श्वः सद्यो वा करिष्य इति वाक्योच्चारणम् । अत्रोच्यते—

नित्यश्राद्धादीं देवराहित्यां तद्वावृत्त्यर्थं सदैवमिति । गर्भिणीपत्यादिक्रतुंके
 श्राद्धे पिण्डनिषेधात्सपिण्डमिति । एकोद्दिष्टविधिव्यावृत्त्यर्थं पार्वणेन
 विधिनेति । आमादिव्यावृत्त्यर्थमन्नेन हविषेति । द्यहकालतायाः सद्यस्का-
 लतायाश्चोक्तत्वात्तन्नियमार्थं श्वः करिष्ये सद्यः करिष्य इति वेति । केचि-
 त्साग्रीकरणमिति वदन्ति । तस्य प्रायो बह्वृचानां सपिण्डकश्राद्धे सर्व-
 त्राग्रीकरणसत्त्वात्सपिण्डकमित्येतावतैवोच्चारणेन चारिताथ्यान्नोच्चार-
 णमित्यन्ये । अपि वा पित्राद्युत्कीर्तनान्तेऽमुकश्राद्धं करिष्य इत्येतांषा-
 नेव संकल्पः । श्राद्धपदार्थश्च सर्वक्रियाकलाप इति पौर्णमासेष्ट्या चक्ष्य
 इत्यादिवत् । सर्वत्र संकल्पादौ पित्रादिनामोच्चारणे पितुरमुकशर्मणो-
 ऽमुकगोत्रस्य वसुरूपस्येत्यादि तत्तद्विभक्त्यैकवचनान्तमुत्कीर्तनं कर्तव्यम् ।
 पितरिदं तैऽर्घ्यमित्याद्येकवचनान्तप्रयोगदर्शनात् । अपि वाऽस्मत्पितृणा-
 ममुकशर्मणाममुकगोत्राणां वसुरूपाणामित्यादि बहुवचनान्तम् ।
 शुन्धन्तां पितर इत्यादिदर्शनात् । अत एव परिशिष्टे पितरः पितामहाः
 प्रपितामहा इति त्रयस्तेषां प्रत्येकमेकवद्वा बहुवद्वा निर्देशं कुर्यादित्यु-
 क्तम् । अत्र पृथक्पृथक्देवतात्वदर्शनात्प्रत्येकमित्युक्तत्वाच्चेदमपि ज्ञायते
 शास्त्रान्तरे पितृपितामहप्रपितामहानामिति समुदितोच्चारणं दृश्यते तदत्र
 नैव युक्तमिति । तथात्वेऽग्नीषोमवदेकदैवत्यरूपविरोधापत्तेः । अतः सुच-
 न्तविधिगतशब्दस्यार्थस्य देवतात्वात्पितुरमुकशर्मणोऽमुकगोत्रस्य वसु-
 रूपस्येत्येव पितामहप्रपितामहादीनां पृथक्पृथक्प्रयोगः कार्य इति सिद्धम् ।
 अत्र पुक्तं ज्ञात्वा कार्यमिति दिक् । संबन्धाद्युच्चारणक्रम उक्तो मात्स्ये-

संबन्धं प्रथमं ब्रूयान्नाभिगोत्रे तथैव च ।

पश्चाद्गुपं विजानीयात्क्रम एष सनातनः ॥

नामोच्चारणे शर्मन्तं ब्राह्मणस्येति बोधायनः । दान्तं नाम स्त्रीणामिति
 गोभिलः । नामाज्ञाने त्वाहाऽऽचार्यः—नामान्यविद्वांस्ततपितामहप्रपि-
 तामहेति । कारिकायां च—नामानि चेन्न जानीयात्ततेत्यादि वदेत्कमात् ।
 ततेति संबन्धमात्रपरमिति कमलाकरः । पितृव्यादावपि तथेति गौडाः ।
 निर्णयसिन्धौ—सकारेण तु वक्तव्यं गोत्रं सर्वत्र धीमता । यथा कार्य-
 पसगोत्रमिति । गोत्रसगोत्रयोः पर्यायत्वाच्छासामेदेन व्यवस्थेति ।
 तत्रैव चद्रिकायाम्—

गोत्रस्य त्वपरिज्ञाने काश्यपं गोत्रमुच्यते ।

कलिकायाम्—वसू रुद्रस्तथाऽऽदित्यः पित्रादित्रितये क्रमात् ॥ इति ।

अथ दर्शश्राद्धे पितरः । ते चोक्ताः परिशिष्टे—पिता पितामहः प्रपितामह इति त्रय इति । पिण्डपितृयज्ञसूत्रे च पित्रे पितामहाय प्रपितामहायेति । यद्यपि सूत्रे परिशिष्टे च पित्रादित्रय एवोक्तास्तथाऽपि

पार्वणं कुरुते यस्तु केवलं पितृहेतुकम् ।

मातामह्यं न कुरुते पितृहा स प्रजायते ॥

इति ब्रह्मपुराणात्

पितरो यत्र पूज्यन्ते तत्र मातामहा अपि ।

अविशेषेण कर्तव्यं विशेषान्नरकं व्रजेत् ॥

इति धौम्यवचनाच्च मातामहा अपि कर्तव्याः । अत्र मातामहशब्देन मातामहादित्रयमुच्यते । मातुः पितरमारभ्य त्रयो मातामहाः स्मृता इति पुलस्त्योक्तेः । एवं षट् । ते च सपत्नीकाः कर्तव्याः ।

स्वेन भर्त्रा समं श्राद्धं माता भुङ्क्ते सुधासमम् ।

पितामही च स्वेनैव तथैव प्रपितामही ॥

इति हेमाद्रिच्युदाहृतवचनात् । अत्र मातृशब्दो जनन्यामेष मुख्यः । तेन सपत्नमातृभ्यो न दद्यात् । एवं पितामह्यादिशब्दैः पितृजनन्यादप्येवोच्यन्ते । तत्सपत्नीभ्यो न देयमिति हेमाद्रिः । कारुण्येन तु महालयादौ देयमिति स एवेति कमलाकरः । संकल्पादौ सपत्नीकानामुच्चारणं मन्त्रेषु त्वभिध्यानमात्रमिति केचित् । आश्वलायनानां तु घृत्तिस्वारस्यादृग्भिन्नेषु मन्त्रेषूहयोग्यपदेषु सपत्नीकानामेवोच्चारणमिति प्रतिभाति । सर्वत्रानुक्तौ दर्शश्राद्धातिदेशादेत एव पितरो ज्ञेयाः । विशेषांस्तु तत्तत्प्रकरणे वक्ष्यामः । अथ श्राद्धविशेषे वैश्वदेयिकनामानि ।

इष्टिश्राद्धे क्रतुदक्षौ वृद्धौ सत्यवसू स्मृतौ ।

नैमित्तिके कामकालौ काम्ये च धूरिलोचनौ ॥

पुरूरवार्ष्वौ चैव पार्वणे समुदाहृतौ ।

नवान्नलम्भने देवौ कामकालौ सदैव हि ॥

अपि कन्यागते सूर्ये काम्ये च धूरिलोचनौ । इति ।

घृपोत्सर्गे तवद्रप्सौ कुरुकुत्सौ महालय इति गोविन्दार्णधे विशेषः । सर्वत्रानुक्तौ पुरूरवार्ष्वौ ज्ञेयौ । द्विवचनं गणाभिप्रायम् । अत्र क्वचि-

द्यस्तनिर्देशेन पुरुरवसंज्ञकानामार्द्रवसंज्ञकानामिति पृथग्देवतात्वकल्पेन प्रयोगो दृश्यते स तु शाखान्तरीयविषयः । बह्वृचानां तु समासनिर्देशेन पुरुरवसंज्ञकार्द्रवसंज्ञकगणद्वय एकदेवतात्वेन पुरुरवार्द्रवसंज्ञकानां विश्वेषां देवानामित्येव प्रयोगः । अत एव परिशिष्टे विप्रबहुत्वेऽप्येकमे-
वाघ्यपात्रमुक्तं तदेतदभिप्रायम् । चन्द्रिकाप्रभृतिप्राचीनग्रन्थेष्वप्येवमेव ।
बृहत्पराशरमते पात्रद्वयम् । तत्पक्षेऽपि पुरुरवार्द्रवसंज्ञका विश्वे देवा इदं वोऽर्घ्यमित्युभयत्रापि मन्त्रः । विमक्तिनियम उक्तो नारदीये—

अक्षय्यासनयोः पृष्ठी द्वितीयाऽऽवाहने तथा ।

अन्नदाने चतुर्थी स्याच्छेषाः संबुद्धयः स्मृताः ॥

संकल्पासनयोः पृष्ठीति क्वचित्पाठः । नामगोत्रोच्चारानियम उक्त-
श्चन्द्रिकायां शङ्केन—

आवाहनाघ्यसंकल्पे पिण्डदानान्नदानयोः ।

पिण्डाध्यञ्जनकाले तु तथैवाञ्जनकर्मणि ॥

अक्षय्यासनपाद्येषु गोत्रं नाम प्रकाशयेत् ।

क्षणे च पिण्डदाने च गन्धधूपादिके तथा ॥ इति ।

आश्वलायनानामघ्यदाने न नानाद्युच्चारः । आचार्येण तथैवोक्त-
त्वात् । श्राद्धे विप्रोपवेशनानन्तरं प्रधानसंकल्प इति परिशिष्टे । केषि-
द्वियारमिच्छन्ति । तत्पक्षे निमन्त्रणोत्तरं प्रथमः । विप्रोपवेशनान्ते द्वितीयः ।
अन्ये तु त्रिवारमाहुः । तत्पक्षे निमन्त्रणात्पूर्वं प्रथमः । निमन्त्रणोत्तरं
द्वितीयः । विप्रोपवेशनान्ते तृतीयः । चन्द्रिकादावपि तथैव । तत्र पूर्वोक्त-
प्रकारेण प्रथमः । उपक्रान्तममुकश्राद्धं करिष्य इति द्वितीयः । प्रक्रान्तम-
मुकश्राद्धं करिष्य इति तृतीय इति गृह्याग्नितागरे ।

अथ सध्यापसव्यनिर्णयः । निर्णयसिन्धौ जमदग्निः—

सूक्तस्तोत्रजपं त्यक्त्वा पिण्डाघ्राणं च दक्षिणाम् ।

आह्वानं स्वागतं चाघ्यं विना च परिवेषणम् ॥

विसर्जनं सौमनस्यमाशिषां प्रार्थनां तथा ।

विप्रप्रदक्षिणां चैव स्वस्तिवाचनकं विना ॥

पितृनुद्दिश्य कर्तव्यं प्राचीनावीतिना सदा । इति ।

बह्वृचानामपसव्येनैवाऽऽवाहनम् । परिशिष्टे तथैवोक्तत्वात् ।
अत्र श्राद्धमयूरोक्तं किञ्चिदुच्यते—चतुर्विधं कर्म किञ्चित्पित्रेकसंब-

न्धित्वात्विड्यं स्वधानिनयनादि । किञ्चिद्देवैकसंघन्धित्वाद्द्वैयम् । यथा विश्वे देवाः प्रीयन्तानिति वाचनम् । किञ्चिदुभयसंघन्धादुभयात्मकम् । यथा पाकप्रोक्षणादि । किञ्चिच्च देवापितृसंघन्धरहितत्वाल्लौकिकमेव । यथा स्वागतप्रश्नादि । तत्र पिड्यमुभयात्मकं च प्राचीनाधीतिना कार्यम् । देवं लौकिकं च यज्ञोपवीतिनैव कार्यमिति । संकल्पवाक्यं नीवीबन्धो गायत्रीमधुवाता इत्यादिजपः शेषान्नविनियोगोऽनुव्रजनमेवमादीनि कर्माण्युभयात्मकानि । अन्नपरिवेषणमतिथिभोजनमापोशनार्थमुदकदानाद्यभिश्चरणान्तं ब्राह्मणप्रदक्षिणीकरणं दातारो नोऽभिवर्धन्तामित्याद्यार्शाः स्वस्तिवाचनं विसर्जनमद्य मे सफलं जन्मेत्यादि उच्छिष्टोद्दासनमेवमादीनि लौकिकानीति संक्षेपः ।

सर्वत्र दैवकर्म यज्ञोपवीतिना दक्षिणजानुनिपातेन प्रदक्षिणं प्रागपवर्गमुदगपवर्गं वा कार्यम् । अक्षतास्तु यवाः । उदककार्यं पषोषकेन । पूजोपचाराणां देवतीर्थेन द्विर्द्विर्दानम् । गन्धदानं त्वनामिकया मध्यमाङ्गुल्या वा । पिड्यं कर्माऽऽग्नेयीदिगभिमुखम् । आश्वलायनेन दक्षिणाप्राचीं प्रस्तुत्य सर्वकर्माणि तां दिशमित्युक्तत्वात् । तच्च सव्यजानुनिपातेनाप्रदक्षिणमाग्नेय्यपवर्गं कार्यम् । अक्षतस्थाने तिलाः । उदककार्यं तिलोषकेन । उपचाराणां त्रिच्छिर्दानं गन्धदानं तर्जन्या विना वचनं प्राचीनाधीतिना । श्राद्धे मन्त्रादौ प्रणवःकपिदेवतच्छन्दसां स्मरणं च नैव कार्यमिति प्रयोगपारिजाते । अत्र किञ्चिदुच्यते । दैव उपचाराणां द्विर्द्विर्दानं पिड्ये त्रिच्छिरित्यत्र पाद्यादीनां सर्वेषामुपचाराणामयं नियम इति केचिदाहुस्तच्चिन्त्यम् । प्रमाणाभावात् । वस्तुतस्तु गन्धमाल्यधूपदीपानामेवायं नियमः । परिशिष्टे देवार्चनप्रकरणे गन्धपुष्पधूपदीपानामुभयोर्द्विर्द्विर्दत्त्वेत्युक्त्वाऽनन्तरमाच्छादनं दद्यादित्युक्तम् । तेन गन्धमाल्यधूपदीपातिरिक्तानामुपचाराणां सकृद्दानमिति सिद्धम् । अनेनैवामिप्रायेण वृत्तिकारोऽपि गन्धमाल्यादि सकृद्देयं त्रिः पञ्चकृत्वो वेत्युक्तवान् । अन्यथाऽऽतनाध्यादीत्येवमवश्यत् । अत्र यद्युक्तं तत्कर्तव्यम् । संकल्पानन्तरं महानिबन्धेष्वनुक्तमपि यवोदकं तिलोदकं प्रायश्चित्तमन्त्रजपं समस्तसंपदित्यादिमन्त्रैर्ब्राह्मणानां प्रदक्षिणीकरणं च शिष्टाः कुर्वन्ति ।

* एष पुस्तक समाप्त—ऽग्नेयीम्—इति पाठो दाशत. ।

१ क 'पोशना' । २ क ख 'दैव य' । ३ क ख 'णवापदे' । ४ क. ख. 'ण नै' ।
५ ग 'स्तन्मन्दम्' ।

धर्मपुष्पाक्षतादिपदार्थाञ्जुद्धोदकेन संप्रोक्ष्य गृह्णीयात् । तदुक्तं कलि-
कायाम्—

नाप्रोक्षितं स्पृशेत्किञ्चिन्न वदेन्मानुषीं गिरम् ॥ इति ।

तथा—प्रायश्चित्तविशुद्धात्मा तेभ्योऽनुज्ञां प्रगृह्य च ।

दद्याद्देवै ब्रह्मदण्डार्थं हिरण्यं कुशमेव च ॥

मार्कण्डेयः—ज्ञातः स्नातान्समाहृतान्स्वागतेनार्चयेत्पृथक् ।

पृथ्वीचन्द्रोदये नारदः—

श्राद्धार्थं समनुप्राप्तान्विप्रान्भूयो निमन्त्रयेत् ।

इदं द्वितीयं निमन्त्रणं विधिस्तु क्षणः करणीयः । ॐ तथेति पूर्व-
वत् । ततः कर्ता प्राप्नोतु भवान् । विप्रः प्राप्नवानीति वदेदिति विशेष
इति शौनकः । ततः पाद्यविधिः । तत्र मण्डलक्षणमाह हेमाद्रौ शंभुः—

संमार्जितोपलिप्ते तु द्वारि कुर्वीत मण्डले ।

उदक्प्लवमुदीच्यं स्याद्दक्षिणे दक्षिणापुवम् ॥

द्वारि द्वारसमीपे गृहाङ्गण इति यावत् । तत्रमाणं कलिकायाम्—

प्रादेशमात्रं देवानां चतुरस्रं तु मण्डलम् ।

त्यक्त्वा षडङ्गुलं तस्माद्दक्षिणे वर्तुलं तथा ॥

तच्च मण्डलद्वयं गोमयोदकाभ्यां कार्यम् । गोमूत्रेणेति चन्द्रिकायाम् ।

अत्यन्तजीर्णदेहाया बन्ध्यायाश्च विशेषतः ।

आर्ताया नवसूताया न गोर्गोमयमाहरेत् ॥ इति ।

भृगुः—मण्डलयोरथटो वा सनेदिति कारिकाभाष्ये ।

ध्याघः—उत्तरेऽक्षतसंयुक्तान्पूर्वाग्रान्विन्यसेत्कुशान् ।

दक्षिणे दक्षिणाग्रान्स्तु सतिलां न्विन्यसेत्कुशान् ॥

मास्वये—अक्षताभिः सपुष्पाभिस्तदभ्यर्च्यपित्तव्यवत् ।

विप्राणां क्षालयेत्पादानभिर्बन्धु पुनः पुनः ॥

मविष्ये—प्रक्षालयेद्विप्रपादाञ्जं नो देवीरितिऽपृचा ।

एतच्चाऽऽसीनानां स्वयमप्यासीनेन प्रत्यह्मुत्सेन कार्यमिति चन्द्रि-
कायाम् ।

वृद्धवसिष्ठः—न कुशग्रन्थिहस्तस्तु पाद्यं दद्याद्विचक्षणः ।

घृतादिनाऽभ्यक्तपादयोः पाद्यं दद्यादिति चन्द्रिकायाम् ।

कलिकायाम्—ततः प्रक्षालयेत्पादौ भार्यास्रावितधारिणा ।
शान्द्धकाले यदा पत्नी वामे नीरप्रदा मवेत् ॥
आसुरं तद्भवेच्छान्द्धं पितॄणां नोपतिष्ठते ।
नाथः प्रक्षालयेत्पादौ कर्ता पित्रादिकर्मसु ॥

सिन्धौ लौगाक्षिः—मण्डलादुत्तरे वेशे दद्यादाचमनीयकम् ।

तथा—विधाय क्षालनं तेषां द्विराचमनमिष्यते ।
स्वयमपि द्विराचामेदिति हेमाद्रौ ।

नारदः—यंत्राऽऽचमनवारीणि पादप्रक्षालनोदकैः ।
संगच्छन्ति बुधाः शान्द्धमासुरं तत्प्रचक्षते ॥

चन्द्रिकायाम्—आसनेषु सदर्भेषु विविक्तेषूपवेशयेत् ।

विविक्तेषु परस्परमसंलगेषु । कारिकायामपि—
द्वौ दैवे ग्राह्मुखौ पित्र्ये त्रीन्विप्रानुषगाननान् ।
ध्यायन्ममैते पितर इति तानुपवेशयेत् ॥

व्यासः—सद्येनैवाऽऽसनं धृत्वा दक्षिणे दक्षिणं करम् ।
व्याहृतीभिः समस्ताभिरासनेषूपवेशयेत् ॥

समाध्वमिति चैवोक्त्वेति ।

प्रतिविप्रं श्वेतसूत्रवर्तियुक्तमविच्छिन्नं तैलदीपं स्थापयेदिति कारि-
कामाष्ये । प्रयोगपारिजाते स्मृत्यन्तरम्—

तत्राऽऽसनानि देयानि तिलाश्चैव कुशैः सह ।
पृथक्पृथगासनेषु तिलतैलेन दीपिका ॥ इति ।

तत्रैव—अप्रसूताः स्मृता दर्भाः प्रसूतास्तु कुशाः स्मृताः ॥ इति ।
माधवीये यमः—मिक्षुको ब्रह्मचारी वा भोजनार्थमुपस्थितः ।
उपविष्टेष्वनुप्रातः कामं तत्रापि भोजयेत् ॥

मिक्षुकानाह चन्द्रिकायामत्रिः—

ब्रह्मचारी यतिश्चैव विद्यार्थी गुरुपोषकः ।
अध्वगः क्षीणवृत्तिश्च पठेते भिक्षुकाः स्मृताः ॥ इति ।

कूर्मपुराणे—अतिथिर्यस्य नाश्नाति न तच्छान्द्धं प्रचक्षते ।

अतिथिलक्षणं विष्णुपुराणे—

अज्ञातकुलनामानमन्यतः समुपागतम् ।
पूजयेदतिथिं सम्यङ् नैकग्रामनिवासिनम् ॥ इति ।

नीवीबन्धप्रकारमाहाऽऽश्वलायनः-

नीवीवासो दशान्तेन स्वरक्षार्थं प्रबन्धयेत् ।

कात्यायनोऽपि-नीवी कार्या दशागुप्ति वामकुक्षौ कुशैः सह ॥ इति ।

पृच्छयाज्ञवल्क्यः-दक्षिणे कटिदेशे तु तिलैः सह कुशत्रयम् ।

स्मृत्यर्थसारे तु-पितृणां दक्षिणे पार्श्वे विपरीता तु दैविके ।

दैविके षुद्धिश्राद्ध इति कमलाकरः । ततः प्रक्रान्तं श्राद्धं करिष्ये इति संकल्पः । ततोऽपहता इति मन्त्रेण प्रसध्यं सर्वतस्तिलानवकीर्णोदीर-
तामित्यृचं जपेदिति परिशिष्टे । तिला रक्षन्त्वसुरानिति मन्त्रेण द्वारदेशे
कुशतिलान्प्रक्षिपेदिति स्कान्दे । पराशरः-

तद्विष्णोरिति मन्त्रेण गायत्र्या च प्रपन्नतः ।

प्रोक्षयेदन्नजातं तु शूद्रदृष्ट्यादिशुद्धये ॥

हेमाद्रौ ब्रह्माण्डे-श्राद्धभूमौ गथां ध्यात्वा ध्यात्वा देवं गंदाधरम् ।

यस्यादींश्च पितृन्ध्यात्वा ततः श्राद्धं प्रवर्तयेत् ॥

देवताभ्यः पितृभ्यश्च महायोगिभ्य एव च ।

नमः स्वाहायै स्वधायै नित्यमेव नमो नमो नित्यमेव नमो नमः ।

आदिमध्यायसाने तु त्रिराष्ट्र्या जपेद्बुधः ।

पितरः क्षिप्रमापान्ति राक्षसाः प्रद्ववन्ति च ॥ इति ।

अथ देवांचनम् । तत्र प्रत्युपचारमाद्यन्तयोरणो वृथादिति पित्रर्चाप्रक-
रणे नारायणवृत्तौ । प्रचेताः-

आसनेष्यासनं दद्याद्देवे दद्यात्तु दक्षिणे ।

नागरखण्डे-ऋजुभिः साक्षतैर्दर्भैः सोष्कैर्दक्षिणादिशि ।

देवानामासनं दद्याद्द्वामभागे तु पैतृके ॥

युग्मान्दर्मानिति चन्द्रिकायाम् । चतुर्भिर्वेति ग्रन्थान्तरे । आश्वला-
यने दैविकविमद्वित्वेऽपि पुरुरवार्यं नामिदमासनमित्येकस्मै दत्त्वा पुन
रेवमेव द्वितीयाय देयम् । सर्वत्रैवं प्रयोगः । निर्णयसिन्धौ-

आसने स्वासनं दद्यादग्न्यै स्वर्ग्यं द्विजोत्तमः ।

सुबन्धश्च सुपुण्याणि सुमारुपानि सुधूपकः ॥

सुज्योतिश्चैव दीपे तु स्वाच्छादनमिति क्रमः ।

चन्द्रिकायां तु-सुगन्धोऽस्तु सुदीपोऽस्तु चेत्पादि सगुदाहरेदिति ।
आसनप्रदानानन्तरमत्राऽऽस्यतामिति कर्ता वदेत् । धर्मोऽसीति विप्र इति
च तत्रैव । ततस्तृतीयं निमन्त्रणम् । तद्विधिमाह गालवः—

द्वे क्षणः कियतां तु निरङ्कुष्ठं करं ततः । धृत्वेति शौर्यः ।

ॐ तथेति द्विजा ब्रूयुस्तं प्राप्नोतु भवानिति ।

कर्ता ब्रूयात्ततो विप्रः प्राप्नवानीति वै वदेत् ॥ इति ।

अधार्घ्यविधिः । तत्र वैश्वदेवस्थाने विप्रस्यैकत्वे द्वित्वे बहुत्वे धैक-
मेवार्घ्यपात्रमासाद्य स्वाहार्घ्या इति सर्वेभ्यः सकृन्नियेद्य तद्वैश्वदेव्यं
विगृह्य सर्वेभ्यो दद्यादिति गृह्यपरिशिष्टे प्रयोगपारिजाते निर्णयसिन्धौ
च । शान्द्रचन्द्रिकायां पात्रद्वयमप्युक्तम् । अस्मिन्नध्व्यपात्रे दर्भद्वयात्मकं
पवित्रम् । शौनकजपन्ताभ्यामर्घ्यरहितस्य देवार्चनस्योक्तेराश्वलाय-
नानां देवे न वाऽर्घ्यदानमिति केचित् । अर्घ्यपूरणोत्तरमावाहनम् ।
सत्कमः स्मृत्यन्तरे—

देवार्चां दक्षिणाङ्गे स्यात्पापुजान्वसमूर्धनि ।

शिरोसजानुपादेषु यामाङ्गादिषु पैतुके ॥

अर्चा पूजाऽऽवाहनरूपेति चन्द्रिकायाम् । विश्वे देवास आगतेत्पावाह-
नमन्त्रः । अत्र वैश्वदेविकोत्पत्तिध्यानं केचित्कुर्यन्ति । तद्यथा—

विश्वापां दक्षकन्यापां जाता धर्मान्महात्मनः ।

विश्वे देवा इति ख्याता देववर्षा महाबलाः ॥

शक्रेण सह योद्धृणां विजेतारस्तु रक्षसाम् ।

यन्नामस्मरणादेव प्रव्रवन्त्यसुरा भयात् ॥

बाणबाणासनधरा द्विभुजाः श्वेतवाससः ।

केपुरिणः कुण्डलिनः फिरीदकटशान्विताः ॥

धैर्यसौन्दर्यसंयुक्ता दिव्यसगनुलेपनाः ।

इन्द्रस्यानुचराः सर्वे गोप्तारस्त्रिदिवस्पतेः ॥ इति ।

ततो विश्वे देवाः शृणुतेमं ह्यं म इत्यादिप्रयोगः । निर्णयसिन्धौ
गमस्तिः—

अर्घ्यं पिण्डप्रदानं च स्वस्त्यक्षय्ये तथैव च ।

गन्धपुष्पादिकं सर्वं हस्तेमेव तु दापयेत् ॥

कारिकामाग्ये पात्रेण तु न दापयेदिति चतुर्थचरणे पाठः । व्यासः-

अपवित्रकरो गन्धैर्गन्धद्वारेति पूजयेत् ।

विप्राणां गन्धेन वर्तुलं पुण्ड्रमर्धचन्द्राकारं च न कार्यम् । तिर्यग्लेपो
भवत्येवेति निर्णयसिन्धौ । कलिकायां स्मृतिः-

गन्धद्वारेति वै गन्धमायनेते च पुष्पकम् ।

धूरसीत्यमुना धूपमुद्दीप्यस्वेति दीपकम् ॥

युवं वज्राणि मन्त्रेण वज्रं दद्यात्प्रयत्नतः ॥ इति ।

पाददेशे धूपनिवेदनं मुखदेशे दीपनिवेदनमिति प्रयोगपारिजाते ।
गन्धदानादौ च पदार्थानुसमयः काण्डानुसमयो वा । केचिद्द्वे पित्र्ये
च पदार्थानुसमयेनार्चनमित्याहुस्तच्छाखान्तरविषयम् । बट्टवृचानां तु
सूत्रे देवानुक्तेः काण्डानुसमय एवेति कमलाकरः । पराशरः-

वाचयेत्परिपूर्णत्वं वासो दद्याद्विधानतः ।

नारदीये-देवैश्च समनुज्ञातो यजेत्पितृगणं तथा ॥

अथ पित्रर्चा-तत्राऽऽसने षर्माः पञ्च सप्त धेति कारिकाभाष्ये ।
अर्घ्यपात्राणि तु पितृसंख्यैव न तु विप्रसंख्यया । सर्वेषां स्थान एक-
ब्राह्मणपक्षेऽपि प्रतिदेषतमेकैकमर्घ्यपात्रमासाद्य स्वधार्घ्या इति सकृन्म-
न्त्रेण युगपरसर्षाणि तस्मै निवेद्य पुनः पुनरन्या अपो दत्त्वा तस्मा एव
पितरिदं तेऽर्घ्यमित्यादिमन्त्रैः सर्वाण्यर्घ्याणि दद्यात् । एकैकस्य स्थान
एकैकब्राह्मणपक्ष एकैकस्मा एकैकं निवेद्यैकैकस्मा एकैकमर्घ्यं दद्यात् ।
पितुः स्थानेऽनेकब्राह्मणपक्षे तदेवार्घ्यपात्रं सकृन्मन्त्रेण सर्वेभ्यो निवेद्य
पितरिदं तेऽर्घ्यमिति मन्त्रावृत्त्या सर्वेभ्यो विगृह्य दद्यात् । एवं पैताम
हादावपि । हेमाद्रौ-

तिस्रस्तिस्रः शलाकास्तु पितृपात्रेषु पार्षणे ।

एकोद्दिष्टे शलाकैकां निधायोदकमाहरेत् ॥ इति ।

या दिव्या इत्यनुमन्त्रणं प्रतिविप्रं सकृदेव । प्रयोगपारिजात आचार्यः-

पितुः पैतामहं चार्घ्यं शिष्टं पैतामहं ततः ।

संसाध्य तच्च पित्र्ये तु सकूर्चं सावयेदथ ॥ इति ।

१ ग 'ण्ड्रमर्धपुण्ड्रम्' । २ न 'ति सिन्धौ । कालि' । ३ क ग 'न्धारीना च । ख ग.
'न्यादीनां च प्रतिविप्र प' । ४ ग 'कम्' । ५ क ख जुह्यात् । ६ ग 'हस्तत ।

अर्घ्यदानान्ते पितृभ्यः स्थानमसीति प्रथममर्घ्यपात्रं शुची देशे
स्थापयेत् । सर्वविप्रोत्तरतो वा न्यसेत् । पित्र्यविप्रवामभागे वा । कर्तु-
र्वामतो येति सिन्धौ । पिण्डनिपरणस्थल इति कारिकाभाष्ये ।

अत्रिः—गन्धादिभिस्तदभ्यर्च्य तृतीयेन पिधापयेत् ॥ इति ।

तत्पात्रं न्यग्बिलं वा कुर्यात् । न्युब्जीकरणं त्वेकोद्दिष्टविषय-
मिति केचित् । न्युब्जीकृतेऽप्यर्चनं तुल्यमिति कमलाकरः । वृशश्रा-
द्धादौ मातामहादिसंज्ञवानपि पितृपात्र एव गृहीत्वा प्रयाजवत्तन्त्रेण
न्युब्जी कुर्यादिति स एव । आद्यपात्रद्वयं न्युब्जी कुर्यादिति चन्द्रिका-
याम् । आच्छादनानन्तरं सति संभवे नानालंकारादि दद्यादिति पुरा-
णादावुक्तं तदन्यशास्त्रीयपरम् । बह्वृचैस्तु श्राद्धान्ते प्राक्स्वधाधाचना-
द्वयम् । वृत्तिकारेण तथैव सिद्धान्तितत्वात् । आसनप्रभृतिसाङ्गपूजा-
विधिस्तु सूत्रे परिशिष्टे च सम्यगुक्तत्वाद्वा संक्षेपेण निरूपितः । विस्त-
रेण तु प्रयोगे वक्ष्यते । अर्चनानन्तरं कृत्यमुक्तं चन्द्रिकायाम्—

निर्वर्त्य ब्राह्मणादेशात्क्रियामेवं यथाविधि ।

पुनर्भूमिं च संशोध्य पद्मेरन्तरमाचरेत् ॥

भाजनानि ततो दद्याद्धस्तशौचं पुनः क्रमात् । इति ।

भूशोधनमर्चनप्रसङ्गात्पतितगन्धपुष्पदर्भापनवनम् । अन्तरं विच्छित्तिः ।
आदेशात्पात्राणि दद्यादित्यन्वयः । तेन तत्रापि प्रश्नानुज्ञे ज्ञेये इति कम-
लाकरः । भोजनपात्राधस्थमण्डलनिर्माणप्रकारश्चन्द्रिकायाम्—

नैर्ऋतीं दिशमारभ्य ईशान्यन्तं समापयेत् ।

तामेव दिशमारभ्य दैविकस्य तदन्तिकम् ॥

ईशानीं दिशमारभ्य नैर्ऋत्यामप्रदक्षिणम् ।

तामेव दिशमारभ्य पैतृकस्य तदन्तिकम् ॥ इति ।

मण्डलकरणसाधनानि ब्राह्मे—

मण्डलानि च कार्याणि नैवारैश्चूर्णकैः शुभैः ।

गौरमृत्तिकया वाऽपि भस्मना गोमयेन वा ॥

सिन्धौ—भस्मना वारिणा वाऽपि कारयेन्मण्डलं ततः । इति ।

मण्डलेषु दैवे सयवान्पित्र्ये सतिलान्दर्भान्दद्यादिति परिशिष्टे ।
दैवे चतुरस्रं पित्र्ये वृत्तमिति तत्रैव । भोजनपात्राणि मण्डलेषु भूमावेध
निदध्यान्नोपरीति कमलाकरः । श्राद्धदीपिकायां मात्स्ये—

अकृत्वा मस्ममयांदां यः कुर्यात्पाणिशोधनम् ।
आसुरं तद्भवेच्छ्राद्धं पितॄणां नोपतिष्ठते ॥ इति ।

मस्ममयांदाकरणे पिशङ्कमृटिं रक्षा णो अग्न इति मन्त्रद्वयं केचि-
त्पठन्तीति कमलाकरः । ब्रह्माण्डे-

प्रक्षाल्य हस्तपात्रादि पश्चादग्निर्विधानवत् ।
प्रक्षालनजलं दर्भैस्तिष्ठैर्मिश्रं क्षिपेच्छुचौ ॥

पाद्यमण्डलोपरीति हेमाद्रिः । संग्रहे-

विसर्गश्चुलकश्चैव अक्षय्यं पङ्क्तिवारणम् ।

करशुद्धिर(रा)पोशा(श)नं पितृपूर्वाणि कारयेत् ॥ इति ।

अग्नौकरणानन्तरं वा मण्डलकरणादि । परिशिष्टे तथैवोक्तत्वात् ।

अथाग्नौकरणम् । तद्यानुपनीतब्रह्मचारिसत्त्वात्कविधवानग्निकैर्धिप्रपा-
णावेव कार्यम् । अनाहिताग्नेर्गृह्याग्निमतो दर्शादौ व्यतिपङ्कोऽस्ति तत्रैव
गृह्याग्नावग्नौकरणम् । यत्र व्यतिपङ्को नास्ति तत्र पाणावेव । बह्वृचा-
नामाहिताग्नीनां सर्वाधानिनामर्धाधानिनां च विप्रपाणिष्वेव । गृह्य-
परिशिष्टे-

अन्वष्टक्यं च पूर्वद्युर्मांसि मास्यथ पार्वणम् ।

काम्यमाभ्युदयेऽष्टम्यामेकोद्विष्टमथाष्टमम् ॥

चतुर्ष्वग्नेषु साग्नीनां वह्नौ होमो विधीयते ।

पित्र्यब्राह्मणहस्ते स्यादुत्तरेषु चतुर्ष्वपि ॥

एवमेव वृत्तिकारेण सिद्धान्तितम् । सर्वाधानी दर्शश्राद्धे दक्षिणाग्नौ
जुहुयादिति चन्द्रिकायाम् । अर्धाधानी गृह्याग्नाविति माधवादयः ।
अर्धाधानिनो व्यतिपङ्गपक्षे गृह्य एवेति प्रयोगपारिजाते । वृत्तिकारमते
वार्षिकादौ नैव व्यतिपङ्कः । अन्यमते त्वस्ति । अत्र यथाचारमनुष्ठेयमिति
कमलाकरः । चन्द्रिकाकारस्तु आश्वलायानामनुष्ठानं वृत्त्यनुसार्येवास्ती-
त्याह । आश्वलायनानां गृह्याग्निमतामन्वष्टक्यादिश्राद्धचतुष्टयं विना
सर्वेषु श्राद्धेषु पाणिहोम एवेति वृत्तिस्वरसः । स च पाणिहोमः
पाणिष्विति बहुवचनात्सर्वविप्रपाणिषु इति वृत्तिकृत । कारिकायां तु-
एकेकामाहुति केचिद्विगृह्यैव प्रजुह्वति । चन्द्रिकायां जातूकर्षः-

अग्न्यमावे तु विप्रस्य पाणौ दद्यात्तु दक्षिणे ।

अग्न्यमाषः स्मृतस्तावद्यावद्भार्यां न विन्दति ॥ इति ।

विधुरस्य विशेषो मदनरत्ने यमेनोक्तः—

अपत्नीको यदा विप्रः श्राद्धं कुर्वीत पार्वणम् ।

पित्र्यविप्रैरनुज्ञातो विश्वदेवेषु हूयते ॥

अत्रोपनीती स्वाहाकारेणाग्निपूर्वकं दैविकधर्मेण जुहुयादिति हेमाद्रिः । वायवीये—

विधुरो दैविके कुर्याच्छेषं पित्र्ये निवेदयेत् ॥ इति ।

वैश्वदेयविप्रबहुत्वेऽपि प्रथमविप्रपाणावेव होम इति कमलाकरः । यद्वा सर्वत्र दैवपित्र्यविप्रकरयोर्विकल्प इति हेमाद्र्यादयः । उपवीतित्वे दैवे होमः प्राचीनावीतित्वे पित्र्य इति कमलाकरः । पाणिहोमेऽप्यग्नीकरणविधिं केचित्कुर्वन्ति । तदुक्तं हेमाद्रौ यमेन—

अग्नीकरणवत्तन्त्रं होमो विप्रकरे भवेत् ।

पर्युक्ष्य दर्भानास्तीर्य यतो ह्यशिसमो द्विजः ॥

अपराके शौनकः—भवत्स्वेवाग्नीकरणं करिष्य इति वै वदेत् ।

क्रियतामिति प्रतिवचनम् । मेक्षणेन करेण वा होम इति कमलाकरः । पाणिहोमे मेक्षणप्रहरणं नेति वृत्तिकृत् । अपूर्वत्वान्नायं विधिरिति केचित् । तदुक्तं स्मृतिरत्नावल्याम्—

नानुज्ञा पाणिहोमे स्यान्न स्तः पर्युहणोक्षणे ।

नाग्ने तमद्यादिति च न स्यातामिधममेक्षणे ॥ इति ।

अत्र केचिदिदं सोमाय पितृमत इदमग्नये कक्ष्यधाहनायेति समन्त्रकविभागकरणं कुर्वन्ति । तत्रोच्यते—यत्र नानादेवते स्थालीपाकतन्त्रे समन्त्रकनिर्वापस्तन्त्रेण श्रपणं तत्रैव समन्त्रकविभागकरणं पिण्डपितृयज्ञे तदभावात्त्रिवन्धकारैरनुक्तत्वाच्च तदुपेक्ष्यम् । तूष्णींविभागकरणं भवत्येवेति । हुतावशिष्टप्रतिपत्तिमाह यमः—

पितृपाणिहुताच्छेषं पितृपात्रेषु निक्षिपेत् ।

अग्नीकरणशेषं तु न दद्याद्द्वैश्वदेविके ॥

एतदाग्निहोमेऽपि सममिति कमलाकरः । वृद्धवसिष्ठः—

पित्र्यविप्रकरे हुत्वा शेषं पात्रेषु निक्षिपेत् ।

पिण्डेभ्यः शेषयेत्किञ्चिन्न दद्याद्द्वैश्वदेविके ॥ इति ।

कमलाकरस्वाह—पाणौ हुतं पात्रे निधाय विप्रानाचमय्य(चाम्य)
हुतशेषं पात्रेषु दद्यात् । अनैमित्तिकं चेदमाचमनं न हुतमक्षणनिमित्तम् ।
तेनाग्नौकरणामावेऽप्याचमनं भवतीति सिद्धम् । विप्राः पाणौ हुतमङ्गं
भोजनार्थं दत्ताग्नेन सह भोजनकाले मुञ्जीयुः । न तु भोजनात्पूर्वमिति ।
शौधायनमते हवनानन्तरमेव मक्षणं तत्तच्छाखीयानामेष ।

अथ परिवेषणम् । तच्च देवपूर्वमामासु पक्कमिति पात्राण्याज्येनोप-
स्तीर्य पवित्रपाणिः स्वयमेव कुर्याद्धार्या वा । पात्राणि दर्भैः परिस्ती-
र्येति रघुनाथीपपद्धतौ । अन्नादि सर्वं दर्व्या पात्रेण च परिवेषयेन्न तु
हस्तेन । अपक्वं तैलपक्वं च हस्तेनैव देयम् । भोजने तिला न देयाः ।
घृतादिपात्राणि भूमौ स्थापयेन्न भोजनपात्रे । परिवेषणक्रम उक्तः
संग्रहे—

ओदनं पायसं मक्ष्यं व्यञ्जनादि घृतं तथा ।

सूपमन्ते प्रदातव्यमित्येवं परिवेषयेत् ॥ इति ।

लवणं साक्षाद्भस्तेनं च न परिवेषणीयम् । घृतं भोजनपात्राद्बहिः
परिवेषणीयम् । देवपूर्वकपरिवेषणानियमस्तु प्रथम एव परिवेषणे न
द्वितीयादिषु । घृतं पितृपूर्वकमेव परिवेषणीयमिति केचित् । परिवेषण-
काले यथा शब्दो न भवेत्तथा परिवेषणीयम् । गौडनिबन्धे—

मध्रमावे गुडो देयः क्षीरस्य च तथा दाधि ।

न लभ्यते घृतं तत्र कुर्याद्घृतवतीजपम् ॥ इति ।

यद्भूयां विपमदानं नैव कार्यम् । एवमन्नानि परिविष्यान्ननिवेदनं
कार्यम् । तत्प्रयोगे वक्ष्यते । तत्रान्नेऽङ्गुष्ठनिवेशन इदं विष्णुरिति मन्त्र
उक्तः परिशिष्टे । ऋग्विधाने तु—

इदं विष्णुरितीमाभिः पञ्चभिः श्राद्धकर्मणि ।

अङ्गुष्ठमन्त्रेऽवंगाह्य तेन रक्षो न बाध्य(ध)ते ॥ इति ।

ये चेह पितर इत्युपस्थानानन्तरं

पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः ।

तृप्तिं प्रयान्तु वै भक्त्या यदिदं श्राद्धमाहृतम् ॥

मातामहस्तृप्तिमुपैतु तस्य तथा पिता तस्य पिता ततोऽन्यः ।

विश्वे च देवाः परमां प्रयान्तु तृप्तिं प्रणश्यन्तु च यातुधानाः ॥

इति मन्त्रद्वयं केचित्पठन्ति । ततोऽच्छिद्रं वाचयेदिति कमलाकरः ।
पारस्करः—

संकल्पः पितृदेवेभ्यः सावित्रीमधुमज्जपः ।

श्राद्धं निवेद्याऽऽपोशा(श)नं जुषमैषोऽथ भोजनम् ॥

संकल्पोऽन्ननिवेदनम् । निवेद्येति ब्रह्मार्पणं कृत्वेत्यर्थः । बृहन्नार-
दीये—इत्तं हविश्च तत्कर्म विष्णवे वै समर्पयेदिति । एतद्ब्रह्मार्पणं सद्ये-
नैव कार्यमिति कमलाकरः । अत्र ब्रह्मार्पणं० हरिर्दाता० चतुर्भिश्च०
इति श्लोकत्रयं पठेदिति सिन्धौ । अथ विप्रनियमाः । माधवीये—

पवित्रपाणयः सर्वे ते च मौनवतान्विताः ।

उच्छिष्टोच्छिष्टसंस्पर्शं वर्जयन्तः परस्परम् ॥

मनुः—यावद्दूष्मा भवत्यन्ने यावदश्रन्ति वाग्यताः ।

तावदश्रन्ति पितरो यावन्नोक्ता हविर्गुणाः ॥

याज्ञवल्क्योऽपि—मुञ्जीरंस्तेऽपि वाग्यता इति । अत्राऽऽह श्राद्धचन्द्रि-
काकारः—वाग्यता वाङ्मनियता अधिकं न वदेयुरित्यर्थः । न तु मौनिनः ।
अपेक्षितं याचितव्यमिति वक्ष्यमाणवचनविरोधादिति । अतोऽन्नादिया-
चनं विना वाङ्मनियमलोपे विष्णुस्मरणं कृत्वा पुनर्वाङ्मनियमं कृत्वा
मुञ्जीयादिति सिद्धम् । प्रयोगपारिजातकारस्तु अन्नपानाद्यपेक्षायां हस्त-
संज्ञया याचितव्यमित्याह । अस्मिन्पक्षे सर्वत्र वाङ्मनियमलोपे प्राप-
श्चित्तम् । अत्रिः—

असंकल्पितमन्नाद्यं पाणिभ्यां पशुपस्पृशेत् ।

अभोज्यं तद्भवेदन्नं पितृणां नोपतिष्ठते ॥

अन्नं दत्तं न गृह्णीयाद्यावत्तोयं न संपिबेत् ।

आपोशनं वामभागे सुरापानसमं भवेत् ॥

तथा—पुनरापूर्वाऽऽपोशनं सुरापानसमं भवेत् ।

दत्ते वाऽप्यथवाऽदत्ते भूमौ यो निक्षिपेद्दालिम् ॥

तदन्नं निष्फलं याति निराशैः पितृभिर्गतैः ।

शङ्खः—श्राद्धे नियुक्तान्मुञ्जानान्न पृच्छेल्लवणादिषु ।

उच्छिष्टाः पितरो यान्ति पृच्छतो नात्र सशपः ॥

हेमाद्रावत्रिः—हुंकारेणापि यो ब्रूयाद्धस्तेनापि गुणान्वदेत् ।

भूतलाञ्छोद्धरेत्पात्रं मुञ्चेद्धस्तेन वा पिबेत् ॥

प्रौढपादो बहिःकक्षो बहिर्जानुकरोऽपि वा ।
 अब्रुष्ठेन विनाऽश्नाति मुखशब्देन वा पुनः ॥
 पीतावशिष्टतोयानि पुनरुद्धृत्य वा पिबेत् ।
 खादितार्थान्पुनः खादेन्मोदकादि फलानि वा ॥
 मुखेन वा धमेदन्नं निठीवेन्द्राजनेऽपि वा ।
 इत्थमश्रद्धिजः शान्द्धं हत्वा गच्छत्यधोगतिम् ॥

प्रौढपादः पादोपरि पाददातेति कमलाकरः । आसनाख्यपाद इति
 हरदत्तः । बहिःकक्ष उत्तरवाससो बहिर्भूतकक्षद्वय इति प्रयोगपारिजा-
 तकारः । सिन्धौ जाबालिः—

इष्टमुष्णं हविष्यं च वृथादन्नं शनैः शनैः ।
 अपेक्षितं याचितव्यं शान्द्धार्थमुपकल्पितम् ॥

न याचते द्विजो मूढः स भवेत्पितृघातकः ।

हारीतः—उर्ध्वपाणिश्च विहसन्सक्रोधो विस्मयान्वितः ।

भग्नपृष्ठस्तु यद्मुद्धे न तत्प्रीणाति वै पितृन् ॥

प्रचेताः—न स्पृशेद्वामहस्तेन भुञ्जानोऽन्नं कदाचन ।

न पादौ न शिरोव्यस्तिर्न पदा भाजनं स्पृशेत् ॥

उशना—भोजनं तु न निःशेषं कुर्यात्प्राज्ञः कथंचन ।

अन्यत्र दध्नः क्षीराद्वा क्षौद्रात्सक्तुभ्य एव च ॥

अन्यत्र च—सशेषं सर्वमश्रीयान्निःशेषं घृतपायसम् । इति ।

अत एव कारिकायाम्—अन्न भोजनपर्याप्तं देयं किञ्चित्ततोऽधिकम् ॥ इति ।

अथाभिभ्रवणम् । तद्विधिर्वह्नाण्डे—

कुशपाणिः कुशासीन उपवीती जपेत्ततः ।

मनुः—स्वाध्यायं श्रावयेत्पित्र्ये धर्मशास्त्राणि चैव हि । इति ।

तत्राऽऽदौ सव्याहृतिकां गायत्रीं सकृच्चिर्वा जपित्वा राक्षोग्नीः पावमा-
 नीरन्नवतीश्च श्रावयेत् । राक्षोग्निसूक्तानि कृणुष्व पाजः०इन्द्रासोमा तप-
 तम्०रक्षोहणं वाजिन०इत्यादीनि । पावमानीः स्वादिष्टयेत्याद्याः ।
 अन्नवतीः पितुं नु स्तोषमित्याद्याः । अन्यानि च यथाशक्ति पौरुषाप्रति-
 रथेन्द्रसोमपितृसूक्तानि श्रावयेत् । अपतिरथमाशुः शिशान इति । पितृ-
 सूक्तमुदीरतामिति । शेषाणि प्रसिद्धानि । तथा ऋग्यजुःसामोक्तानि
 पुण्यानि प्रीतिकराणि त्रिसुपर्णं रुद्रं ब्राह्मणादीनि श्रावयेत् । पुराणो-

क्तानि ब्रह्माधिष्णवर्करुद्रस्तोत्राणि वा । एतदभावे गायत्रीजपं कुर्यात् ।
अभावे सर्वविद्यानां गायत्रीजपमाचरेदिति वचनात् । भोजनसमाप्ति-
पर्यन्तं श्रावयेत् ।

अथ संक्षेपात्संभावितानि प्रायश्चित्तान्युच्यन्ते । पराशरीये शब्दः—
श्राद्धपङ्क्तौ तु भुञ्जानो ब्राह्मणो ब्राह्मणं स्पृशेत् ।
तदन्नमत्यजन्मुक्त्वा गायत्र्यष्टशतं जपेत् ॥

तदन्नं पात्रगतम् । स्पर्शोत्तरमन्यदन्नं न गृह्णीयादिति फलितोऽर्थ इति
चन्द्रिकाकारः । उत्तरापेशनोत्तरमुच्छिष्टयोर्मिथः स्पर्श उभयोरपि सद्यः
स्नानमिति प्रायश्चित्तेन्दुशेसरे । उच्छिष्टान्नस्पर्शं तु—

उच्छिष्टलेपसंस्पर्शं प्रक्षाल्यान्येन वारिणा ।

भोजनान्ते नरः स्नात्वा गायत्रीत्रिंशतं जपेत् ॥ इति ।

अत्रापि भोजनं तावतोऽन्नस्यैवेति स एव । भोजनपात्रस्पर्शं व्यासः—

उच्छिष्टोच्छिष्टसंस्पर्शं स्पृष्टपात्रं विहृत्य च ।

सर्वान्नं पूर्ववत्क्षिप्त्वा भोजयेत्तु द्विजोत्तमम् ॥ इति ।

अयमेव न्यायः प्रायश्चित्तान्तरप्रसक्तावप्यनुसरणीयः । यथा भोजन-
समय उच्छिष्टपात्रमभेद्योपहतं चेत्तत्पात्रमुद्धृत्य भूमिं गोमयेनोपलि-
प्यान्यपात्रं पूर्ववदासाद्य तस्मिन्सर्वान्नं पूर्ववत्क्षिप्त्वा विप्रं भोजयेदिति ।
मार्जारकाकनकुलासुगयादिभिरन्नाद्युच्छिष्टे कृतेऽप्येवमेव । मक्षिकाके-
शनखकीटेषतङ्गपिपीलिकादिभिरल्पोपहतौ तत्संछन्नमन्नाद्युद्धृत्याप उप-
स्पृश्य शोषान्नानि भस्मना वा मृदा वाऽम्बुना वा संस्पृश्य भोजयेत् ।
मार्जारादिस्पर्शोऽप्येवम् ।

अथ विप्रवमने प्रायश्चित्तम् । तत्र दक्षाद्युक्तो होमविधिः । विप्रवमना-
नन्तरं प्रायश्चित्तत्वेनेन्द्राय साम गायतेति द्वादशर्चं सूक्तं जपित्वा लौकि-
काग्निं स्थाण्डिले प्रतिष्ठाप्य क्रियमाणे विप्रवमननिमित्तहोमे देवतापरि-
ग्रहार्थमन्वाधानं करिष्य इति संकल्प्यास्मिन्नन्वाहितेऽग्नावित्यादिं चक्षुर्पी
आज्येनेत्यन्तमुक्त्वाऽत्र प्रधानं प्राणमपानं व्यानमुदानं समानमेताः पञ्च
देवता द्वात्रिंशद्द्वारं चर्वाहुतिभिः शोषेण स्विष्टकृतमित्यादि प्राणाय त्वा
जुष्टं निर्वपामि अपानाय त्वा०व्यानाय त्वा०उदानाय त्वा०समानाय
त्वा०इत्यादिचरुकल्पेन चरुं श्रपयित्वाऽऽज्यभागान्ते नामगोत्राद्युच्चारपूर्व-

कमग्नौ पितृनावाह्य संपूज्य यथालिङ्गं त्यागपूर्वकमवदानधर्मेण चर्वाहुती-
 जुहुयात् । प्राणाय स्वाहा । प्राणायैदं० । अपानाय स्वाहा । अपानायैदं० ।
 ध्यानाय स्वाहा । ध्यानायैदं० । उदानाय स्वाहा । उदानायैदं० । समा-
 नाय स्वाहा । समानायैदं० । इति पञ्चाहुतिभिरेकाऽऽवृत्तिः । पुनः
 प्राणाय स्वाहेत्यादिपञ्चाहुतिभिर्द्वितीया । एवं द्वात्रिंशत् । पञ्चभि-
 र्मन्त्रैः प्रतिमन्त्रं द्वात्रिंशत्संख्ययेत्यन्ये । एवं षट्त्रयस्यैकशतमाहुतयो
 भवन्ति । अपरे तु पञ्चभिर्मन्त्रैर्द्वात्रिंशत्संख्ययाऽऽहुतीर्जुहुयादिति
 यथाश्रुतमेवार्थं वर्णयन्ति । एतन्मते द्वात्रिंशदेव । तत्र षड्भिरावृत्तिभि-
 र्त्रिंशदाहुतयः । अधशिष्टे द्वे समानाय स्वाहेत्येतस्याऽऽवृत्त्या संपादनीये ।
 एवं हुत्वा स्थिष्टकृदादिहोमशेषं समाप्य घमितं विप्रं घृतं प्राशयेत् ।
 इति होमविधिः । वैश्वदेविकविप्रवमने होम एव न श्राद्धावृत्तिः ।
 पिण्डविप्राणामुपविष्टानां पितृस्थानीयविप्रवमने तद्दिने तदानीमेव
 होमं कृत्वोपोष्य द्वितीयदिने पुनः श्राद्धं कुर्यात् । पितामहादिस्थानी-
 यानां यस्य कस्यचिद्वमने होमं कृत्वा तद्दिन एव पुनः पाकं विधाय
 पुनः श्राद्धं कुर्यात् । पितामहादिवमनेऽपि परेऽहनि श्राद्धं कुर्यादिति
 केचित् । इदं पिण्डदानात्प्राग्वमने पिण्डदानोत्तरं घान्तौ होम एव न
 श्राद्धावृत्तिः । केचिद्भोजनानन्तरं पिण्डदानात्प्रागपि वमने होम एव
 न श्राद्धावृत्तिरित्याहुः । भोजनसमये वान्तौ तु पूर्वोक्तमेव ।

अत्र किञ्चिदुच्यते । श्राद्धे पिण्डदानं प्रधानमिति कर्कः । विप्रभो-
 जनमिति मेधातिथिः । भोजनपिण्डदानाग्नौकरणानीति हेमाद्र्याक्षयः ।
 शाखाभेदेन प्राधान्यमुक्तं धर्मप्रदीपे—

यजुषां पिण्डदानं तु बह्वृचानां द्विजार्चनम् ।

श्राद्धशब्दाभिधेयं स्यादुभयं सामवेदिनाम् ॥ इति ।

अत एव ब्राह्मणभोजनान्ते संपन्नमिति पृष्ट्वेति सूत्रितवानाचार्यः ।
 एतेनाऽऽचार्यस्यापि भोजनं प्रधानमिति पक्षः संमत इत्यवगम्यते । एवं
 च प्रधानवैकल्ये श्राद्धावृत्तिः । अङ्गवैकल्ये प्रायश्चित्तमात्रं कर्तव्यम् ।
 अतो बह्वृचानां ब्राह्मणभोजनस्य प्राधान्याद्ब्राह्मणभोजनानन्तरं विप्रव-
 मने होम एव न श्राद्धावृत्तिः । भोजनसमये वान्तौ पुनरावृत्तिरिति
 सिद्धम् । यजुषां सामवेदिनां तु पिण्डदानोत्तरं घान्तौ होम एव न
 श्राद्धावृत्तिः । पिण्डदानात्प्राग्वान्तौ श्राद्धावृत्तिरेव । वैश्वदेविकविप्रव-

मने सर्वेषां होम एव न श्राद्धावृत्तिः । अङ्गत्वादग्नौकरणहोमवैकल्ये प्रायश्चित्तमात्रं कर्तव्यं न तु श्राद्धावृत्तिः । केचिद्धोमस्यापि प्राधान्यात्तद्वैकल्ये श्राद्धावृत्तिरित्याहुस्तच्चिन्त्यम् । वस्तुतस्तु होमोऽङ्गमेवेति दिक् । इदं प्रत्याद्विकश्राद्धे सपिण्डीकरणादौ मासिकश्राद्धेषु महैकोद्विष्टादौ मघादौ सपिण्डकवृद्धिश्राद्धे च ज्ञेयम् । नित्यश्राद्धसांकल्पिकश्राद्धादौ भोजनप्राधान्याद्भोजनसमये वान्तावावृत्तिरेव । भोजनोत्तरं घमने होम एव नाऽऽवृत्तिः । दर्शादौ तु वान्तावामेन तदैव कार्यम् । तीर्थमहालयादौ दर्शवदिति केचित् । आरब्धं श्राद्धं समापनीयमेव । एतन्मूलवाक्यानि निर्णयसिन्धुहेमाद्यादौ द्रष्टव्यानि । विप्रगुदस्रावे पृथ्वीचन्द्रोदये भरद्वाजः—

भुञ्जानेषु तु विप्रेषु प्रमादात्स्रवते गुदम् ।

पादकृच्छ्रं ततः कृत्वा अन्यं विप्रं नियोजयेत् ॥ इति ।

क्षणपाद्यादि दत्त्वेति कमलाकरः । भोजनसमये विप्रस्य शूद्रादिस्पर्शादिना भोजनानधिकारित्वेऽप्येवमेव ज्ञेयम् । मार्जारस्पर्शे स्पृष्टाङ्गं प्रक्षाल्याप उपस्पृश्य विष्णुं स्मरेत् । उच्छिष्टसमयेऽनुष्ठानसमये च मार्जारस्पर्शे स्नानमिति प्रायश्चित्तेन्दुशेखरे । तत्पक्षे स्नानप्रसक्तौ भोजनानधिकारोऽर्थसिद्धः । इदं यथाचारमनुष्ठेयम् । विप्रस्य त्वापरतम्ब आह—

भुञ्जानस्य तु विप्रस्य कदाचित्स्रवते गुदम् ।

उच्छिष्टमशुचित्वं च प्रायश्चित्तं कथं भवेत् ॥

आदौ कृत्वा तु वै शौचं ततः पश्चादपः स्पृशेत् ।

अहोरात्रोपितो भूत्वा पञ्चगव्येन शुध्यति ॥ इति ।

मूत्रकरणेऽप्येतदेव ज्ञेयम् । शूद्रस्पर्शादावपि उपवासं पञ्चगव्यप्राशनं च कुर्यादित्यलमतिविस्तरेण । इति प्रायश्चित्तानि ।

विप्रभोजनोत्तरं कृत्यमाह व्यासः—

तृप्ताः स्थेति तु पृष्ठास्ते ब्रूयुस्तृप्ताः स्म इत्यथेति । आचार्यः—तृप्ताऽज्ञात्वा मधुमतीः श्रावयेदक्षन्नमीमदन्तेति चेति । अत्रापि गायत्रीं जपित्वा मधुमतीः श्रावयेदिति कमलाकरः । ततः श्राद्धं संपन्नमिति प्रश्नः । शौनकः—

अन्नशेषैश्च किं कार्यमिति पृच्छेत तांस्ततः ।
त इष्टैः सह भोक्तव्यमिति प्रत्युक्तिपूर्वकम् ॥
प्रदद्युः सकलं तस्मै स्वी कुर्युर्वा यथारुचि । इति ।

अत्रायमनुष्ठेयार्थः—भुक्तशेषात्सार्वर्षाणिकमन्नं पिण्डार्थं प्रकीरणार्थं च
पृथक्पृथक्गुहृत्य शेषं ब्राह्मणेभ्यो निवेदयेत् । शेषमन्नं किं क्रियतामिति
प्रश्नः । यदीष्टैः सह भुज्यतामिति तेषां प्रत्युक्तिस्तदा तेनैषान्नेन वैश्वदे-
वादि कृत्वा शेषमन्नमिष्टैः सह भुञ्जीयात् । अभ्यनुज्ञाभावे तदन्नं तेभ्यो
निवेद्य पुनरन्नं निष्पाद्य तेन वैश्वदेवादि सर्वं कुर्यादिति ।

ततः पिण्डदानम् । तत्कालो वक्ष्यते श्राद्धचन्द्रिकायाम्—

यजमानस्य दासादीनुद्दिश्य द्विजसत्तमः ।

पात्रादन्नं त्यजेद्भूमौ वामभागे तु पैतृके ॥

उत्तरापोशनार्थगुदरुं पितृपूर्वकं दद्यादिति पूर्वमेवोक्तम् । शातातपः—

विश्वदेवनिविष्टानां चरमं हस्तधावनम् ।

सिन्धौ—पवित्रग्रन्थिसृज्य मण्डले भुवि निक्षिपेत् ।

हस्तादीन्क्षालयेद्विद्वाञ्शरावादी तु कुत्रचिन् ॥

व्यासः—ताम्बूलोद्दिरणं चैव गण्डूपोद्दिरणं तथा ।

कांस्यपात्रे तथा तात्रे न कुर्वीत कदाचन ॥

उष्णोदकैर्धान्यचूर्णैः करी श्मश्रूणि शोधयेत् ॥ इति ।

अथ पिण्डदानम् । तत्र सूत्रम्—भुक्तवत्स्वनाचान्तेषु पिण्डान्निपृणी-
यादाचान्तेष्वेक इति । भुक्तवत्स्विति पूर्वं निषेधार्थमिति कमलाकरः ।
तेन भोजनात्पूर्वं शास्त्रान्तरोक्तकालसत्त्वेऽप्याश्वलायनैर्भोजनोत्तरमेव
कार्यमिति सिद्धम् । अनाचान्तेष्वित्यत्राऽऽचमनशब्देनोत्तरापोशनगण्डूप-
करणहस्तक्षालनादिशुद्धा(द्ध्या)चमनान्तं कर्म गृह्यते । गण्डूपं दत्त्वा
तेष्वनाचान्तेष्वनाचान्तेषु वेति परिशिष्टोक्तेः । तेनोत्तरापोशनात्पूर्वं पिण्ड-
निपरणमिति गम्यते । केचिच्छुद्धा(द्ध्या)चमनात्पूर्वमित्याहुस्तच्चिन्त्यम् ।
तत्र पिण्डदानमन्नाधशौकरणापक्षेऽग्निसमीपे कर्तव्यम् । पाणिहोमपक्षे वि-
प्रोच्छिद्यते । रत्नित्रयपरिमिते देशे कर्तव्यमिति चन्द्रिकायाम् । व्याममात्र
इति सिन्धौ । व्यामश्चतुररत्निः । स्थलसंकोचादौ त्वरत्निमात्रे, अपहता
इति लेखाकरणं स्फ्याभावे कुशमूलेनेति चन्द्रिकायाम् । एकेनैव दक्षिण-

पक्षे हस्तेनेति वृत्तिः । सव्योत्तराभ्यां पाणिभ्यामिति केचित् । प्रतिपार्वणं
लेखाकरणं बर्हिरास्तरणमुदकनिनयनं चाऽऽवर्तते । तत्क्रममाह कमला-
करः—पितृपार्वणात्पश्चिमे मातृभ्यः पिण्डदानं तत्पश्चिमे मातामहेभ्यः,
तत्पश्चिमे मातामहीभ्यः, तत्पश्चिम एकोद्दिष्टेभ्य इति । सूत्रं च—पूर्वासु
पितृभ्यो दद्यादपरासु स्त्रीभ्य इति । केचिदाग्नेयीसंस्थं दक्षिणापवर्गं
पिण्डदानमिति वदन्ति तन्मते पूर्वोक्तः पूर्वशब्द आग्नेयीवाचकः पश्चिम-
शब्दो यथार्थदिग्वाचकः । तेनाऽऽग्नेयीसंस्थं दक्षिणापवर्गं पिण्डदानं भव-
तीति । शुन्धन्तामित्युदकं निनीय

शुक्लाम्बराः शुक्लगन्धाः शुक्लयज्ञोपवीतिनः ।

आत्मनोऽभिमुखासीना ज्ञानमुद्रा निरायुधाः ॥

वसवः पितरो ज्ञेया रुद्रास्तत्र पितामहाः ।

पितुः पितामहाः प्रोक्ता आदित्या बर्हिषि स्थिताः ॥

इति तत्स्थान्पितृन्ध्यायेदिति रघुनार्थीपे । पिण्डदानमन्त्रे ये च
त्वामत्रान्विति । अत्र स्त्रीश्राद्धे याश्च त्वामत्रान्वित्यृह इति हेमाद्रिस्तदन्य-
शाखाविषयम् । आश्वलायनानां तु यथापाठमेव । वृत्तिकारेण तथैवोक्त-
त्वात् । मन्त्रस्तु एतत्त इत्युक्त्वा, असावित्यत्र संबन्धनामगोत्रविशिष्टं
पित्रादिनाम संबुद्धयन्तमुक्त्वा तदन्ते ये च त्वामत्रान्विति यदेत् । गृह्यप-
रिशिष्टे तु—ये च त्वामत्रान्वित्यन्ते तेभ्यश्चेति मन्त्रशेषः । वृत्तिकारेण तु
अन्वष्टक्यप्रकरणेऽस्मत्पितरमुकशर्मन्नमुकगोत्र वसुरूपैतत्पिण्डीभूतमन्नं
तुभ्यं स्वधा ये च त्वामत्रानुगच्छन्ति तेभ्यश्चेत्युक्तः ।

लौगाक्षिरपि—महालये गयायां च प्रेतश्राद्धे दशाह्निके ।

पिण्डशब्दप्रयोगः स्यादन्नमन्यत्र कीर्तयेत् ॥ इति ।

वायवीये—मधुसर्पिस्तिलयुतास्त्रीन्पिण्डान्निर्वपेद्बुधः ।

स्मृतिसारे—मापाः श्राद्धेषु वै ग्राह्या वज्र्वाश्चैवाग्निपिण्डयोः ॥

एतन्निर्मूलकमिति कमलाकरः । सर्वाग्निग्रहणस्योक्तत्वात् ।

अथ पिण्डप्रमाणम् । प्रयोगरत्नेऽन्त्येष्टिपद्धतौ—

एकोद्दिष्टे सपिण्डे च कापित्थं तु विधीयते ।

नालिकेरप्रमाणं तु प्रत्यब्दे मासिके तथा ॥

तीर्थे दर्शे च संप्राप्ते कुक्कुटाण्डप्रमाणतः ।

महालये गयाश्राद्धे कुर्यादामलकोपमम् ॥ इति ।

अनुक्तौ सामान्यप्रमाणं ग्राह्यम् । तदाह हेमाद्रावङ्गिराः—
कपित्थविल्वमात्रान्वा पिण्डान्दद्याद्विधानतः ।
कुक्कुटाण्डप्रमाणान्वाऽऽमलकैर्बदरैः समान् ॥ इति ।

तत्रैव धूम्रः—कपित्थस्य प्रमाणेन पिण्डान्दद्यात्समाहितः ।
तत्समं विकिरं दद्यात्पिण्डान्तेषु षडङ्गुले ॥

कलिकायामाश्वलायनः—

यत्र स्युर्वहवः पिण्डास्तत्र विल्वफलोपमाः ।

यत्र चैको भवेत्पिण्डस्तत्र खर्जूरसंनिभः ॥ इति ।

त्रयाणामुत्तरोत्तरं पिण्डप्रमाणाधिक्यमिति मैत्रायणीये । पिण्डप्रदानानन्तरं दर्भमूले कराघघर्षणमिति चन्द्रिकायाम् । तेषु दर्भेषु तं हस्तं निमृज्याह्येषमागिनामिति मनूक्तेः । आचार्योऽपि स्मृतिरूपेणाऽऽह—

पितुः पितामहादूर्ध्वं ये त्रयः पितरः स्मृताः ।

ते लेपाग्नेन तृप्यन्ति तेषां कार्यं हि तर्पणम् ॥ इति ।

तदनन्तरमत्र पितर इत्यनुमन्त्रणादि । अस्मिन्प्रकरणे यद्यपि पिण्डानामेवानुमन्त्रणमुपस्थानं प्रवाहणं च विधीयते तर्थाऽपि मन्त्राणां पितृलिङ्गत्वात्पिण्डा एव पितर इति कृत्वा पितर एवैतैर्मन्त्रैरभिधातव्या इति वृत्तिकृत् । शुन्धन्तां पितर इति द्वितीयनिनयनान्ते कर्तव्यमाहाऽऽचार्यः—

ततः सम्यग्द्विराचम्य नीवीं विस्रस्य वाग्यतः ।

सूत्रं तु असावभ्यङ्क्ष्वासावङ्क्ष्वेति पिण्डेष्वभ्यञ्जनाञ्जने वासो दद्याद्दशामूर्णास्तुकां वा पञ्चाशद्वर्षताया ऊर्ध्वं स्वलोमेति कृष्णतिलतैलेनाभ्यञ्जनम् । त्रैककुदेनाञ्जनमिति सिन्धौ । त्रिककुत्नाम पर्वतविशेषः । तत्रोद्भवमित्यर्थः । एतद् इति वासोदानं प्रतिपिण्डं मन्त्रावृत्त्येति केचित् । बहुवचनलिङ्गात्सर्वेभ्यः सकृन्मन्त्रेणेत्यन्ये । पित्रादित्रिभ्यः सकृन्मन्त्रेण वासोदानमिति वृत्तिकृत् । प्रतिपार्वणं मन्त्रावृत्तिरिति कारिकाकारः । अत्र वासस्थाने दशामूर्णास्तुकां वा दद्यादित्यर्थः । दशा वस्त्रस्यान्तप्रदेशः । ऊर्णास्तुका मेपलोमनिर्मिता रज्जुः । पञ्चाशद्वर्षोर्ध्वं जीवन्स्वीयमेव लोम वासोर्ध्वं दद्यात् । मन्त्रस्त्वयमेव सर्वेषु द्रव्येष्विति वृत्तिकृत् ।

व्याघ्रः—गन्धपुष्पाणि धूपं च दीपं च विनिवेदयेत् ।

दक्षिणां सर्वभोगांश्च प्रतिपिण्डं प्रदापयेत् ॥

शङ्खः—यत्किञ्चित्पच्यते गोहे भक्ष्यं भोज्यमगार्हितम् ।

अनिवेद्य न भोक्तव्यं पिण्डमूले कथंचन ॥

एतत्सव्येनेति केचित् । युक्तं त्वपसव्येनेति कमलाकरः ।

अथ पिण्डोपघाते प्रायश्चित्तम् । स्मृतिदर्पणेऽत्रिः—

मार्जारमूपकस्पर्शे पिण्डे च विदलीकृते ।

पुनः पिण्डाः प्रदातव्यास्तेन पाकेन तत्क्षणात् ॥

चन्द्रिकायां बौधायनः—

श्वचाण्डालादिभिः स्पृष्टः पिण्डो यद्युपहन्यते ।

प्राजापत्यं चरित्वाऽथ पुनः पिण्डं समाचरेत् ॥

पुनः स्नात्वा तदा कर्ता पिण्डं कुर्याद्यथाविधि ।

इति जातूकर्ण्यपाठः । काकस्पर्शं न दोष इति कमलाकरः । पिण्ड-
दानप्रभृतिपिण्डप्रवाहणपर्यन्तमेतत् । प्रवाहणानन्तरं पत्न्याः प्राशनपर्य-
न्तमुपघाते प्राशनस्य लोपः । अप्सवेव प्रतिपत्तिः ।

अथ प्रयोगक्रमः । उपस्थानानन्तरमुपविश्य

पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः ।

तृप्तिमायान्तु पिण्डेन मया दत्तेन भूतले ॥

मातामहस्तत्पिता च पिता तस्यापि तृप्यन्तु ।

द्विजानां तर्पणाद्धोमात्पिण्डदानाच्च मे दिवि ॥

इति केचित्पठन्ति । ततः परेतनेति मन्त्रेणाऽऽग्नेयीं प्रति पिण्डान्प्र-
वाह्य सकुटुम्बः पिडान्नमस्कृत्य वीरं मे दत्त पितर इति मन्त्रेण मध्यमं
पिण्डमादायाऽऽधत्त पितर इति मन्त्रेण पत्नीं प्राशयेत् । पिण्डपट्टके
मध्यमयोर्द्वयोः प्राशनम् । तदुक्तं मनुना—

पतिवता धर्मपत्नी पितृपूजनतत्परा ।

मध्यमं तु ततः पिण्डद्वयमद्यात्सुतार्थिनी ॥

आयुष्मन्तं सुतं सूते यशोमेधासमन्वितम् ।

धनवन्तं प्रजावन्तं सात्विकं धार्मिकं तथा ॥ इति ।

अनेकभार्यापक्षे छागलेयः—

प्राचीनावीतिनाऽऽमन्त्र्य पत्नीपिण्डो विभज्यते ।

प्रतिपत्तिं तु मन्त्रस्य कर्तव्याऽऽवृत्तिरत्र तु ॥

प्रयोगपारिजाते तु—पद्मदेवतश्राद्धे पत्नीहित्य एकैकमेकैकस्यै दद्यात् । बहुश्रे तु गुणवते (त्वे ?) वयतः कालतश्च समर्थाभ्यां दद्यात् । सर्वाः समर्थाश्चेद्दुःकालानुसारेण दद्यात् । अथवैकैकस्मिन्श्राद्धे एकैकस्यै दद्यादिति । मध्यमपिण्डप्राशनं च केवलं काम्यमेव न नित्यमिति मयूखे । पिण्डप्राशननिषेधश्चन्द्रिकायाम्—

अक्षता गुर्विणी वन्ध्या गतरक्ता रजस्वला ।

नाश्रीयान्मध्यमं पिण्डं जारिणी च प्रसूतिका ॥

न विद्यते क्षतं रजो यस्याः साऽक्षता । अप्रातरजोवृश्नित्यथः । पत्न्यामनधिकारिण्यां मध्यमपिण्डप्रतिपत्तिमाह बृहस्पतिः—

अन्यदेशगता पत्नी रोगिणी गर्भिणी तथा ।

तदा तं जीर्णवृषभश्छागो वा भोक्तुमर्हति ॥ इति ।

प्रयोगपारिजात आचार्यः—

आपन्नायां च भार्यायां यस्यां धीर्यं न रोहति ।

पुत्रे जाते तु पण्मासान्तारीजाते ऋतुत्रयम् ॥

ददाति मध्यमं पिण्डं जले वाऽप्यथवाऽजले ॥ इति ।

अवशिष्टपिण्डप्रतिपत्तिमाहाऽऽचार्यः—अपिस्वतरावतिप्रणतिं वा पश्य वाऽऽगन्तुरन्नकाम्याभावः स प्राश्रीयान्महारोगेण वाऽभितप्तः प्राश्रीया-
द्वन्पतरां गतिं गच्छतीति । याज्ञवल्क्यस्तु—

पिण्डास्तु गोजविप्रेभ्यो वृथादग्रौ जलेऽपि वा ।

प्राक्षिपेद्दक्षिणामीक्षन्दिशं पितृपरायणः ॥ इति ।

कामविशेषे पिण्डप्रतिपत्तिरुक्ता ब्रह्माण्डे—

पिण्डमग्नौ सदा वृथाद्दोगार्थी प्रथमं नरः ।

पत्न्यै प्रजार्थी वृथाद्वै मध्यमं मन्त्रपूर्वकम् ॥

उत्तमां गतिमन्विच्छन्गोपु नित्यं प्रयच्छति ।

आज्ञां प्रजां यशः कीर्तिमप्सु पिण्डं प्रवेशयेत् ॥

प्रार्थयन्दीर्घमापुष्यं वायसेभ्यः प्रयच्छति ।

आकाशं गमयेदप्सु स्थितो वा दक्षिणामुखः ॥ इति ।

ततो विप्राणामुत्तरापोशनं दत्त्वा तैर्गण्डूपकरणं हस्तप्रक्षालनं (द्वया) शुद्धाचमनं च कारयित्वा विकिरं दद्यात् । आचान्तेषु पिण्डदानमिति

शुद्धा(द्ध्या)चमनान्ते पिण्डदानं तदन्ते विकिरदानम् । विकिरदानविधिमाह चन्द्रिकायां देवलः—

ततः सर्वाशनं पात्रे गृहीत्वा विधिर्धं ब्रुधः ।

तेयामुच्छेर्धणस्थाने विकिरं भुवि निक्षिपेत् ॥

मनुरपि—सार्ववर्णिकमन्नाद्यमानीयाऽऽप्याव्य वारिणा ।

समुत्सृजेद्भुक्तवतामग्रतो विकिरन्भुवि ॥ इति ।

मन्त्रस्तु ये अग्निदग्धा इति परिशिष्टे । दानमपि कुशेषु सकृदेष भवति । कमलाकरस्तु—असोमपाश्वेति मन्त्रेण दैवेऽसंस्कृतप्रमीता इति मन्त्रेण पित्र्येऽन्नं प्रकीर्य ये अग्निदग्धा इति मन्त्रेणोच्छिष्टपिण्डं कुशोपरि पृथग्दद्यादिति पक्षान्तरमाह । शिष्टाचारोऽप्येवमेव । केचित्पत्युच्छिष्टं विकिरदानमित्याहुस्तत्र मूलं सुग्यम् । कारिकाभाष्ये—

विकिरं शासमात्रं तु न तद्दद्यात्पृथक्पृथक् ।

उद्धृत्य सर्वमन्नं तत्पङ्क्तिमूर्धनि दापयेत् ॥

इति पृथग्दाने निषेधदर्शनात् । पिण्डसंनिधौ विकिरदानमाह धूमः—

कपित्थस्य प्रमाणेन पिण्डं दद्यात्समाहितः ।

तत्समं विकिरं दद्यात्पिण्डान्तेषु पङ्क्तौ ॥ इति ।

ब्राह्मे—ततः प्रक्षाल्य हस्तौ च द्विराचम्य हरिं स्मरेत् ।

व्यासः—उच्छिष्टैरेव विकिरं तदैव प्रतिपादयेत् ।

भृगुः—पिण्डवत्प्रतिपत्तिः स्याद्विकिरस्येति तील्वलिः ।

चन्द्रिकायाम्—यदुक्तं पिण्डदानस्य तत्कर्म विकिरस्य च ।

क्षिपेत्पिण्डाञ्जले घाऽग्नौ विकिरं तत्र निक्षिपेत् ॥ इति ।

विकिरणानन्तरं कर्तव्यतोक्ता परिशिष्टे—अथ ब्राह्मणहस्तेष्वपो दर्भाश्च दत्त्वा यवांस्तिलांश्चावधाय पुनरपो दद्यादेषा हस्तशुद्धिरिति ।

मात्स्ये—तेष्वाचान्तेषु चाऽऽचम्य वारि दद्यात्सकृत्सकृत् ।

तैलपुष्पाक्षतान्पश्चादक्षय्योदकमेव च ॥

आचान्तेष्विति यदुक्तं तच्छाखान्तराभिप्रायम् । दैवे यवानेव । अत्र दैवे सव्यं पित्र्ये त्वपसव्यमिति कर्कः । उभयत्र सव्येनैवेति कमलाकरः । अत्र शिषा आपः सन्वित्यादिप्रयोगो ज्ञेय इति स एव ।

मात्स्ये—अघोराः पितरः सन्तु सन्त्वित्युक्ते पुनर्द्विजैः ।

गोत्रं तथा वर्धतां नस्तथेत्युक्तः स तैः पुनः ॥

कारिकामाप्ये वृद्धयोगीश्वरः—

ततश्च तिलकं कुर्यान्मन्त्रेणानेन भक्तिः ।

मन्त्रस्तु—नित्यानुष्ठानसिद्ध्यर्थं सर्वदाऽप्यात्मशुद्धये ।

पितृमातृपराः सन्तः सन्त्वस्मत्कुलजा नराः ॥ इति ।

अत्राप्यूर्ध्वपुण्ड्रनिषेध इति कमलाकरः । चन्द्रिकार्या भविष्योत्तरे—

चालयेद्विप्रपात्राणि स्वयं क्षिप्योऽथवा सुतः ।

न स्त्री प्रचालयेत्तानि हीनजातिर्न चाग्रजः ॥

अग्रजो ज्येष्ठभ्राता । यजमानापेक्षयाऽधिकवयस्क इति हेमाद्रिः ।

अत्रोच्छिष्टपात्रचालनमात्रं नोद्वासनम् । उद्वासनस्य कालान्तरोक्त-
त्वात् । पात्रचालनानन्तरं कर्तव्यमाह जातूकर्ण्यः—

स्वस्तिवाच्यं ततः कुर्यादक्षय्योदकमेव च ।

वृद्धशातातपः—पितृणां नामगोत्रेण करे देयं तिलोदकम् ।

प्रत्येकं पितृतीर्थेन अक्षय्यमिदमस्त्विति ॥

ततः पूर्वस्थापितं प्रथमार्घ्यपात्रं चालयेत् ।

नागरखण्डे—उत्तानमर्घ्यपात्रं तु कृत्वा दद्याच्च दक्षिणाम् ।

हिरण्यं देवतानां च पितृणां रजतं तथा ॥

अतिदरिद्रस्य दक्षिणोक्ता सौरपुराणे—

यज्ञोपवीतमथवा ह्यतिदारिद्र्यपीडितः ।

प्रदद्याद्दक्षिणार्थं वै तेन स्यात्कर्म साद्गुणम् ॥

कलिकायामाचार्यः—दद्याद्यज्ञोपवीत्येव ताम्बूलं दक्षिणां तथा । इति ।

आदौ पै(पि)त्र्यविभ्रेभ्यः पश्चाद्द्वैविकविभ्रेभ्य इति चन्द्रिकायाम् ।

दक्षिणादानं सव्येनेति वृत्तिकृत् । पितृद्देशेन दक्षिणादानेऽपसव्यं विप्रोद्देशे
तु सव्यमिति माधवः । दक्षिणा च विप्रगुणानुरोधेन विप्रमाऽपि देया ।

एकपद्भक्त्युपविष्टानां विप्राणां श्राद्धकर्मणि ।

भक्ष्यं भोज्यं समं देयं दक्षिणा त्वनुसारतः ॥

इति मयूरवोदाहृतवचनात् । एतस्मिन्काले सति संभवे विशेषद-
क्षिणोक्ता मत्स्यपुराणे—

गोभूहिरण्यवासांसि यानानि शयनानि च ।

व्याद्यदिष्टं विप्राणामात्मनः पितुरेव च ॥ इति ।

अन्यान्यपि दीपिकाधूपपात्ररुद्रचुम्बोष्णीपोदककमण्डलुच्छत्रोपा-
नहर्षणव्यजनताम्बूलचामरसुवर्णाद्यलंकारशय्यासनसुगन्धहसन्तिकापत-
द्वाहगण्डूपपात्रभोजनपात्रतदाधारादीनि प्रदेयानि । दक्षिणादानानन्तरं
कर्तव्यमाह निर्णयसिन्धावत्रिः—

वक्षेच्च तांस्ततो विमान्पित्रादिभ्यः स्वधोच्यताम् ॥ इति ।

ततो विश्वे देवाः प्रीयन्तां पितरः प्रीयन्तामिति वाचनमिति चन्द्रि-
कायाम् । अत्र प्रतिवचनान्ते शोभनं हविरिति विप्रा इवुः । उक्तं च
प्रयोगपारिजाते वसिष्ठेन—

श्राद्धायसाने कर्तव्या द्विजैरगुणस्तुतिः ॥ इति ।

दक्षिणादानोत्तरमर्ध्यपात्रचालनमुक्तं मयूरवे । तत्रत्यवचनम्—

यस्मिंस्ते संस्रवाः पूर्वं पितृपात्रे निवेशिताः ।

पितृपात्रं तदुत्तानं कृत्वा विप्रान्विसर्जयेत् ॥ इति ।

मात्स्ये—वाजे वाज इति जपन्कुशाग्रेण विसर्जयेत् ।

पितृपूर्वं विसर्जयेदिति प्रचेताः । विसर्जनवाक्यमाहाऽऽचार्यः—३*

स्वधोच्यतामिति विसृजेदस्तु स्वधेति वा पिण्डनिपरणदेशं संसृज्य
तिलान्विकीर्य शान्तिरस्त्विति जलं क्षिपेदिति । चन्द्रिकायां ब्रह्मवैवर्ते—

आमावाजेति मन्त्रं च पठित्वा च प्रदक्षिणम् ।

शौनकः—ब्राह्मणानथ निर्यातान्परीत्य त्रिः प्रदक्षिणम् ।

सस्त्रीकः प्रणभेत्सार्धं स्वजनै रचिताञ्जलिः ॥

कानिष्ठप्रथमा ज्येष्ठचरमाः स्युः प्रदक्षिणे ।

प्रदक्षिणादि मण्डलदेशे कार्यमिति हेमाद्रिः ।

ब्रह्मवैवर्ते—प्राञ्जलिश्च ततः प्राह तान्विप्रान्सत्यवादिनः ।

मनुः—विसृज्य ब्राह्मणान् रतांस्तु नियतो वाग्यतः शुचिः ।

दक्षिणां दिशमाकाङ्क्षन्वाचेतेमान्वरान्पितॄन् ॥

दातारो नोऽभिवर्धन्तां वेदाः संततिरेव नः ।

श्रद्धा च नो मा व्यगमद्बहुदेयं च नोऽस्त्विति ।

चौधायनः—अन्नं च नो बहु भवेदतिथींश्च लभेमहि .

याचितारश्च नः सन्तु मा च याचिष्म कंचन ॥ इति ।

अत्र दातारो वोऽभिवर्धन्तामित्याद्यहेन विप्रैः प्रतिवचनं कार्यमिति सुदर्शनभाष्ये । अत्र स्वादुपंसदः० ब्राह्मणासः पितरः० इति मन्त्रद्वयं च पठेयुरिति कमलाकरः । इहैव स्तं मा वियौष्टं०

आयुः प्रजां धनं विद्यां स्वर्गं मोक्षं सुखानि च ।

प्रयच्छन्तु तथा राज्यं प्रीता नृणां पितामहाः ॥

इति च पठित्वाऽऽशिषो द्युरिति चन्द्रिकायाम् । ततो विप्रान्पादसं-
वाहनादिभिः परितोष्य प्राणिपत्य प्रार्थयेत् । प्रार्थनामाह हेमाद्रौ बृह-
स्पतिः—

अद्य मे सफलं जन्म भवत्पादाब्जवन्दनात् ।

अद्य मे वंशजाः सर्वे याता वोऽनुग्रहाद्विवम् ॥

पत्रशाकादिदानेन क्लेशिता यूयमीदृशाः ।

तत्क्लेशजातं चित्ते तु विस्मृत्य क्षन्तुमर्हथ ॥

यस्य स्मृत्येत्यादयश्चन्द्रिकादावुक्ताः ।

विष्णुः—मन्त्रहीनं क्रियाहीनं भक्तिहीनं द्विजोत्तमाः ।

श्राद्धं संपूर्णतां यातु प्रसादान्भवतां मम ॥ इति ।

वासिष्ठासः पितृ० देवान्वसिष्ठोऽदान इति मन्त्रद्वयमिदं पितृभ्यो
नमो अस्वद्येति ब्राह्मणं च पठेदिति चन्द्रिकायाम् । ततः कर्मेश्वरार्पणं
कृत्वा विप्रैः सहाष्टौ पदानि सपरिवारोऽनुव्रज्य विसर्जयेदिति कारि-
काभाष्ये । उक्तं च प्रचेतसा—

विसृजेन्द्रक्तिसंयुक्तः सीमान्तं चाप्यनुव्रजेत् ॥ इति ।

विप्रोच्छिष्टोद्वासनकालः कूर्मपुराणे—

नोद्वासयेत्तदुच्छिष्टं यावन्नास्तमितो रविः । इति ।

इदं गृहान्तरसस्य इति कमलाकरः । गृहैकत्वे तु मनुः—उच्छेपणं तु
तत्तिष्ठेद्यावद्विप्रा विसर्जिताः । तत्प्रतिपत्तिमाह जानूकर्ण्यः—

द्विजभुक्तावशिष्टं तु सर्वमेकत्र संहरेत् ।

शुचिभूमौ प्रयत्नेन निःस्रन्याच्छादयेद्बुधः ॥ इति ।

ब्रह्माण्डे—शूद्राय चानुपेताय श्राद्धोच्छिष्टं न दापयेत् ।

यो दद्याद्दागतो मोहान्न तद्गच्छति वै पितृन् ॥ इति ।

विप्रविसर्जनानन्तरं पूर्वं प्रतिविप्रं स्थापितदीपान्निर्वासयेदिति कारिकाभाष्ये । ततोऽगारं गोमयेनोपलेपयेदिति वाजपेययाजिपद्धतौ ।

अथ वैश्वदेवनिर्णयः । तत्र बह्वृचैराहिताग्निभिरनाहिताग्निभिरनग्निकैश्च सर्वैः सर्वश्राद्धेषु श्राद्धान्ते श्राद्धशेषेण वैश्वदेवः कार्यं इति वृत्तिकारप्रभृतयो बहवः । केचिद्बह्वृचैराहिताग्निभिः सर्वेषु श्राद्धेषु श्राद्धादौ पृथक्पाकेन वैश्वदेवः कार्यं इत्याहुस्तत्पक्षे दर्शं क्रममाह लौगाक्षिः—

पक्षान्तं कर्म निर्वर्त्य वैश्वदेवं च साग्निकः ।

पिण्डयज्ञं ततः कुर्यात्ततोऽन्वाहार्यकं बुधः ॥ इति ।

पक्षान्तं कर्मान्वाधानम् । अन्वाहार्यकं दर्शश्राद्धम् । हेमाद्रौ मार्कण्डेयः—

ततो नित्यक्रियां कुर्याद्भोजयेच्च ततोऽतिथीन् ।

ततस्तदन्नं भुञ्जीत सह भृत्यादिभिर्नरः ॥ इति ।

ततः श्राद्धशेषात् । नित्यक्रिया नित्यश्राद्धम् । तच्चाथे वक्ष्यते । मत्स्यपुराणे—

ततश्च वैश्वदेवान्ते समृत्यः सहबान्धवः ।

भुञ्जीतातिथिसंयुक्तः सर्वं पितृनिषेवितम् ॥ इति ।

सर्वं पवादिनिषिद्धमापाद्यपीत्यर्थः । इदं भोजनं श्राद्धाङ्गमेव विहितं न तु रागप्राप्तमिति कमलाकरः । अभोजने दोषमाह देवलः—

श्राद्धं दत्त्वा तु यो विप्रो न भुङ्क्ते चेत्कदाचन ।

देवा हृष्यं न गृह्णन्ति कव्यानि पितरस्तथा ॥

भोजनकालमाह जातूकर्ण्यः—

अहन्येव तु भोक्तव्यं कृते श्राद्धे द्विजन्मभिः ।

अन्यथा ह्यासुरं श्राद्धं परपाके च सेविते ॥

उपवासप्राप्तौ यत्र कृष्णैकादश्यादाद्युपवासो नाऽऽवश्यकस्तत्र वैधत्वाद्भुञ्जीतैव । यत्र तु शिवरात्र्यैकादश्यादाद्युपवास आवश्यकस्तत्र श्राद्धशेषान्नस्यावघ्राणमेवेति कमलाकरः । व्यासोऽपि—

उपवासो यदा नित्यः श्राद्धं नैमित्तिकं भवेत् ।

उपवासं तदा कुर्यादाघ्राय पितृसेवितम् ॥ इति ।

कान्योपवासेऽप्याधेयमेव । ग्रहणवेधे तु भुञ्जीति कर्मलाकरः ।
हेमाद्रिस्तु यत्रोपवास आवश्यकस्तत्रैकभक्तमयाचितं वा कार्यमित्याह ।
अन्यश्राद्धशेषभोजने तु जाबालिः-

विषस्त्वन्यगृहे श्राद्धशिष्टान्नं भोजनं चरेत् ।
प्राजापत्यं विशुद्धिः स्याज्ज्ञातिगोत्रे न दोषकृत् ॥
श्वशुरस्य गुगेर्वाऽपि मातुलन्य महात्मनः ।
ज्येष्ठभ्रातुश्च पुत्रस्य ब्रह्मनिष्ठस्य योगिनः ॥
एतेषां श्राद्धशेषान्नं भुक्त्वा दोषो न विद्यते ।

आचार्यः—न शूद्रं भोजयेत्तस्मिन्गृहे यत्नेन तद्दिने ।

श्राद्धशेषं न शूद्रेभ्यः प्रदद्यादसिलेष्वपि ॥ इति ।

अथ श्राद्धाङ्गत्तर्पणम् । तस्कात्तमाह निर्णयसिन्धौ कपिलः-

मन्वादिषु युगाद्यासु दर्शसंक्रमणेषु च ।
पौर्णमास्यां द्यतीपाते दद्यात्पूर्वं तिलोदकम् ॥
अर्धोदये गजच्छाये षष्ठ्यां चैव महालये ।
भरण्यां च मयाश्राद्धे श्राद्धान्ते तर्पणं विदुः ॥

षष्ठ्यां कपिलपण्ड्याम् । शौनकः-

मातापित्रोर्भृताहे तु परेऽहनि तिलोदकम् ।

गर्गः- पक्षश्राद्धे हिरण्ये च अनुव्रज्य तिलोदकम् ॥

सङ्गन्महालये श्वः स्यादष्टकांस्वन्त एव हि ।

वेधुतिश्राद्धे तु श्राद्धात्पूर्वमेव । तीर्थश्राद्धादौ विशेषाभावाद्दर्शवत्पूर्व-
मेव तर्पणमिति चन्द्रिकायाम् । श्राद्धाङ्गत्तर्पणस्य निषेधो बृहन्नारदीये-
वृद्धिश्राद्धे सपिण्डे च प्रेतश्राद्धेऽनुमासिके ।

संवत्सरविमोके च न दुर्यात्तिलतर्पणम् ॥

श्राद्धाङ्गमित्यर्थः । यत्र दर्शश्राद्धादौ श्राद्धात्पूर्वं तर्पणं विहितं
तत्र मध्याह्ने सात्त्वा मध्याह्नसंध्यां विधाय ब्रह्मयज्ञं कृत्वा तदङ्ग-
तर्पणेन सह दर्शश्राद्धाङ्गत्तर्पणस्य तन्धेणानुष्ठानं प्रसङ्गसिद्धिर्वा ।
अन्ये तु नित्यतर्पणं मातृपितृवर्गयोर्भिन्नं दर्शादौ तु सपत्नीकस्य
पितृवर्गस्येति देवताभेदात्तन्धेणानुष्ठानं न युक्तमिति वदन्ति । अस्मि-
न्पक्षे कालान्तरे ब्रह्मयज्ञकरणपक्षे वा दर्शादिश्राद्धाङ्गं सतिलं तर्पणं
कृत्वा श्राद्धारम्भः कर्तव्यः । यत्र पक्षश्राद्धादौ श्राद्धान्ते तर्पणं
विहितं तत्र तर्पणं कृत्वा वैश्वदेवः कार्यः । प्रमादात्तदकरणे वैश्व-

देवान्ते कार्यम् । वैश्वदेवान्ते ब्रह्मयज्ञकरणपक्षे कामं भवतु प्रसङ्ग-
स्तन्त्रं वा । यत्र प्रत्याद्विकगहलयादौ परेऽहनि तर्पणं विहितं तत्र
स्नात्वा प्रातःसंध्यामुपास्य श्राद्धाङ्गतर्पणं विधाय पुनः स्नात्वा शेषमा-
ह्निकं कुर्यात् । पित्रादिवार्षिके तु नित्यतर्पणं तिलवर्जं कर्तव्यम् । विवा-
हाद्यनन्तरं विवाहादिप्रयुक्तसतिलनित्यतर्पणनिषेधे श्राद्धात्पूर्वं श्राद्धो-
त्तरं वा तत्तदुक्तकाले श्राद्धाङ्गत्वेन भिन्नमेव सतिलं तर्पणं कार्यम् ।
तत्र न तन्त्रप्रसङ्गौ । एतत्तर्पणं तेषां श्राद्धं क्रियते तेषामेव । यत्र सकृ-
न्महालयादौ सर्वेषां पितॄणां श्राद्धं क्रियते तत्र सर्वेषामेव तर्पणमिति ।
तर्पणविधिश्चन्द्रिकायाम्—

स्नात्वा तीरं समागत्य उपविश्य कुशासने ।
अपसव्यं ततः कृत्वा सव्यं जान्वाच्य भूतले ॥
नामगोत्रस्वधाकारैर्द्वितीयान्तेन तर्पयेत् ।
संतर्पयेत्पितृनिज्यान्स्नात्वा वस्त्रं च धारयेत् ॥ इति ।

तर्पणोत्तरं नित्यस्नानं कृन्वेत्यर्थ इति कमलाकरः । मम तु यत्र प्रत्या-
द्विकगहलयादौ परेऽहनि तर्पणं तत्रेधेदं स्नानविधानमिति प्रतिभाति । तच्च
तर्पणं बह्वृचानां दक्षिणेनैव हस्तेन प्रतिदेवतं मन्त्रापृत्या त्रिवारं भवति ।
आचारार्कं चाज्ञपत्यः—

अन्वारद्वेन सव्येन पाणिना दक्षिणेन तु ।
सव्योत्तराभ्यां पाणिभ्यामथवा तर्पणं भवेत् ॥

अत्र पूर्वार्धं उद्भूचान्प्रत्युत्तरार्धमन्यान्प्रतीति बोध्यमिति । केचित्तु
सूत्रे त्रिवारमनुक्तत्वात्सकृद्विच्युत्ति । एवं नित्यतर्पणेऽपीति कम-
लाकरः । तर्पणं जले क्रियते चेद्दार्श्वस्या एव कुर्यात् । स्थले तु
शुष्कवासा एव ।

आर्द्रवासा जले कुर्यात्तर्पणाचमनं जपम् ।
शुष्कवासाः स्थले कुर्यात्तर्पणाचमनं जपम् ॥

इति हारीतोक्तेः । तथा चोक्तम्—

वासित्वा वसनं शुक्लं स्थले विस्तीर्णवर्हिषि ।
विधिज्ञस्तर्पणं कुर्यान्न पात्रेषु कदाचन ॥
पात्राद्वा जलमादाय शुभे पात्रान्तरे क्षिपेत् ।
जलपूर्णेऽथवा गर्ते न स्थले तु विवर्हिषि ॥ इति ।

पात्रमाह पितामहः—

हैमं रौप्यमयं वाऽपि ताग्रं कांस्यसमुद्भवम् ।

पितृणां तर्पणे पात्रं भृन्मयं तु परित्यजेत् ॥ इति ।

जलज्ञानं पात्रेणापि कार्यमिति केचित् । उक्तं त्वाचारार्के मरीचिना—

सौवर्णेन तु पात्रेण तान्नरौप्यमयेन वा ।

औदुम्बरेण सङ्गमेन पितृणां दत्तमक्षयम् ॥ इति ।

तत्रैव योगयाज्ञवल्क्यः—

यद्युद्धृतं निषिञ्चेत्तु तिलान्संमिश्रयेज्जले ।

अतोऽन्यथा तु सव्येन तिला ग्राह्या विचक्षणैः ॥ इति ।

अन्यथा, अनुद्धृतेन तर्पण इत्यर्थः । स्मृतिसारे—

जलान्ते तिलदर्भास्तु योऽनुष्ठानाय याचते ।

नानुष्ठानफलं तस्य दातुरेव हि तत्फलम् ॥ इति ।

अथ प्रसङ्गान्नित्यतिलतर्पणे निषिद्धकाल उच्यते । वृद्धमनुः—

सप्तम्यां भानुवारे च मातापित्रोर्मृतेऽहनि ।

तिलैर्यस्तर्पणं कुर्यात्स भवेत्पितृघातकः ॥

चन्द्रिकायां गार्ग्यः—

मानौ भौमे त्रयोदश्यां नन्दाभृगुमघासु च ।

पिण्डदानं मृदा स्नानं न कुर्यात्तिलतर्पणम् ॥ इति ।

मरीचिः—सप्तम्यां रविवारे च गृहे जन्मदिने तथा ।

भृत्यपुत्रकलत्रार्थी न कुर्यात्तिलतर्पणम् ॥

वायुपुराणे—पक्षयोरुभयो राजन्सप्तम्यां निशि संध्ययोः ।

उत्तरार्धं तथैव । स्मृत्यर्थसारे—

विवाहयतचूडासु वर्षमर्धं तदर्धकम् ।

पिण्डदानं मृदा स्नानं न कुर्यात्तिलतर्पणम् ॥ इति ।

निर्णयसिन्धौ—वृद्धौ सत्यां च तन्मासि नेत्याहुस्तिलतर्पणम् । इति ।

संग्रहे—नन्दायां मार्गवदिने कृत्तिकासु मघासु च ।

मरण्यां भानुवारे, च गजच्छायाह्वये तथा ॥

अयनद्वितये चैव मन्दादिषु युगादिषु ।

पिण्डदानं मृदा स्नानं न कुर्यात्तिलतर्पणम् ॥ इति ।

अत्र तिलतर्पणनिषेधाश्चिन्त्य इति कमलाकरः । अत्र नित्यतर्पणे तिलमात्रनिषेधो न तु तर्पणनिषेधः । सिन्धौ गोभिलः—

तिलाभावे निषिद्धाहे सुवर्णरजतान्वितम् ।

तदभावे निषिञ्चेत्तु दर्ममन्त्रेण वा पुनः ॥ इति ।

अत्र तिलतर्पणनिषेधकालेऽपि क्वचित्प्रतिप्रसवः पृथ्वीचन्द्रोदये—

तीर्थे तिथिविशेषे च गयायां प्रेतपक्षके ।

निषिद्धेऽपि दिने कुर्यात्तर्पणं तिलमिश्रितम् ॥

कात्यायनः—उपरागे पितुः श्राद्धे पातेऽमायां च संक्रमे ।

निषिद्धेऽपि हि सर्वत्र तिलैस्तर्पणमाचरेत् ॥

एतत्परेद्युःश्राद्धाङ्गन्तर्पणविषयमिति केचित् । श्राद्धाशक्तस्य तत्स्थानापन्नतर्पणविषयमिति कमलाकरः । श्राद्धाङ्गन्तर्पणं तु निषिद्धकालेऽपि तिलैः सह भवत्येव । जीवत्पितृकेण तु श्राद्धाङ्गन्तर्पणं केवलजलेन कार्यमिति केचित् । अन्ये तु शुक्लतिलैरिति वदन्ति । संन्यस्ते पितरि जीवति पतिते वा तत्पुत्रेण जीवत्पितृकेणापि नित्यतर्पणं पितुः पित्रादीनां कर्तव्यमिति चन्द्रिकादौ तदपि केवलजलेन पितरि मृते तत्प्रभृत्येवेत्यलमतिविस्तरेण । अन्ये च कर्तृनिर्णयादयो विशेषा ग्रन्थान्तरतोऽवगन्तव्याः । गौरवभयाज्ञेहोच्यन्ते ।

इति श्रीमच्चित्तपावनकेळकरोपाभिधमहादेवात्मजबापूभट्ट-
विरचितायां श्राद्धमञ्जरी परिभाषाप्रकरणम् ।

अथ सर्वेषां श्राद्धानां प्रकृतिभूतत्वादादौ पार्वणश्राद्धमुच्यते । तत्कालमाह कारिकाकारः—

कुर्वीत पार्वणश्राद्धं दर्शे तदभिधीयते ।

कामयोगेन चान्यस्यां तिथावित्यपरेऽञ्जुवन् ॥ इति ।

चन्द्रिकायां भविष्ये—

अमावास्यायां क्रियते तत्पार्वणमूदाहृतम् ।

क्रियते वा पर्वणि यत्तत्पार्वणमिति स्थितिः ॥

अत्र पर्वशब्देन कृष्णाष्टम्यादीनि गृह्यन्ते । तान्युक्तानि विष्णुपुराणे—

चतुर्दश्यष्टमी कृष्णा अमावास्या च पूर्णिमा ।
पर्वाण्येतानि चत्वारि रविसंक्रमणं तथा ॥ इति ।

अथ दर्शश्राद्धप्रयोगः—श्राद्धकर्ता ब्रह्मकाण्डत्रयपक्षे श्राद्धदिनात्पूर्वेद्युः सायं होमानन्तरं सद्यःपक्षे तु श्राद्धदिने प्रातः कृतनित्यक्रियः शुचिर्बद्धशिखो ढर्भान्धारयमाणो लब्धब्राह्मणानुज्ञो यज्ञोपवीती द्विराचम्य पवित्रं ते वि० आशत इति मन्त्रेण पवित्रे धृत्वा प्राणानायम्य देशकालौ रमरेत् । [*श्रीमद्भगवतो महापुरुषस्य शक्त्या भ्रियमाणे भूर्लोकं भूमण्डले जम्बुद्वीपे भारते दर्पे भरतखण्डे दण्डकारण्ये भूमध्यरेखायाः पश्चिमदिग्भागे गोदावर्या दक्षिणदिग्भागे कारेया उत्तरदिग्भागे सह्याद्रेः पश्चिमदिग्भागे पश्चिमहोदधेः पूर्वभागेऽरिमञ्जरीपश्चुरामनिर्मिते पुण्यक्षेत्रे श्रीविष्णोराज्ञया प्रवर्तमानस्य ब्रह्मणो द्वितीयपरार्थे श्वेतवराहकल्पे वैवस्वतमन्वन्तरेऽष्टाविंशतितमे महायुगेऽस्मिन्वर्तमाने कलियुगे तत्प्रथमचरणे बौद्धावतारे शालिवाहनशके शुक्लसंवत्सर उदगयने हेमन्तर्तौ पीपे मासे कृष्णपक्षेऽमावास्यायां तिथौ मन्द्यासरे श्रवणे नक्षत्रे व्यतीपातयोगे चतुष्पदकरणे मकरस्थे सूर्ये मकरस्थे चन्द्रे कुम्भस्थे भौमे कुम्भस्थे सौम्ये मीनस्थे देवगुरौ मकरस्थे शुक्ले वृश्चिकस्थे शनैश्चरे कन्यास्थे राहौ मीनस्थे कृतावेवंगुणविशिष्टे पुण्यकाल एवं यथादेश यथाकालं देशकालाद्युल्लिख्य] प्राचीनावीत्यस्मात्पितुरमुकशर्मणोऽमुकगोत्रस्य वसुरुपस्य सपत्नीकस्य, अस्मात्पितामहस्यामुकशर्मणोऽमुकगोत्रस्य रुद्ररूपस्य सपत्नीकस्य, अस्मात्प्रपितामहस्यामुकशर्मणोऽमुकगोत्रस्याऽऽदित्यरूपस्य सपत्नीकस्य, अस्मन्मातामहस्या० श० गो० व० स० अस्मन्मातुः पितामहस्या० श० गो० रु० स० अस्मन्मातुः प्रपिताम० श० गो० आ० सपत्नीकस्य, अथवाऽस्मात्पितृपितामहप्रपितामहानाममुकशर्मणाममुकगोत्राणां वसुरुद्रादित्यस्वरूपाणां सपत्नीकानामस्मन्मातामहमातुःपितामहमातुःप्रपितामहानाममु० सपत्नीकानामेवमुल्लिख्य, एतेषां तृप्त्यर्थं दर्शश्राद्धं सदैवं सपिण्ड पार्वणेन विधिनाऽन्नेन हविषा श्वः सद्यो वा करिष्य इति संकरष्य ब्राह्मणाग्निमन्त्र्य यज्ञोपवीती प्राङ्मुखोपविष्टस्य विप्रस्य

* धनुश्चिह्नान्तीतप्रत्येक पुस्तके नास्ति ।

दक्षिणं पादं जानुं वा स्पृष्ट्वाऽऽस्मत्पितृपितामहप्रपितामहानाममुकश०
 अस्मन्मातामहमातुःपितामह० सपत्नीकानां दर्शश्राद्धे पुरुरवार्ष्व-
 संज्ञकविश्वदेवार्थं त्वया क्षणः करणीय इति तं प्रति वदेत् । ॐ त-
 थेति विप्रो यजमानं प्रति वदेत् । एवं द्वितीयस्य । इति विश्वदेवार्थं द्वौ
 विप्रौ निमन्त्रयेत् । अपि वाऽय्यकरिष्यमाणदर्शश्राद्धे पुरुरवार्ष्व० क्षणः
 करणीय इति निमन्त्रयेत् । ततः प्राचीनापीत्युदङ्मुखस्य विप्रस्य सव्यं
 पादं जानुं वा स्पृष्ट्वाऽय्यकरिष्यमाणदर्शश्राद्धेऽस्मत्पितुरमुकशर्म० सप-
 त्नीकस्य स्थाने० करणीय इति तं वदेत् । ॐ तथेति प्रतिवचनम् ।
 एवं पितामहप्रपितामहयोर्मातामहवर्गस्य च, एवमष्टौ ब्राह्मणान्नि-
 मन्त्रय यज्ञोपवीती सर्वान्प्रार्थयेत् । अक्रोधनैः० कारिणा । इति निमन्त्र-
 णान्तरमृग्वेदिनो विप्रा उपह्वये सु० प्रवोचमित्यूचं पठेयुः । यजुर्वेदि-
 नस्तु आब्रह्मन्ब्राह्मणो० योगक्षेमो नः कल्पतामिति पठेयुः । ततः कर्ता
 पाकसिद्ध्यनन्तरं निमन्त्रितान्त्रिप्रानाहूय प्रत्युत्थानादिना सत्कृत्य तेषां
 श्मश्रुकर्मादिस्नानान्तं कारयेत् । ततो मध्याह्ने दर्शश्राद्धाङ्गतर्पणं कुर्यात् ।
 तद्यथा नद्यादौ स्नात्वा तीरं समागत्य वासः परिधाय दर्भासन उपवि-
 ष्याऽऽचम्य पवित्रपाणिः प्राणानायम्य देशकालौ० प्रा० अय्यकरिष्य-
 माणदर्शश्राद्धाङ्गत्वेन पितृतर्पणं करिष्य इति सं० सव्यं जान्वाच्य दक्षि-
 णहस्ते दर्भान्निधाय सव्यहस्तेनान्वारब्धेन दक्षिणेन पाणिना पितृतीर्थे-
 नाग्नेप्यभिमुखः शुचिस्थले दर्भान्नास्तीर्य तेषु तिलैर्मिश्रितजलेन तर्पयेत् ।
 अस्मत्पितरं० शर्माणं० गो० वसुरूपं सपत्नीकं स्वधा नमस्तर्पयामि ?
 अस्मत्पितामहं० २ अस्मत्प्रपितामहं० ३ अस्मन्मातामहं० ४ अस्मन्मातुः
 पितामहं० ५ अस्मन्मातुः प्रपितामहं० ६ इति प्रत्येकं मन्त्रावृत्त्या
 त्रिस्त्रिस्तर्पयित्वाऽनेन पितृतर्पणाख्येन कर्मणा भगवान्पितृरूपी परमेश्वरः
 प्रीयतामिति कर्मेश्वरार्पणं कृत्वा पुनः स्नानं कृत्वा वस्त्रधारणं विधाय
 गृहमागत्य कुतपकाले श्राद्धारम्भं कुर्यात् । द्विराचम्य पवित्रवन्तः०
 प्वारभमिति पवित्रे धृत्वा देशकालौ संकीर्त्य प्राचीनापीत्यस्मत्पितुर-
 मुकशर्मणोऽमुकगोत्रस्य वसुरूपस्य सपत्नीकस्येत्यादि मातुःप्रपिताम-
 हान्तान्पूर्ववदुच्चार्योपनान्तं दर्शश्राद्धं करिष्य इति संकल्पयेत् ।
 कुरुष्वेति प्रतिवचनम् । यज्ञोपवीत्येकस्मिन्पात्रे देवार्चनार्थमिमं मे गङ्गे०

१ ग. त प्रति व० । २ ग. 'प्रान्यमाहू' । ३ ग. 'लममि' । ४ क. रा. 'णा प' । ५ ग.
 स्नात्वा । ६ ग. 'हान्तं पू' । ७ ग. 'करष्य कृ' ।

मयेति मन्त्रेण शुद्धोदकं निक्षिप्य गन्धद्वारां० श्रियमिति गन्धम् । शरासः० लिप्ततेति दर्भमयकूर्चम् । यवोऽसि धान्य० स्मृतमिति यवान् । हिरण्यरूपः० मस्मा इति हिरण्यम् । तूष्णीं पुष्पतुलसीपत्रफलानि निक्षिपेदेतद्यवोदकम् । ततः प्राचीनावीत्यन्यास्मिन्पात्रे पित्रर्चनार्थं तिलोदकं संपादयेत् । तत्र यवावपनस्थाने तिलोऽसि सोमदे० नम इति मन्त्रेण तिलास्निक्षिप्य तुलसीदलैः सह मृङ्गिराजपत्राणि निक्षिपेदिति विशेषः । अन्यत्पूर्ववत् । ततो यज्ञोपवीत्यात्मशुद्ध्यर्थं गृहद्रव्यादिशुद्ध्यर्थं च न तमंहो० शुचीवो० सहस्रशीर्षा० तरत्समन्दी० इत्यादिपवित्रमन्त्रान्ब्राह्मणैः सह पठित्वा शुद्धवतीभिः कूष्माण्डीभिः पावमानीभिस्तरत्समन्दीभिश्च यवोदकमभिमन्त्रयेत् । उपकल्पितान्पदार्थान्यवोदकेन प्रोक्षयेत् । ततो विप्राणामग्रे ब्रह्मदण्डार्थं कुशतिलसहितं हिरण्यं निधाय समस्तसंपत्० पादपङ्कजमित्पन्तं पठित्वा प्रदक्षिणीकृत्य प्राचीना० दर्शश्राद्धं कर्तुं ममाधिकारसंपदस्त्विति भवन्तो ब्रुवन्तु । अस्तु श्राद्धाधिकारसंपदिति प्रतिवचनम् । ततो यज्ञोपवी० विप्रास्त्रिमन्त्रणक्रमेण प्रत्येकं भवतः स्वागतमिति प्रणतिपूर्वकं प्रब्रूयात् । सुस्वागतमिति विप्राः । ततः कर्ता पुनर्विप्रास्त्रिमन्त्रयेत् । तद्यथा प्राङ्मुखोपविष्टस्य विप्रस्य दक्षिणं जानुं स्पृष्ट्वा दर्शश्राद्धे पुरुर्वार्द्रवसंज्ञकविश्वदेवार्थं त्वया क्षणः करणीयः । ओं तथेति विप्राः । कर्ता प्राप्नोतु भवान् । विप्रः प्राप्नवानि । एवं द्विती० ततः प्राची० एवमेवोदङ्मुखानां पित्र्यविप्राणां सव्यजानुस्पर्शपूर्वकं निमन्त्रणं कुर्यात् । ततो यज्ञो० प्राच्यां गृहाङ्गणे देवपाद्यार्थं प्रादेशमात्रमुदकपुत्रं चतुरस्रं गोमयोदकाभ्यां मण्डलमुल्लिख्य तत्र प्रागग्रान्दर्भान्नास्तीर्य गन्धपुष्पयवैरभ्यर्चयेत् । प्राचीनावीती तद्दक्षिणतः षडङ्गुलान्तरे पूर्ववद्वर्तुलं दक्षिणापुत्रं मण्डलमुल्लिख्य दक्षिणाग्रान्दर्भान्नास्तीर्य गन्धपुष्पतिलैरभ्यर्चयेत् । यज्ञो० देवमण्डलसमीपे प्रत्यङ्मुख उपविश्य मण्डलात्प्रत्यग्दर्भपीठयोः प्राङ्मुखो देवद्विजाबुपविश्य प्रथमविप्रपादौ मण्डले निधाय पुरुर्वार्द्रवसंज्ञ० वा इदं वः पाद्यं स्वाहा नम इति ग्रन्थिरहितपवित्रकसहितेन पाणिना घृताक्तपादयोर्ववोदकं दत्त्वा शं नो देवी० तु न इति दक्षिणभागस्थितभार्यास्त्रावितेनान्येन शुद्धोदकेन मण्डले पादौ प्रक्षाल्याभिवन्दयेत् । नात्र विप्र-

१ क. स. 'क्षिप्य त' । २ ग. 'वावापस्था' । ३ ग. 'मिति तान्प्रद' । ४ ग. 'क्षिणजा' ।

५ ग. 'देवस्थाने त्व' ।

पादाधःक्षालनम् । एवं द्वितीये । ततः प्राचीनाधीती दक्षिणमण्डलस-
भीपे प्राग्दक्षिणामुख उपविश्य मण्डलाद्दक्षिणत उदङ्मुखोपवेशितस्य
पितृस्थानीयविप्रस्य पादौ मण्डले निधाय, अस्मत्पितरमुकशर्मन्मुकगोत्र
वसुरूप सपत्नीकेदं ते पाद्यं स्वधा नम इति पूर्ववत्तिलोदकं दत्त्वा शं नो
देवीरिति पूर्ववत्प्रक्षाल्याभिवन्दयेत् । एवमितरेषामस्मत्पितामहेत्यादि ।
यज्ञोपवीती दैविकमण्डलादुत्तरतो ब्राह्मणान्द्विराचाम्य स्वयं पवित्रे
त्यक्त्वा पादौ प्रक्षाल्य द्विराचम्यान्वे पवित्र धारयेत् । आचमनोदकेन
पादप्रक्षालनोदकसंसर्गो यथा न भवेत्तथाऽऽचमनं कर्तव्यम् । ततो
ब्राह्मणैः सह श्राद्धभूमिमागत्य देवे प्राग्ग्रकुशद्वयसहितकम्बलाद्यासन-
द्वयमुपकल्प्य पित्र्ये दक्षिणाधैर्भर्त्रयसहितान्यासनान्युपकल्पयेत् । ततो
वामहस्तेनाऽऽसन धृत्वा दक्षिणेन ब्राह्मणदक्षिणहस्तं गृहीत्वा भूर्भुवः
स्वः समाध्वमित्यासन उपवेशयेत् । एवं मन्त्रावृत्त्या प्राङ्मुखाबुदकसंस्थौ
वैश्वदेविकविप्रावुपवेश्य प्राचीनाधीती पूर्ववदुदङ्मुखान्प्राक्संस्थान्ममैते
पितर इति ध्यायन्पित्र्यब्राह्मणानुपवेशयेत् । सुसमास्मह इति प्रतिव-
चनम् । ततः प्रतिविप्रं श्वेतसूत्रवर्तिपुंक्तमविच्छिन्नं तैलदीपं स्थापयेत् ।
प्राची० अत्र नीवीचन्धनम् । तद्यथा । उत्तरीयवस्त्राश्चलदशान्तं कुशति-
लसहितं परिहितवस्त्रदक्षिणकटिसंलग्नभागेन संवेद्यावाशिष्टोत्तरीयवस्त्रेण
कटिभागं वेष्टयेत् । एवं नीवीं बद्ध्वा यज्ञोप० आचम्य देश० प्राचीना-
वीत्यस्मत्पितुरमुकशर्मण इत्यादिपष्ठचन्तान्मातुःप्रपितामहान्तान्पूर्ववदु-
च्चार्य प्रक्रान्तं दशश्राद्धं करिष्य इति संकल्प्य कुरुष्वेत्यभ्यनुज्ञातोऽप-
हता असु०मन इति नैर्ऋतिकोणमारभ्याप्रदक्षिणं सर्धतस्तिष्ठानवकीर्यो-
दीरता०हवेष्विति जपित्वा तिला रक्ष० रक्षक इति द्वारदेशे कुशतिला-
न्प्रक्षिपेत् । यज्ञोप०यवोदकं किञ्चित्पात्रान्तरे गृहीत्वा तस्मिन्शुद्धमृदं
मस्म च प्रक्षिप्य तज्जलेन तद्विष्णो०ततम् । तत्सवि०यादिति मन्त्राभ्यां
दूर्भैरन्नानि सप्रोक्ष्य विप्रान्प्रति वदेत् । पाकादीनां पवित्रताऽस्तु अस्त्विति
विप्रैः प्रत्युक्तः श्राद्धभूमौ गद्यां०प्रवर्तते । देवताभ्यः पितृभ्यः०नमो नमः
इति त्रिजपित्वा देवार्चनं कुर्यात् । वैश्वदेविकविप्रहस्तयोरपो दत्त्वा
पुस्तुवार्द्रव०देवानामिदमासनमित्येकैकस्याऽऽसने दक्षिणतः सयवान्प्राग्-
ग्रान्दर्भान्जृन्दत्त्वाऽपो दद्यात् । स्वासनमिति विप्रः । कर्ता प्रत्येकमासनं

१ ग. 'तीयस्य । त' । २ क. ख. 'रयमाण ०' । ३ ग. 'प्रकुशत्र' । ४ क. ख. 'इत्तरे' ।
५ ग. 'प सस्था' । ६ ग. 'तंयत् । दे' । ७ ग. 'मान्जृन्दर्भान्दर्' ।

संसृष्ट्य, अत्राऽऽस्यतामिति वदेत् । धर्मोऽसीति विप्रः । अत्र यदि ऋग्वे-
दिनो विप्राः स्युरतदा, इन्द्रहृद्यंवाशीमन्तं स इपुहस्तैः०इति तिस्र
ऋचो जपेयुः । यजुर्वेदिनस्तु स इपुहस्तैः०नमः ककुभाय निपङ्क्तिणे
स्तेनानां पतये नमः । नमो निपङ्क्तिण इपुविमते तस्कराणां पतये नमः ।
इति त्रीन्मन्त्राञ्जपेयुः । ततः प्रत्येकं निरद्भुष्टं द्विजदक्षिणहस्तं धृत्वा
दैवे क्षणः क्रियतामिति वदेत् । ओं तथेति विप्राः । कर्ता प्राप्नोतु
भवान् । प्राप्तवानीति विप्राः । ततोऽभ्युक्षितायां भुवि प्रागग्रान्दर्भा-
नास्तीर्य तेषु न्यग्द्विलमर्घ्यपात्रमासाद्य प्रोक्ष्योत्तानीकृत्य तस्मिन्प्रागग्रं
दर्भहृयात्मकं पवित्रं निधायाप आसिच्य शं नो देवी०नु न इत्यभिमन्त्र्य
यवोऽसि धान्य०स्मृतमिति यवानोप्य गन्धपुष्पतुलसीदलानि च प्रक्षिप्य
देवपात्रं संपन्नमित्यभिर्मुंशेत् । सुसंपन्नमिति प्रतिवचनम् । ततो यवानादाय
विश्वान्देवान्भवत्स्वावाहयिष्यामीत्युक्त्वा ताभ्यामावाहयेत्युक्तौ विप्र-
दक्षिणजानुनि सव्यहस्तं निधाय विश्वे देवास आगत०पीदतेति विप्रद-
क्षिणपादादियुग्मक्रमेण पादजान्वंसशिरःसु यवानवकीर्येवं द्वितीय
आवाह्य विश्वे देवाः शृणुते०मादयस्व । आगच्छन्तु महा०भवन्तु ते ।
इति सकृदुपरथाय स्वाहार्घ्या इत्युभयोरर्घ्यपात्रं सकृन्निवेदयेत् ।
सन्त्वर्घ्या इति प्रतिवचनम् । अथ प्रथमब्राह्मणहस्तेऽपो दत्त्वा पवित्रे
निधाय हस्तेनैवार्घ्यपात्रादर्घ्यमादाय पुरुरवा०देवा इदं वोऽर्घ्यमिति
दत्त्वा स्वर्घ्यमित्युक्ते या दिव्या आपः पृथिवी०भयन्त्विति स्रवन्तीरनु-
मन्त्र्यापो दद्यात् । एवं द्वितीयब्राह्मणहस्तेऽन्या अपो दत्त्वाऽव-
शिष्टमर्घ्यं दत्त्वाऽनुमन्त्र्य पुनरपो दद्यात् । तत उभाभ्यामपो दत्त्वा पुरुर-
वा०देवा एष वो गन्धः स्वाहा नमो न मम गन्धद्वारां दुरा०श्रियमिति वा
मन्त्रेण पवित्ररहितेन पाणिना प्रत्येकं द्विर्द्विर्गन्धं दत्त्वा पुनरुभाभ्या-
मपो दद्यात् । एवं सर्वोपचारेष्वान्तयोरपो दद्यात् । सुगन्ध इति प्रति० ।
पुरुरवा०देवा इमानि वः पुष्पाणि तुलसीदलसहितानि स्वाहा नमो न
मम । आयनेत० इमे । सुपुष्पाणीति प्र० । पुरुरवा० देवा एष वो
धूपः स्वाहा न० । धूसि धूर्व०धूर्वामः । सुधूप इति प्र० । पुरुरवा०देवा
एष वो दीपः स्वाहा न० । उद्दीप्यस्व जातवेदो०दिशो दिश । सुदीप० ।
पुरुर० इदं व आच्छादनं स्वाहा० । युवं वस्त्रा०सचेथे इति वस्त्रद्वयम् ।

१ क. स. 'जह' । २ ग. 'त्यनुम' । ३ ग च क्षिपवा दे' । ४ क. स. 'मृश्य सु' । ५ ग.
'दभय एषो ।

स्वाच्छाद० । युवा सुवा० यन्तः । पुरुरवार्षव० देवार्चनविधेः
संपूर्णताऽस्त्विति भवन्तो ब्रुवन्त्वित्युक्त्वाऽर्चनविधेः संपूर्णताऽस्त्विति
प्रत्युक्तो यस्य स्मृत्येत्युक्त्वा युष्मदनुज्ञया पित्रर्चनं करिष्य इत्युक्त्वा
कुरुष्वेति प्रत्युक्तः प्राचीना० पितृब्राह्मणहस्तेऽपो दत्त्वाऽरमत्पितर० श०
गो० व० स० स्येदमासनमिति विप्रस्याऽऽसने वामभागे सतिलानयुग्मा-
न्दक्षिणाग्रान्द्विगुणान्दर्भान्दत्त्वाऽपो दद्यात् । एवमितरेषां तत्तन्नामगो-
त्राद्युच्चारपूर्वकमासनानि दद्यात् । र्वासनमिति विप्राः । ततः कर्ता
प्रत्येकमासनं संस्पृशन्नत्राऽऽस्यतामित्यादि । विप्रा धर्मोऽसीत्युक्त्वेन्द्रह-
ृद्ययामेत्यादिस्वस्वशासोक्तान्मन्त्रान्पूर्ववज्जपेयुः । कर्ता पित्र्ये क्षणः
क्रियतां प्राप्नोतु भवानिति पूर्ववत्कुर्यात् । ततो द्विजाग्रे भुवमभ्युक्ष्य
दक्षिणाग्रान्दर्भानास्तीर्य तेषु प्रतिवर्गं त्रीणि त्रीणि न्यग्बिलान्याग्रेधी-
संस्थान्यर्घ्यपात्राण्यासाद्य प्रोक्ष्योक्तानानि कृत्वा तेषु पदसु प्रत्येकं दर्भ-
त्रयात्मकमाग्रेप्यग्रकं पवित्रं निधायप आसिच्य शं नो देवीरिति सकृ-
न्मन्त्रेण पात्रस्था अपोऽनुमन्त्र्य तिलोऽसि सोम० नम इति प्रतिपात्रं
मन्त्रावृत्त्या तिलानोप्य गन्धयुष्वादि क्षिप्त्वा पितृपात्रं संपन्नं पितामह०
प्रपितामह० मातामह० मातुः पितामह० मातुःप्रपितामह० पन्नमिति
यथालिङ्गं क्रमेणाभिमृशेत् । सुसंपन्नमिति तत्तत्स्थानीयविप्रो वदेत् ।
कर्ता तिलानादायास्मत्पितृपिता० नमुकश० गो० व० स० अस्मन्मा-
तामह० श० गो० व० सपत्नीकान्भवत्स्वावाहयिष्यामीत्युक्त्वा तैरावा-
हयेत्युक्त० उशन्तस्त्वा० अक्षवे । अस्मत्पितरम० सपत्नीकमावाहया-
मीति विप्रवामाङ्गदिषु युष्मत्क्रमेण शिरस्यंसयोजान्वोः पादयोश्च
तिलान्विकिरेत् । एवं पितामहादीन्नुशन्तस्त्वेतिमन्त्रावृत्त्या नामगोत्रा-
द्युच्चारपूर्वकं तत्तद्विप्र आवाह्य, आयन्तु नः पि० स्मान् इति सकृदु-
पतिष्ठेत् । यज्ञोपवी० अर्घ्यपात्राणि तत्तद्ब्राह्मणाग्रे निधाय स्वधाऽर्घ्या
इति मन्त्रावृत्त्या प्रत्येकं निवेदयेत् । सन्त्तर्घ्या इति प्र० । ततः पितृ-
विप्रहस्ते तिलोदकं दत्त्वा पित्रर्घ्यपात्रात्सशेषमर्घ्यमादाय विप्रहस्ते
पवित्रं निधाय सव्यहस्तेनान्वारब्धेन दक्षिणेन पाणिना सपत्नीक
पितरिदं तेऽर्घ्यामिति विप्रहस्ते दत्त्वा स्वर्घ्यामिति प्रत्युक्तः, या दिव्या
आपः० भवन्तु । इति विप्रहस्ताङ्गुलौ स्रवन्तीरपोऽनुमन्त्र्य तिलोदकं
दद्यात् । एवं पितामहादिभ्यस्तत्तदर्घ्यपात्रात्तद्ब्राह्मणहस्ते दद्यात् ।

तत्रै मन्त्रः—सपत्नीक पितामहेदं तेऽर्घ्यम् । सपत्नीकप्रपि० । सपत्नीक
मातामहेदं० । स० मातुःपिताम० । स० मातुःप्रपितामह० र्घ्यमन्य-
त्समानम् । ततः पितृपात्रे सर्वपिड्यविप्रहस्तस्थितकुशान्निधाय प्रपि-
तामहपात्रशेषं पितामहपात्रे निक्षिप्य तत्पितृपात्रे समवनीय मातुः-
प्रपितामहादिपात्रसंस्त्रवानपि पितृपात्रे समवनीय ताभिरद्भिः पुत्रकामो
मुखमनक्ति अपः स्पृष्ट्वा पिड्यविप्रवामभागे शुचौ देशेऽर्घ्यपात्राधः
स्थितांस्तिलसहितान्दर्भानास्तीर्य तेषु पितृभ्यः स्थानमसीति प्रथमम-
र्घ्यपात्रं निधाय गन्धादिभिस्तदभ्यर्च्य प्रपितामहपात्रेणापिदध्यात् ।
तदक्षय्यवचनान्तं न चालयेत् । ततः प्राची० ब्राह्मणहस्तेष्वपो दत्त्वाऽ-
स्मात्पितः० सपत्नीक एष ते गन्धः स्वधा नमो न मम । एवं पिताम-
हादितत्तन्नामोच्चारपूर्वकं त्रिस्त्रिगन्धं दत्त्वाऽपो दद्यात् । एवं देवार्चनो-
क्तप्रकारेणाऽऽच्छादनान्तां पूजां समाप्येदं पितृभ्य० विक्षु । इति नम-
स्कृत्यार्चनविधेः संपूर्णतां वाचयित्वा यज्ञोपवीत्याचम्य विप्राणां पुर-
तोऽर्चनकाले पतितगन्धगुण्णदर्भाद्यपनीय भूमिं संमृज्य युष्मदनुज्ञया
भोजनपात्राण्यसादयिष्य इत्युक्त्वाऽऽसादयेत्यनुज्ञातो भोजनस्थाने
प्रतिविप्रं दैवे नैर्ऋतीमारभ्य प्रदक्षिणमी(मै)शान्यन्तं पुनर्नैर्ऋत्यादी(द्यै)
शान्यन्तं पात्रप्रमाणं चतुरस्रमण्डलं गोमयोदकाभ्यां कृत्वा प्राची०
पिड्य ई(ऐ)शानीमारभ्याप्रदक्षिण नैर्ऋत्यन्तं पुनरैशान्यादिनैर्ऋत्यन्तं
वर्तुलं मण्डलं कृत्वा दैवे सयवान्पिड्ये सतिलान्दर्भान्प्रास्य भोजनपा-
त्राणि संस्थाप्य प्राची० पितृपात्राणां समन्ततो भस्ममर्यादां कुर्यात् ।
पिशङ्गभृष्टिम० हय । यज्ञो० देवपात्रयोः परितः—रक्षा णो अग्ने०
धानम् । ब्रह्म च ते० च्छन् । इति भस्ममर्यादां कृत्वा प्राची० पितृवि-
प्राणां हस्तशुद्धिं विधाय यज्ञो० देवविप्रयोर्हस्तशुद्धिं विधाय भोजन-
पात्राणि प्रक्षाल्य हस्तप्रक्षालनजलं जलपात्रप्रक्षालनजलं च शुचौ
देशे तत्तत्पात्रमण्डले वा क्षिपेत् । ततः पाणिहोमः । घृताक्तमन्नमादाय
पितृब्राह्मणसमीप उपविश्य प्राची० ब्राह्मणपाणिषु प्राग्दक्षिणाग्रान्द-
र्भान्तर्धाय स्वदक्षिणहस्तं सदर्भेण वामहस्तेनोपस्तीर्यान्नं द्वेषा विम-
ज्योत्तरभागरय मध्यात्पूर्वार्धाच्चावदाय पश्चावत्ती तु तृतीयं पश्चार्धा-
दवदाय पात्रस्थमवत्तं चाभिघार्य सोमाय पितृमते स्वधा नम इति
पितृतीर्थेन विप्रदक्षिणपाणौ हुत्वा सोमाय० न ममेति त्यजेत् । पुनः

पूर्ववदक्षिणभागादवक्ष्यायाग्नये कव्यवाहनाय स्वधा नम इति द्वितीयामा-
हुतिं हुत्वाऽग्नये कव्य० न ममेति त्यजेत् । एवं सर्वेषु पित्र्यविप्रपाणिषु
जुहुयात् । ब्राह्मणाः स्वस्वपाणिस्थमन्नं स्वस्वपात्रे संस्थाप्य बहिर्ग-
त्वाऽऽचम्य यथास्थानमुपविशेयुः । ततः कर्ता यज्ञोपवी० मूर्धानं
दि० आमासु प० इति देवपूर्वं पात्राण्याज्येनोपस्तीर्य देवपूर्व-
मन्नानि परिवेष्य प्राची० पाणिहुतशेषमन्नं किञ्चित्पिण्डार्थमवशेष्याव-
शिष्टं पितृपात्रेषु तूष्णीं दत्त्वा यज्ञो० देवपात्रस्थमन्नं सावित्र्याऽभ्युक्ष्य
तूष्णीं परिपिच्योपरि स्थितेन न्यङ्मुखेन दक्षिणेन पाणिनाऽधःस्थिते-
नोत्तानेन च सव्यपाणिना स्वस्तिकाकृतिना पात्रमालभ्य पृथिवी ते
पात्रं द्यौरपिधानं ब्रह्मणस्त्वा मुसेऽमृतेऽमृतं जुहोमि ब्राह्मणानां त्वा
विद्यावतां प्राणापानयोर्जुहोम्यक्षितमसिं मेपां क्षेष्ठा अमुत्रामुष्मिँल्लोक
इत्यभिमन्त्रयेदं विष्णु० सुर इत्यृचं पञ्चर्चं वोक्त्वा विष्णो हव्यं रक्ष-
स्वेति न्युब्जेन स्वदक्षिणेन पाणिना ब्राह्मणपाण्यङ्गुष्ठमनसमन्त्रे निवेश्य
सव्येन पाणिना पात्रमालभ्य दक्षिणेन यवोदकमादाय पुरुरवा० विश्वे
देवा देवता इदमन्नं हविरयं ब्राह्मण आहवनीयार्थं इयं भूमिर्गयाऽयं
भोक्ता गदाधर इदमन्नं ब्रह्मणे दत्तं सुवर्णपात्रस्थमक्षय्यवटच्छायेयम् ।
पुरुरवा० देवेभ्य इदमन्नममृतरूपं परिविष्टं परिवेक्ष्यमाणं चाऽऽतृप्तेः स्वाहा
हव्यं न ममेति पात्रधामभागे भूमावेव जलं निक्षिपेत् । एवं द्वितीय-
स्यान्न निवेद्य ये देवासो० ध्वम् । इति सकृदुपतिष्ठेत् । ततः पितृपा-
त्रस्थमन्नं सावित्र्याऽभ्युक्ष्य तूष्णीं परिपिच्य प्राची० अधस्थितेनोत्तानेन
दक्षिणेन हस्तेनोपरि स्थितेनाधोमुखेन सव्येन पाणिना स्वस्तिकाकृतिना
पात्रमालभ्य पृथिवी ते पात्र० अमुत्रामुष्मिँल्लोक इत्यभिमन्त्रय, इदं
विष्णुर्विच० विष्णो कव्यं रक्षस्व इति स्वदक्षिणेन न्युब्जेन पाणिना
विप्राङ्गुष्ठमनसमन्त्रे निवेश्य तिलोदकमादाय पिताऽमुकशर्माऽमुकगोत्रो
वसुरूपः सपत्नीको देवतेदमन्नं हविरयं० दत्तं रजतपात्रस्थमक्षय्यवटच्छा-
येयम् । अस्मत्पित्रे० कायेदमन्नं० आ तृप्तेः स्वधा कव्यं नमो न ममेति
दक्षिणभागे जलं क्षिपेत् । एवमितरेभ्यस्तत्तदुच्चारपूर्वकमन्नं निवेद्य
ये चेह० जुपस्व । इति सकृदुपतिष्ठेत् । श्राद्धमच्छिद्रमस्त्विति भवन्तो
शुवन्तु इति विप्रान्संप्राथ्याच्छिद्रमस्त्विति तैः प्रत्युक्तेऽन्नेषु मधु सर्पि-

१ ग. 'न ब्राह्म । २ ग. 'सि मा मै' । ३ ग. 'अत्रा' । ४ ग. 'ति स्वदक्षिणेन न्युब्जेन पा' ।
५ ग. 'मन्त्रय' । ६ क. 'न न्य नमो न म' । ७ ग. 'अ क्षि' । ८ ग. 'क्षिणे भा' ।

र्वाऽऽसिच्य, ॐ भूर्भुवः स्वः । तत्सवितुर्व० यात् । इति सप्रणवव्याह-
तिकां सावित्रीं जपित्वा मधु वाता ऋतायते म० ॥ ३ ॥ इति मधुम-
तीश्व जपित्वा मधु मधु मधु इत्युक्तवा देवताभ्यः पितॄ० नमो नमः ।
इति त्रिः ।

सप्त व्याधा दशार्णेषु मृगाः कालाञ्जने गिरौ ।
चक्रवाकाः शरद्वीपे हंसाः सरसि मानसे ॥
तेऽपि जाताः कुरुक्षेत्रे ब्राह्मणा वेदपारगाः ।
प्रस्थिता दीर्घमध्वानं यूयं तेभ्योऽव(किमत)सीदथ ॥
अमूर्तानां च मूर्तानां पितॄणां दीप्ततेजसाम् ।
नमस्यामि सदा तेषां ध्यायिनां योगचक्षुषाम् ॥

इति पितॄननुस्मृत्य, ईशानविष्णुक० ब्रह्मार्पणं ब्रह्म० धिना । हरि-
र्दाता० चतुर्भिश्च० प्रसीदतु । ॐ तत्सद्ब्रह्मार्प० । एको विष्णुर्म०
व्ययः । अनेन मम पित्रादीनां दर्शनाद्धे ब्राह्मणभोजनेन पितृस्वरूपी
जनार्दनवासुदेवः प्रियतां न ममेते । यज्ञो० पितृपूर्वकं विप्रपाणि-
ष्वापोशनार्थमुदकं दद्यात् । विप्राश्च नित्यभोजनवत्परिपेचनं कृत्वा
बलिदानवर्जममृतोपस्तरणमसीत्यापोशनं कृत्वा प्राणाहुतीर्गृहीयुः ।
कर्ता च प्राणाहुतिमन्त्रान्पठेत् । श्रद्धायां प्राणे निविष्टोऽमृतं जुहोमि
शिवो मा विशाप्रदाहाय प्राणाय स्वाहा । श्रद्धायामपाने नि० शि०
अपानाय स्वाहा । श्रद्धायां व्याने नि० व्यानाय स्वाहा । श्रद्धायामु-
दाने नि० उदानाय स्वाहा । श्रद्धायां समाने नि० समानाय स्वाहा ।
ब्रह्मणे स्वाहा । प्राणाय स्वाहा । अपानाय स्वाहेत्येवं वा । ततो विप्रा
वाङ्मनियमाद्युक्तनियमयुक्ताः सन्तो भुञ्जीरन् । कर्ता अपेक्षित० मान-
सैरिति विप्रान्संप्रार्थ्य यथासुखं जुषध्वमिति भोजनायातिसृजेत् । ततः
सव्याहृतिकां गायत्रीं जपित्वा भुञ्जानान्वैश्वदेवराक्षोघ्नपित्र्यादीनि
सूक्तानि श्रावयेत् । ततस्तेषु तृतेषु सिद्धस्य हविषो मध्ये यद्गोचते तद्या-
चध्वमिति पृच्छेत् । अलमित्युक्ते पुरु० देवास्तृप्ताः स्थ प्राची०

१ ग. 'लाञ्जिरे शि' । २ ग. 'का. सरोक्षी' । ३ ग. 'ति सकल्प्य य' । ४ क. ख. 'हा ।
प्राणायेंद' । थ' । ५ क. ख. 'हा । अपानायेंद' । थ' । ६ क. ख. 'हा । व्यानायेंद' । थ' ।
७ क. ख. 'हा । उदानायेंद' । थ' । ८ क. ख. 'हा । समानायेंद' । व्र' । ९ क. ख. 'हा ।
मक्षण इदं । अपा' ।

पितरस्तृप्ताः स्थेति वदेत् । तृप्ताः स्म इति प्र० । पूर्ववद्वायत्रीं जपित्वा
मधुवाता० ऋचः ३ । अक्षन्नमी० हरी । इति श्रावयित्वा श्राद्धं
संपन्नमिति वदेत् । सुसंपन्नमिति विप्राः । ततः कर्ता भुक्तशेषात्सार्व-
वर्णिकमन्नं पिण्डार्थं प्रकिरणार्थं च पृथक्पृथगुद्धृत्य शेषं ब्राह्मणेभ्यो
निवेद्य शेषमन्नं किं क्लियतामिति । विप्रास्तदन्नं स्वी कुर्युरिच्छा चेत् ।
नो चेदिष्टैः सह भुञ्जीतेति वदेयुः । ततः कर्ताच्छिष्टभागेभ्योऽन्नं दीय-
तामिति वदेत् । ब्राह्मणा भुक्तावशिष्टं पात्रस्थमन्नं यजमानकुले०
भूतल इति मन्त्रेण दैवे दक्षिणभागे पिड्ये वामभागे भूमौ त्यजेयुः ।
ततः कर्ता पिण्डदानं कुर्यात् । तद्यथा पितृतृप्त्यर्थं पिण्डदानं करिष्ये ।
कुरुष्वेति विप्रैरुक्ते यज्ञोपवीती द्विजोच्छिष्टसमीपे चतुर्हस्तान्तरे स्थल-
संकोचादौ हस्तमात्रान्तरे वा दक्षिणेन हस्तेन स्फयेन दर्भमूलेन वाऽऽग्ने-
यीसंस्थां लेखामुलिखेत् । अपहता असुरा रक्षांसि वेदिपदः । तत्पश्चा-
त्तथैव द्वितीयामुलिख्य क्रमेणाभ्युक्ष्य तयोः क्रमेणाऽऽग्नेय्यग्रकं सकृदा-
च्छिन्नं बर्हिर्द्वयमास्तीर्य प्राची० प्रथमलेखायां स्तीर्णे बर्हिपि आदि-
मध्यान्तदेशेषु त्रिरुदकं निनयेत् । शुन्धन्तां सपत्नीकाः पितरः ॥ १ ॥
शुन्धन्तां सपत्नीकाः पितामहाः ॥ २ ॥ शुन्धन्तां सपत्नीकाः प्रपिता-
महाः ॥ ३ ॥ तथैव द्वितीयलेखायाम् । शुन्धन्तां सपत्नीका माता-
महाः ॥ १ ॥ शुन्धन्तां सपत्नीका मातुःपितामहाः ॥ २ ॥ शुन्धन्तां
सपत्नीका मातुःप्रपितामहाः ॥ ३ ॥ इति । ततः पाणिहुतशेषमन्नं
भुक्तशेषादुद्धृतं सार्ववर्णिकमन्नं च घृतमधुतिलैः संमिश्र्य पद् पिण्डा-
न्कृत्वा पूर्वस्यां लेखायामाग्नेयीसंस्थान्पितृतीर्थेन त्रीन्पिण्डान्दद्यात् ।
एतत्तेऽस्मत्पितरमुकशर्मन्नमुकगोत्रं वसुरूप सपत्नीक ये च त्वामत्रानु-
तेभ्यश्च गयायां दत्तमस्तु । एवं पितामहप्रपितामहयोः । एवमेव पश्चि-
मलेखायां मातामहादित्रयाणामपि । ततो बर्हिर्मूले हस्तसंलक्षणं लेपं
तूष्णीं निमृज्यात् । ततः, अत्र पितरो मादयध्वं यथाभागमावृषायध्वम् ।
इति सकृत्पिण्डाननुमन्त्र्य सव्येन पार्श्वेन व्याहृत्योदङ्मुखो भूत्वा
यथाशक्ति प्राणान्नियम्य पुनरभिपर्यावृत्यामीमदन्त पितरो यथा-
भागमावृषायीपतेति पुनः पिण्डाननुमन्त्र्य यज्ञोपवीती पिण्डावशिष्टं
ग्रासमात्रमन्नमादाय बर्हिर्निष्क्रम्य तद्वज्राय पवित्रे त्यक्त्वाऽऽचम्यान्ये
पवित्रे धृत्वा प्राचीनावीती पूर्ववत्पिण्डेषु तिलोदकं निनयेत् । शुन्धन्तां

सपत्नीकाः पितर इत्यादि । ततो द्विराचम्य पूर्ववद्धनीवीं विम्रस्य प्रतिपिण्डं तैलाभ्यञ्जनं दूर्ध्वं दद्यात् । पितरमुकशर्मन्त्रमुकगोत्र वसुरूप सपत्नीकाभ्यङ्गव । एवमितरेषु तथैवाञ्जनं दद्यात् । पितरमुकशर्मन्त्रं सपत्नीकाङ्क्षेत्यादि । अथ पिण्डेषु एतद्द्वः पितरो वासो मानोतोऽन्य-
त्पितरो युद्धमिति प्रतिपार्घणं मन्त्रावृत्त्या वासस्थाने दशामूर्णास्तुकां वा पञ्चाशद्वर्षाधिकं वयश्चेत्स्वप्रकोष्ठहृदयान्यतरस्थं लोम दद्यात्पूर्वो-
क्तेनैव मन्त्रेण । ततः सव्येनापसव्येन वा पिण्डान्गान्धाद्युपचारैरभ्यर्च्य प्राचीनावीती, अथैनानुपतिष्ठेत नमो वः पितर इषे० इह सन्तः स्याम । मनोन्वाहुवामहे० नमभिः । आ त एतु मनः पुनः० दृशे । पुनर्नः पि० चेमहि । अथ पिण्डस्थान्पितृन्प्रवाहयामीति ध्यायन्सकृद्दुत्तानेन हस्तेन पिण्डांश्चालयेत् । परेतन पितरः सो० नियच्छत । ततः सकुटुम्बः पिण्डा-
न्नमस्कृत्य वीरं मे दत्त पितर इति मन्त्रेण मध्यमं पितामहपिण्डमादाय पुनस्तेनैव मन्त्रेण मातुःपितामहपिण्डमादाय पत्न्यै पुत्रकामायै प्रय-
च्छेत् । सा च० आधत्त पितरो गर्भं कुमारं पुष्करस्रजम् । यथाऽथ-
मरपा असत् । इति मन्त्रं स्वयं सकृत्पठन्ती पिण्डद्वयं प्राश्नीयात् । अनेकपत्नीपक्षे तावेष पिण्डो दूर्ध्वं विभज्य यथांशं मन्त्रपूर्वकं सर्वा अपि प्राश्नीयुः । पत्न्यामनधिकारिण्यामादानप्राशनमन्त्रयोर्लोप एव । ततः पिण्डानुद्वासयिष्य इत्युक्त्वा ब्राह्मणैरुद्वासयेत्यनुज्ञातोऽवशिष्टान्पिण्डा-
नप्स्वग्नौ वा क्षिपेत् । ततो यज्ञोपवीती विप्राणां पितृपूर्वकमुत्तरापो-
शनार्थमुदकं दद्यात् । विप्रा अमृतापिधानमसीत्युत्तरापोशनं कृत्वाऽव-
शिष्टजलं बहिर्निनयेयुः ।

रौरवे पूयनिलये पद्मांघुदनिवासिनाम् ।

अर्थिनामुदकं दत्तमक्षय्यमुपतिष्ठतु ॥

ततो धृतपावित्रग्रन्थी विम्रस्योच्छिष्टमण्डले निक्षिपेयुः । कर्ता ब्राह्मणानां पितृपूर्वकं गण्डूयकरणहस्तप्रक्षालनादिशुद्धा(द्ध्या)चमनान्तं कारयित्वा विकिरं दद्यात् । आचान्तेषु विप्रेषु पिण्डदानमिति पक्षे विप्राणामुत्तरापोशनादिशुद्धा(द्ध्या)चमनान्तं कारयित्वा पिण्डदानं कृत्वा विकिरं दद्यात् । पक्षद्वयेऽपि पिण्डदानान्ते विकिरदानम् । तद्यथा-
पूर्वोद्धृतं सघृतमन्नमादाय प्रथमवैश्वदेविकाद्विजोच्छिष्टान्ते—

असोमपाश्च ये देवा यज्ञभागविवर्जिताः ।

तेपामन्नं प्रदास्यामि विकिरं वैश्वदेविकम् ॥

इति यवोदकसहितं सकृत्प्रकीर्य प्राचीनाधीती प्रथमपिड्यविप्रोच्छि-
ष्टान्ते—

असंस्कृतप्रमीता ये त्यागिन्यो याः कुलस्त्रियः ।
दास्यामि तेभ्यो विकिरमन्नं ताभ्यश्च पैतृकम् ॥

इति तिलोदकसहितं सकृत्प्रकीर्य तत्समीपे दक्षिणाग्रान्दर्भानास्तीर्य
तेषु ये अग्निदग्धा० कल्पयस्व । इति शेषमन्नं प्रकीर्य तदुपरि तिलो-
दकं निनयेत् ।

अग्निदग्धाः कुले जाता येऽप्यदग्धाः कुले मम ।
भूमौ दत्तेन तृप्यन्तु तृप्ता यान्तु परां गतिम् ॥

ततो यज्ञोपवीत्याचम्य पवित्रे त्यक्त्वाऽन्ये धारयेत् । ततो वैश्वदेवि-
कविप्रहस्तयोरपो दर्भांश्च दद्यात् । शिवा आपः सन्तु । अथ गन्धपु-
ष्पाणि । सौमनस्यमस्तु । अथ यवाः । यवाः पान्तु । पुनरपो दद्यात् ।
दीर्घमायुः श्रेयः शान्तिः पुष्टिस्तुष्टिश्चास्तु । सन्तु शिवा आपः । अस्तु
सौमनस्यम् । पान्तु यवाः । अस्तु दीर्घमायुः श्रेयः शान्तिः पुष्टिस्तुष्टि-
श्चेति क्रमेण प्रतिवचनानि । एवमपसव्येन पिड्यविप्रहस्तेषु । तत्र यव-
स्थाने तिलाः, तिलाः पान्त्विति । शेषं समानम् । ततः पिड्यविप्रान्प्रति
वदेत् । अघोराः पितरः सन्तु । सन्त्वघोराः पितर इति विप्राः । ततः
कर्ता यज्ञोपवीती ब्राह्मणानभिवाद्य गोत्रयुद्धि याचेत् । अस्मद्गोत्रं
वर्धताम् । युष्मद्गोत्रं वर्धतामिति प्रतिवचनम् । ततः—

नित्यानुष्ठानसिद्ध्यर्थं सर्वदाऽप्यात्मशुद्धये ।

पितृमातृपराः सन्तः सन्त्वस्मत्कुलजा नराः ॥

इतिमन्त्रेण स्वमस्तके चन्दनादिना तिर्यक्तिलकं कृत्वा शिष्यादिना
विप्रोच्छिष्टपात्राणि चालयित्वा देवविप्रहस्तयोर्हस्तेनैव यवोदकं दद्यात् ।
पुरूरवार्यवसंज्ञकविश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वतीति ब्रूत । ततः पिड्यविप्रहस्तेषु
तिलोदकं दद्यात् । पितृपितामहप्रपितामहेभ्योऽमुकशर्मभ्यः, मातामह-
मातुःपितामहमातुःप्रपितामहेभ्योऽमु०स्वस्तीति ब्रूत । विप्रैः स्वस्तीति
प्रत्युक्ते पुनर्देवविप्रहस्तयोर्हस्तेनैव यवोदकं दद्यात् । पुरूरवार्यवसंज्ञकानां
विश्वेषां देवानां यद्दत्तं श्राद्धं तदक्षय्यमस्त्विति ब्रूत । [अस्त्वक्षय्यमिति
प्रतिवचनम् ।] प्राचीनाधीती, अस्मत्पितृपितामहप्रपितामहानामित्यादि
मातुःप्रपितामहान्तमुच्चार्य यद्दत्तं श्राद्धं तदक्षय्यमस्त्विति ब्रूतेति पिड्य-

विप्राणां तिलोदकं दद्यात् । अस्त्वक्षय्यमिति प्रतिवचनम् । तत आसादि-
तमर्घ्यपात्रं चालयेत् । यज्ञोपवीती ब्राह्मणेभ्यस्ताम्बूलादि दत्त्वा दक्षिणां
दद्यात् । अस्मत्पितृस्थानोपविष्टाय ब्राह्मणायेदं रजतं दक्षिणान्वेन तुभ्य-
महं संप्रददे । एवं पितामहादिरथानोपविष्टेभ्यो दत्त्वा पुरुरवार्षवसंज्ञक-
विश्वदेवस्थानोपविष्टाय ब्राह्मणायेदं सुवर्णं दक्षिणात्वेन तुभ्यमहं संप्र-
ददे । एवं द्वितीयाय । ततः सर्वान्प्रार्थयेत् । दक्षिणाः पान्त्विति भवन्तो
ब्रुवन्तु । पान्तु दक्षिणा इति प्रतिवचनम् । ततः सति विभवे नानालं-
कारादि दद्यात् । प्राचीनावीती स्वधां वाचविष्य इत्युक्त्वा वाच्य-
तामिति विप्रैः प्रत्युक्तः, अस्मत्पितृपितामहप्रपितामहेभ्योऽमुकशर्मभ्य
इत्यादिमातुःप्रपितामहान्तमुच्चार्य स्वधोच्यतामिति पित्र्यविप्रान्प्रति
वदेत् । अस्तु स्वधेति विप्राः । कर्ता स्वधा संपद्यतामिति भवन्तो
ब्रुवन्तु । संपद्यतां स्वधेति विप्राः । कर्ता यज्ञोपवीती विश्वे देवाः प्रीय-
न्तामिति भवन्तो ब्रुवन्तु । प्रीयन्तां विश्वे देवा इति प्रतिवचनम् ।
प्राचीनावीती पितरः प्रीयन्तामिति भवन्तो ब्रुवन्तु । प्रीयन्तां पितर
इति प्रतिवचनम् । शोभनं हविरिति कर्तारं प्रति विप्रा वदेयुः । कर्ता
यज्ञोपवीती देवताभ्यः पितृ० नम इति त्रिरुक्त्वा वाजे वाजे० देवयानैः ।
उत्तिष्ठत पितरो विश्वेर्देवैः सहेति विप्रान्दर्भाग्रैः संस्पृशन् ॐ स्वधो-
च्यतामिति अस्तु स्वधेति वोक्त्वा पितृपूर्वं विसृजेत् । ते च ॐ स्वधा,
अस्तु स्वधेति वा ब्रुवन्त उत्तिष्ठेयुः । ततः कया नश्चिन्न इति तृचं स्वस्व-
शाखोक्तं जपेयुः । कर्ता पिण्डनिर्षणदेशं गोमयादिना समृज्य तिलाक्ष-
तान्प्रास्य शान्तिः पुष्टिस्तुष्टिश्चास्त्विति भवन्तो ब्रुवन्तु इत्युदकधारां
कुर्यात् । अस्तु शान्तिः पुष्टिस्तुष्टिश्चेति विप्राः । ततः कर्ता पादप्रक्षाल-
नमण्डलदेशे विप्रानुपवेश्य, आमावाजस्य० गम्यात् । इति प्रदक्षि-
णीकृत्य तेषां हस्तेष्वक्षतपुष्पादि दत्त्वा नियतो वाग्यतः शुचिर्दक्षिणा-
मुखः प्राञ्जलिस्तिष्ठन्वरान्याचेत् । दातारो नोऽभिवर्धन्ताम् । दातारो
वोऽभिवर्धन्तामिति विप्रैः प्रतिवचनं कार्यम् । एवमुत्तरत्र । कर्ता वेदाः
संततिरेव नः । विप्रा वेदाः संततिरेव वः । कर्ता श्रद्धा च नो मा
व्यगमत् । विप्राः श्रद्धा च वो मा व्यगमत् । कर्ता बहु देयं च नोऽस्तु ।
विप्रा बहु देयं च वोऽस्तु । कर्ता, अन्नं च नो बहु भवेत् । विप्रा अन्नं
च वो बहु भवेत् । कर्ता, अतिथींश्च लभेमहि । विप्राः, अतिथींश्च
लभध्वम् । कर्ता याचितारश्च नः सन्तु । विप्रा याचितारश्च वः सन्तु । कर्ता
मा च याचिष्म कंचन । विप्रा मा च याचिद् कंचन । स्वादुषंसदः पितरो०

चित्रसेना० ब्राह्मणासः० पूषा नः पातु० इहैवस्तं मा वि० क्षीळन्तौ ।
पु० गृहे ।

आयुः प्रजां धनं विद्यां स्वर्गं मोक्षं सुखानि च ।

प्रयच्छन्तु तथा राज्यं प्रीता नृणां पितामहाः ॥

एताः सत्या आशिपः सन्तु इत्याशिषो दद्युः । कर्ता विप्रदत्ताक्षतादि
शिरसि धृत्वा विप्रान्पादाभ्यङ्गादिभिः प्रियोक्तिभिश्च परितोष्य प्राणि-
पत्य प्रार्थयेत् ।

अद्य मे सफलं जन्म भवत्यादाब्जवन्दनात् ।

अद्य मे वंशजाः सर्वे याता वोऽनुग्रहाद्विवम् ॥

पत्रशाकादिदानेन क्लेशिता यूयमीदृशाः ।

तत्क्लेशजातं चित्ते तु विस्मृत्य क्षन्तुमर्हथ ॥

यस्य स्मृत्या च नामोक्त्या० च्युतम् ।

मन्त्रहीनं क्रियाहीनं भक्तिहीनं द्विजोत्तमाः ।

श्रान्द्धं संपूर्णतां यातु प्रसादान्द्रवतां मम ॥

यः कश्चिच्छ्रान्द्धयज्ञस्य प्रोक्तो मन्वादिभिर्दिधिः ।

असौ युष्मत्प्रसादेन संपूर्णः सकलोऽस्तु मे ॥

सर्वं संपूर्णमस्त्विति विप्राः । कर्ता वसिष्ठासः पितृ० प्रीता इव ज्ञा०
देवान्वासि०ते नो रासन्ता०सदा नः । इदं पितृभ्यो नमो अस्त्वद्येति नम-
स्कारवतीमन्ततः शंसति तस्मादन्ततः पितृभ्यो नमस्क्रियते तदाहृर्व्या-
हावं पित्र्याः शंसेत् । अव्याहावाँ इति व्याहावमेव शंसेदसंस्थितं
वै पितृयज्ञस्य साध्वसंस्थितं वा एष पितृयज्ञं संस्थापयति यो व्याहावं
शंसति तस्माद्व्याहावमेव शंस्तव्यमिति पठित्वा—

जपच्छिद्रं तपश्छिद्रं यच्छिद्रं श्रान्द्धकर्मणि ।

सर्वं भवतु मेऽच्छिद्रं ब्राह्मणानां प्रसादतः ॥

इति विप्रान्संप्रार्थयेत् । सर्वमच्छिद्रमस्त्विति विप्रा वदेयुः । कर्ता,
अनेन दर्शश्रान्द्धयज्ञेन भगवान्पितृस्वरूपी जनार्दनवासुदेवः प्रीयताम् ।
तत्सद्ब्रह्मार्पणमस्तु । वषट् ते विष्णो० सदा नः । ततः प्राचीनावीती सप-
रिवारो ब्राह्मणैः सहाष्टौ पदान्यनुब्रज्य यज्ञोपवीती पूर्वं प्रतिब्राह्मणं
स्थापितदीपान्निर्वास्य पवित्रादीनि विसृज्य पादौ प्रक्षाल्य द्विराचामेत् ।

ततो विप्रोच्छिष्टानि भूमौ शुचौ देशेऽधृतं खात्वा तत्र निक्षिप्य मृदाऽऽच्छादयेत् । गृहान्तरसत्त्वे सूर्यास्तादनन्तरमुच्छिष्टप्रतिपत्तिः । ततोऽगारं गोमयेनोपलिप्य श्राद्धशेषेण नित्यश्राद्धं कृत्वा श्राद्धशेषेणैव वैश्वदेवादिकं कृत्वेष्टैः सह भुञ्जीतेति । दर्शश्राद्धमनुपनीतोऽपि कुर्यादिति निर्णयसिन्धावुक्तम् । अमाश्राद्धातिक्रमे प्रायश्चित्तमुक्तमृग्विधाने—

न्यूपु वाचं जपेन्मन्त्रं शतवारं तु तद्दिने ।

अमाश्राद्धं यदा नास्ति तदा संपूर्णमेति तत् ॥ इति ।

इति श्रीमच्चित्तषावनकेळकरोपाभिधमहादेवात्मजवापूभट्टविरचितायां श्राद्धमञ्जरीं सकलशिष्टवर्षपरिगृहीतः पार्वणश्राद्धप्रयोगः ।

अथ गृह्यपरिशिष्टोक्तो दर्शश्राद्धप्रयोगः । अत्र श्राद्धार्हदेशपदार्थोपकल्पनादि सर्वे धर्माः परिभाषोक्ता एव ग्राह्याः । श्राद्धकर्ता श्राद्धदिने वा प्रातः श्राद्धार्हान्ब्राह्मणान्द्वौ दैवे पित्र्ये त्रीनेकैकं वोभयत्र शक्तश्रेदेकैकस्य स्थानेऽनेकान्वा निमन्त्रयेत् । श्वोऽथ वा करिष्यमाणदर्शश्राद्धे पुरूरवारद्रवसंज्ञकविश्वदेवस्थाने त्वया क्षणः करणीयः । ॐ तथेति प्रतिवचनम् । प्राचीनावीती, अद्यकरिष्यमाणदर्शश्राद्धेऽस्मत्पितुरमुकशर्मणोऽमुकगोत्रस्य वसुरूपस्य सपत्नीकस्य स्थाने त्वया क्षणः करणीयः । ॐ तथा । एवं पितामहप्रपितामहयोर्मातामहादीनां च विप्रपादस्पर्शपूर्वकं निमन्त्र्य मध्याह्ने स्नात्वा पूर्वोक्तप्रकारेण दर्शश्राद्धार्हं तर्पणं विधाय ब्राह्मणान्समाहूय तान्प्रति सव्येनैव स्वागतमिति प्रणतिपूर्वकं वदेत् । सुस्वागतमिति प्रतिवचनम् । ततः प्राच्यां शुचौ गृहाङ्गणे गोमयोदकाभ्यां चतुरस्रं मण्डलमुल्लिख्य तद्दक्षिणतस्तथैव वर्तुलमण्डलमुल्लिख्योत्तरे सयवान्दर्भानास्तीर्य दक्षिणे सतिलान्दर्भानास्तीर्य गन्धादिभिर्मण्डलद्वयमभ्यर्च्योत्तरमण्डलस्य पश्चात्प्राङ्मुखौ दैविकविप्रायुपवेश्य स्वयं प्रत्यङ्मुख उपविश्य विप्रपादौ मण्डले निधाय पुरूरवारद्रवसंज्ञका विश्वे देवा इदं वः पाद्यं स्वाहा नम इति यवोदकं पादयोर्दत्त्वा शं नो देवी० तु नः । इति मन्त्रेण पादौ प्रक्षालयेत् । एवमुत्तरत्र । ततः प्राचीनावीती दक्षिणमण्डलसर्गपि मुख्यपितृविप्रमुदङ्मुखमुपवेश्य तत्पादौ मण्डले निधाय, अस्मत्पितरमुकशर्मणामुकगोत्र वसुरूप सप-

स्त्रीकेदं ते पाद्यं स्वधा नम इति तिलोदकं पादयोर्दत्त्वा शं नो देवी-
रिति पादौ क्षालयेत् । एवं सर्वेषां तत्तदुच्चारपूर्वकं पाद्यं कृत्वा मण्डल-
पोरुत्तरतो ब्राह्मणान्द्विराचाम्य स्वयमप्याचामेत् । ततः श्राद्धरथले
कम्वलाद्यासनेषु वैश्वदेविकौ प्राङ्मुखौ पित्रर्थानुदङ्मुखान्द्विप्रांस्तत्तद्गु-
पान्ध्यायन्नपवेशयेत् । तत आचम्य पवित्रपाणिः प्राणानायम्य देशकालौ
स्मृत्वा प्राचीनावीती, अस्मत्पितृपितामहप्रपितामहानाममुकशर्मणाम-
मुकगोत्राणां वसुरुद्रादित्यस्वरूपाणां सपत्नीकानाम् । अस्मन्मातामह-
मातुःपितामहमातुःप्रपितामहानाममुकशर्मणाममुकगोत्राणां वसुरुद्रा-
दित्यस्वरूपाणां सपत्नीकानामेतेषां तुप्त्यर्थं दर्शश्राद्धं करिष्य इति
संरुत्प्य, अपहता असुरा०तं मन इत्यप्रदक्षिणं सर्वतस्तिलानवकीर्य,
उदीरता०हवेषु । इति जपित्वा दर्शोदकेनान्नान्यभ्युक्ष्य गवां जना-
र्दनं वस्वादिरूपांनितुंश्च ध्वात्वा यज्ञोपवीती देवार्चनं कुर्यात् । तत्र
वैश्विकविप्रहस्तयोरपो दत्त्वा पुरुरवारद्रवसंज्ञकानां विश्वेषां देवानामिद-
मासनम् । इत्येकैकस्वाऽऽसने दक्षिणतः प्रागग्रानृजून्युग्मान्दर्भान्दत्त्वाऽपो
दद्यात् । अथाभ्युक्षितायां भुवि प्रागग्रान्दर्भान्नास्तीर्य तेषु न्यग्बिल-
मेकमर्घ्यपात्रमासाद्योत्तानीकृत्य तस्मिन्दर्मद्वयात्मकं प्रागग्रं पवित्रं निधा-
याप आसिच्य शं नो देवी० तु न इत्यनुमन्त्र्य यवोऽसि धा० स्मृतम् ।
इति यवानोप्य गन्धपुष्पाणि क्षिप्त्वा देवपात्रं संपन्नमित्यभिमृश्य यव-
हस्तो विश्वान्देवानावाहयिष्यामीत्युक्त्वा, आवाहयेति विप्राभ्यामुक्ते
विश्वे देवास आ० दत् । इति दक्षिणाङ्गादिवामाङ्गसंस्थं पादजान्वंसशि-
रःसु यवानवकीर्य, आगच्छन्तु० भवन्तु त इत्युपस्थाय स्थाहाघ्यां
इत्यर्घ्यपात्रमुभयोः सकृन्निवेद्याथ प्रथमं प्रत्येकमन्या अपो दत्त्वाऽर्घ्य-
पात्रादर्घ्यमादाय पुरुरवारद्रवसंज्ञका विश्वे देवा इदं वोऽर्घ्यमिति दत्त्वा
या दिव्या आपः० भवन्तु इति स्रवन्तीरपोऽनुमन्त्र्यापो दद्यात् ।
एवं द्वितीयस्यावशिष्टमर्घ्यं दद्यात् । तत उभयोः प्रत्युपचारमाद्यन्तयोर-
ब्दानपूर्वकं गन्धपुष्पधूपदीपान्द्विर्द्विदत्त्वा सकृदाच्छादनं दत्त्वाऽर्चनविधेः
संपूर्णताऽस्त्विति भवन्तो ब्रुवन्त्वित्युक्त्वा संपूर्णमस्त्विति विप्रैः प्रत्युक्ते
पुष्पदनुज्ञया पित्रर्चनं करिष्य इत्युक्त्वा कुरुष्वेत्यनुज्ञातः प्राचीनावीती,
आग्नेय्यभिमुख उपविश्य पित्रर्चनं कुर्यात् । प्रथमविप्रहस्तेऽपो दत्त्वाऽस्म-
त्पितुरमुकशर्मणोऽमुकगोत्रस्य वसुरुद्रस्य सपत्नीकस्येत्येकवदस्मत्पितृ-

णाममुकशर्मणाममुकगोत्राणां वसुरुपाणां सपत्नीकानामिति बहुवद्वा
निर्देशं कृत्वेदमासनमिति दर्भानयुग्मान्द्विगुणभुग्नानासने वामभागे
दत्त्वाऽपो दद्यात् । एवं सर्वत्र तत्तद्विभवत्या पित्रादीनामेकवद्वा बहुवद्वा
निर्देशं कुर्यात् । अस्मत्पितामहस्य० अस्मत्पितामहानामित्यादि वा
सर्वेषामासनानि दत्त्वा पितृविप्रसमीपे भुवमभ्युक्ष्य दक्षिणाग्रन्दर्भा-
नास्तीर्य प्रतिवर्गं त्रीणि त्रीणि पात्राणि न्यग्बिलानि दक्षिणापवर्गाणि
निधायोक्तानानि कृत्वा तेषु दर्भत्रयात्मकानि पवित्राण्यन्तर्धायाप
आसिच्य शं नो देवी० तु न इति सर्वाणि सकृन्मन्त्रेणानुमन्त्र्य
तिलोऽसि सोमदे० स्वधा नमः । इति पृथक्पृथक्मन्त्रावृत्त्या तिलानोप्य
गन्धपुष्पाणि क्षिप्त्वा पितृपात्रं संपन्नम् । पितामहपात्रं संपन्नम् । प्रपिता-
महपात्रं० । मातामह० । मातुःपितामहपा० । मातुःप्रपितामहपात्रं संपन्न-
मिति यथालिङ्गं पात्राण्यभिसृश्य तिलहस्तः, अस्मत्पितरममुकशर्मण-
मित्यादिप्रपितामहान्तं द्वितीयान्तमुच्चार्याऽऽवाहयिष्यामीत्युक्त्वा तैरावा-
हयेत्युक्ते वामाङ्गादिदक्षिणाङ्गसंस्थमेकैकस्मिन्निशरोसजानुपादेषु, उश-
न्तस्त्वा नि० अत्तवे । इति मन्त्रेण तिलानवकीर्य, आयन्तु नः
पितरः० त्वस्मानित्युपस्थाय यज्ञोपवीती स्वधाध्यां इति मन्त्रावृत्त्या
तत्तदध्व्यपात्रं तत्तद्विप्राग्रे निवेद्य प्रथमधिप्रहस्तेऽपो दत्त्वा सशेषम-
ध्व्यमादाय दक्षिणेन पाणिना सव्योपगृहीतेन पितरिदं तेऽध्व्यमिति
पितृतीर्थेन दत्त्वा या दिव्या इत्यनुमन्त्र्यापो दद्यात् । एवं पिता-
महादीनां दत्त्वेतरानध्व्यशेषानाद्यपात्राध्व्यशेषे निनीय ताद्भिरग्निः पुत्र-
कामो मुखमनक्ति । अप उपसृश्य तत्पात्रं शुचौ देशे पितृभ्यः स्थानम-
सीति मन्त्रेण निधाय प्रपितामहाध्व्यपात्रेणापिदध्यात् । न्यग्बिलं
वा कुर्यात् । तदक्षय्यवाचनान्तं न चालयेत् । प्राचीनावीती, अस्म-
त्पितरमुकशर्मणित्यादिसंबुद्ध्यन्तमुक्त्वाऽऽद्यन्तयोरब्दानपूर्वकं काण्डानु-
समयेन पदार्थानुसमयेन वा सर्वेषां गन्धाद्याच्छादनान्तान्पञ्चोपचारान्द-
त्त्वाऽर्चनविधेः संपूर्णतां वाचयित्वा भोजनार्थादग्नादन्नमुच्छृत्य सर्पिषाऽ-
भ्यङ्गस्त्रा(ज्य) ब्राह्मणपाणिषु दर्भानन्तर्धाय सव्यहस्तेन दक्षिणहस्त
आज्येनोपरतीर्य मध्यात्पूर्वाधादवदाय पश्चावती तु पश्वाधात्तृतीयमव-
दाय सव्यहस्तेन पात्रस्थमदत्तं चाभिचार्य सोमाय पितृमते स्वधा नम
इति प्रथमाहुतिं हुत्वा सोमाय पितृमत इदं न ममेति त्यजेत् । पुनः
पूर्ववदवदाय, अग्रये कव्यवाहनाय स्वधा नमः । अग्रये कव्यवाहनायेदं

न ममेति द्वितीयां जुहुयात् । एवं सर्वविप्रपाणिषु द्वे द्वे आहुती
जुहुयात् । अपि वा, एकैकामाहुतिं विगृह्य सर्वेषु विप्रपाणिषु जुहुयात् ।
यज्ञोपवीती भोजनपात्रस्थापनार्थं देवे चतुरस्रे मण्डले गोमयेन विधाय
पित्र्ये वृत्तानि विधाय देवे सयधान्पित्र्ये सतिलान्दर्भान्प्रास्य भोजन-
पात्राणि निधायाऽऽज्येनोपस्तीर्यान्नानि परिवेष्य पितृपात्रान्नेषु हुतशेषं
तूष्णीं परिवेष्य प्रथमदैविकं पात्रं तूष्णीं परिपिच्य पृथिवी ते पात्रं
द्यौरपिधानं ब्रह्मणस्त्वा मुखेऽमृतेऽमृतं जुहोमि ब्राह्मणानां त्वा विद्या-
वतां प्राणापानयोर्जुहोम्यक्षितमसि मा मे क्षेष्ठा अमुत्रामुष्मिह्लोक इति
पात्रसहितमन्नमभिमन्त्र्य ब्राह्मणपाण्यङ्गुष्ठम् इदं विष्णुर्वि० सुरे ।
विष्णो हव्यं रक्षस्वेत्यन्ने निवेश्य यवोदकमादाय पुरुरवार्द्रवसंज्ञका
विश्वे देवा देवता इदमन्नं हविरयं ब्राह्मण आहवनीयार्थं इयं भूमिर्ग-
याऽयं भोक्ता गदाधर इदमन्नं ब्रह्मणे दत्तं सुवर्णपात्रस्थमक्षय्यवटच्छा-
येयमित्युक्त्वा पुरुरवार्द्रवसंज्ञकेभ्यो विश्वेभ्यो देवेभ्य इदमन्नममृत-
रूपं परिविष्टं परिवेक्ष्यमाणं चाऽऽ तृप्तेः स्वाहेत्युत्सृज्य, एवं द्वितीये
ये देवासो० जुषध्वम् । इत्युपस्थाय प्राचीनावीती पितृविप्रपात्रं तूष्णी
परिपिच्य पृथिवी ते पात्रं० विष्णो कव्यं रक्षस्व । तिलोदकमादाय
पिताऽमुकशर्माऽमुकगोत्रो वसुरूपो देवतेदमन्नं० दत्तं रजतपात्रस्थमक्ष-
य्यवटच्छायेयम् । अस्मत्पित्रेऽमुकशर्मणेऽमुकगोत्राय वसुरूपायेदमन्नम-
मृतरूपं० चाऽऽ तृप्तेः स्वधा । एवं सर्वेषां तत्तदुच्चारपूर्वकमुत्सृज्य ये चेह
पितरो ये० जुषस्वेत्युपस्थाय यज्ञोपवीती, अन्नेषु मधु सर्पिर्वाऽऽसिच्य
सप्रणवव्याहृतिकां सावित्रीं जपित्वा मधु वाता ऋ० इति तिस्र ऋचश्च
जपित्वा मधु मधु मधु इति त्रिरुक्त्वा पितृननुस्मृत्याऽऽपोशनं प्रदाय
ब्राह्मणान्यथासुरसं जुषध्वमिति भोजनायातिसृजेत् । भुञ्जानात्राक्षोघ्न-
पित्र्यादीनि श्रावयेत् । अथ तृप्ताञ्ज्ञात्वा मधुमतीस्तिस्रोऽक्षन्नमीमद-
न्तेति चैकां श्रावयित्वा संपन्नमिति ब्राह्मणान्स्पृ(न्पृ)द्वा सुसंपन्नमिति
प्रत्युक्तो भुक्तशेषात्सर्ववर्णिकमन्नं पिण्डार्थं प्रकिरणार्थं च पृथगुद्धृत्य
शेषं ब्राह्मणेभ्यो निवेदयेत् । शेषमन्नं किं क्रियतामिति विप्रास्तत्स्वी
कुर्युरिष्टैः सह भुज्यतामिति वा वदेयुः । ततो विप्रैरुत्तरापोशनादिशुद्धा-
(द्ध्या)चमनान्तं कारयित्वा पिण्डदानं कुर्यात् । उत्तरापोशनात्पूर्वं वा ।
तद्यथा विप्रोच्छिष्टान्ते स्फ्येन दर्भमूलेन वा, अपहता असुरा रक्षांसि

वेदिपद इत्याग्नेयीसंस्थं लेखाद्वयमुल्लिख्य तत्प्रत्येकमभ्युक्ष्य बर्हिषाऽतस्तीर्य प्राचीनावीती प्रथमलेखायां बर्हिषि मूलमध्यान्तेषु पिण्डदेशेषु शुन्धन्तां पितरः शुन्धन्तां पितामहाः शुन्धन्तां प्रपितामहा इति पितृतीर्थेन तिलोदकं निनीय तथैव द्वितीयलेखायां शुन्धन्तां मातामहा इत्यादि । तत एतत्तेऽमुकशर्मन्ये च त्वामत्रानु तेभ्यश्चेति पित्रे पिण्डं दत्त्वा पितामहादिभ्यस्तत्तन्नामोच्चारपूर्वकं दद्यात् । ततः, अत्र पितरो मादयध्वमिति पिण्डान्सकृदनुमन्त्र्य सव्यावृदावृत्योदङ्मुखो भूत्वा यथाशक्त्या यतप्राणः सन्नासित्वा प्रत्यावृत्य, अमीमदन्त पितरो० यीपत । इति पुनः सङ्घात्पिण्डाननुमन्त्र्य पिण्डशेषचरुमवघ्रायाऽऽचम्य शुन्धन्तां पितर इत्यादि पिण्डेषु पूर्ववत्तिलोदकं निनीयासावभ्यङ्क्ष्वासावङ्क्ष्वेति यथालिङ्गं पिण्डेष्वभ्यञ्जनाञ्जने दत्त्वा वासःस्थाने दशामूर्णास्तुकां वा, एतद्दः पितरो० युङ्ध्वम् । इति प्रतिवर्गं दद्यात् । उत्तरे वयासि स्वहंल्लोम दद्यात् । अथ पिण्डान्गन्धादिभिरभ्यर्च्य प्राञ्जलिस्तिष्ठन्नूपतिष्ठेत नमो वः पितर इपे० चेमाहि । इति चतसृभिरुपस्थाय परेतन० नियच्छतेति पिण्डस्थान्पितृन्प्रवाहयेत् । अथ पिण्डान्नमस्कृत्य वीरं मे दत्त पितर इति मध्यमं पिण्डद्वयमादाय, आधत्त पितरो गर्भं० असत् । इति पुत्रकामः पत्नीं प्राशयेत् । इतरान्पिण्डानप्सु प्राक्षिपेत् । अग्नी वा जुहुयात् । गवे वा ब्राह्मणाय वा दद्यात् । ततः प्रकिरणार्थं सार्ववर्णिकं पूर्वं पृथगुद्धृतमन्नमुदकेन परिप्लाव्य विप्रोच्छिष्टान्ते दक्षिणाग्रान्दर्मानास्तीर्य तेषु ये अग्निदग्धा० कल्पयस्वेति तदन्नं प्रकीर्य

अग्निदग्धाः कुले जाता नाग्निदग्धाः कुले मम ।

भूमौ दत्तेन तृप्यन्तु तृप्ता यान्तु परां गतिम् ॥

इति तिलोदकं निनीयाऽऽचायेत् । अथ ब्राह्मणहस्तेष्वपो दर्मांश्च दत्त्वा दैवे यथान्पित्र्ये तिलांश्चावधाय पुनरपो दद्यादेषा हस्तशुद्धिः । अथ ब्राह्मणानभिवाद्य, अस्मद्गोत्रं वर्धतामिति गोत्रवृद्धिं याचेत् । युष्मद्गोत्रं वर्धतामिति विप्रा वदेयुः । कर्ता विप्रोच्छिष्टानि चालयित्वा पुरुषवार्द्रवसंज्ञका विश्वे देवाः स्वस्तीति ब्रूतेति दैविकविप्रहस्तयोरपो दद्यात् । ताभ्यां स्वस्तीति प्रत्युक्ते प्राचीनावीती पित्रादीनां संबुद्ध्यन्तमुच्चारणं कृत्वा स्वस्तीति ब्रूतेत्यपो दद्यात् ।

स्वस्तीति प्रतिवचनम् । यज्ञोपवीती पुरुरवाङ्घ्रं विश्वेषां देवानां यद्दत्तं श्राद्धं तदक्षय्यमस्त्विति ब्रूतेति यवोदकं दत्त्वा, अक्षय्यमस्त्विति प्रत्युक्ते प्राचीनावीती पित्रादीन्पुत्रानुच्चार्य यद्दत्तं श्राद्धं तदक्षय्यमस्त्विति ब्रूतेति तिलाम्बु दत्त्वा पूर्वस्थापितमर्घ्यपात्रं निवृत्य यज्ञोपवीती ब्राह्मणेभ्यो मुखवासताम्बूलादि दत्त्वा दक्षिणां दत्त्वा तान्पादाभ्यङ्गादिभिः प्रियोक्तिभिश्च परितोष्य कर्मणः संपूर्णतां वाचयित्वा ॐ स्वधोच्यतामिति ब्रुवन्निवृत्तपूर्वं विसृजेत् । विप्राश्चास्तु स्पधेति ब्रुवन्त उक्तिष्ठेयुः । कर्ता पिण्डनिपरणदेशं संसृज्य तत्र तिलान्प्रास्य तत्र शान्तिरस्तु पुष्टिरस्तु तुष्टिरस्तु, इत्युदकधारामासिच्य तथाऽस्त्विति विप्रेः प्रत्युक्ते दक्षिणामुखः प्राञ्जलिस्तिष्ठन्वरान्याचेत्

दातारो नोऽभिवर्धन्तां वेदाः संततिरेव नः ।

श्रद्धा च नो मा व्यगमद्बहु देयं च नोऽस्तु ॥ इति ।

दातारो योऽभिवर्धन्तां वेदाः संततिरेव वः ।

श्रद्धा च वो मा व्यगमद्बहु देयं च वोऽस्तु ॥

इति विप्राः प्रतिवदेयुः । कर्ता यस्य स्मृत्या च० व्युत्तम् । मन्त्रहीनं० मम । यः कश्चिच्छ्राद्धं० स्तु मे । सर्वं संपूर्णमस्त्विति विप्राः । कर्ताऽनेन दर्शश्राद्धयज्ञेन भगवान्पितृस्वरूपी परमेश्वरः प्रीयताम् । तत्सद्ब्रह्मार्पणमस्तु इत्युक्त्वा विप्रोच्छिष्टान्युद्वास्य भूमौ निरसत्याऽऽच्छाद्य गृहं गोमयेनोपलिप्य श्राद्धशेषेण वैश्वदेवादिकं कृत्वा श्राद्धशेषमिष्टैः सह मुञ्जीतेति ।

इति श्रीमच्चित्तपावनकेळ० श्राद्धमञ्जरीं केवलगृह्यपरिशिष्टोक्तो दर्शश्राद्धप्रयोगः ।

अथ सूत्रोक्तः पार्वणश्राद्धप्रयोगः । स च पूर्वोक्तादिस्तरेण प्रयोगकरणाशक्तौ कर्तव्यः ।

बह्वल्पं वा स्वगृह्योक्तं यस्य यत्कर्म चोदितम् ।

तस्य तावति शास्त्रार्थे कृते सर्वं कृतं भवेत् ॥

इति वचनात् । अपि वा शक्तौ सत्यामपि स्वगृह्योक्त एव कार्यो न-शास्त्रान्तरदृष्टविस्तरः कार्यं इति वृत्तिकृदुक्तेः । अतो वृत्तिकृत्कारिका-

काराभ्यां किञ्चित्किञ्चिदथाक्षिप्तस्वावश्यकमन्यादिशास्त्रान्तरपरिग्रहेणा-
 नुष्ठेयार्थो निरूपितस्तदनुसारेणैवोच्यते । तत्र मातामहादीनामनुक्तावपि
 स्वाविरुद्धमन्यतो ग्राह्यमित्युक्तत्वाच्छिष्टाचाराच्च तत्परिग्रहेणैव प्रयो-
 गोऽभिधीयते । श्राद्धकर्ता श्राद्धदिनात्पूर्वेद्युः सायं श्राद्धदिने वा प्रात-
 र्ब्राह्मणान्निमन्त्रयेत् । श्वोऽद्य वा करिष्यमाणदर्शश्राद्धे पुरुरवार्द्रवसं-
 ज्ञकविश्वदेवस्थाने त्वया क्षणः करणीय इति वैश्वदेवार्थमेकं द्वौ वा
 निमन्त्रय प्राचीनावीती, अद्य करिष्यमाणदर्शश्राद्धेऽस्मत्पितुरमुकशर्म-
 णोऽमुकगोत्रस्य वसुरूपस्य सपत्नीकस्य स्थाने त्वया क्षणः करणीयः ।
 ॐ तथेति प्रतिवचनम् । एवं पितामहाद्यर्थास्तत्तन्नामोच्चारपूर्वकं निम-
 न्त्रयेत् । अतः परं ब्राह्मणानां कर्तुंश्च ब्रह्मचर्यम् । ततः श्राद्धदिने
 मध्याह्ने स्नात्वा दर्शश्राद्धाङ्गन्तर्पणं विधाय ब्राह्मणान्समाहूय तैः स्नानं
 कारयित्वा यज्ञोपवीती पवित्रे धृत्वाऽऽचम्य प्राणानायम्य देशकालौ
 स्मृत्वा प्राचीनावीती, अस्मत्पितुरमुकशर्मणोऽमुकगोत्रस्य वसुरूपस्य
 सपत्नीकस्यास्मत्पितामहस्यामुकशर्मणोऽमुकगोत्रस्य रुद्ररूपस्य सपत्नी-
 कस्यास्मत्प्रपितामहस्यामुक० आदित्यरूपस्य सपत्नीकस्यास्मन्मातामह-
 स्यामु० अस्मन्मातुःपितामहस्यामु० अस्मन्मातुःप्रपितामहस्यामु० आदि-
 त्यरूपस्य सपत्नीकस्यैतेषां तुप्त्यर्थं दर्शश्राद्धं करिष्ये । ततस्तान्वि-
 प्रान्नातान्स्वयं कर्त्रा वा प्रक्षालितपादान्द्विराचान्तानुपवेशयेत् । तत्र
 द्वौ प्राङ्मुखो वैदिको वैश्वदेवस्वरूपो ध्यायन्नूपवेश्य पित्राद्यर्थान्ममैते
 पितर इति ध्यायन्नुरुद्रमुखानुपवेशयेत् । ततो यज्ञोपवीती देवार्चनं
 कुर्यात् । प्रथमवैश्वदेविकविप्रहस्तेऽपो दत्त्वा पुरुरवार्द्रवसंज्ञकानां
 विश्वेषां देवानामिदमासनम् । इति दक्षिणभाग ऋजून्युग्मान्दर्मानासने
 दत्त्वाऽपो दद्यात् । एवं द्वितीये देवेऽर्घ्यदानमावाहनं च कृताकृतम् ।
 पुरुरवा० विश्वे देवा अमी वो गन्धाः स्वाहा नमो न मम । एवमाद्य-
 न्तयोरब्दानपूर्वकं गन्धमाल्यधूपदीपाच्छादनानि दद्यात् । प्राचीनावीती,
 अपो दत्त्वाऽस्मत्पितुरमुकशर्मणोऽमुकगोत्रस्य वसुरूपस्य सपत्नीकस्येद-
 मासनमिति वामभागे द्विगुणभुशान्दर्मानासने दत्त्वाऽपो दद्यात् । एवं
 पितामहादीनां तत्तदुच्चारपूर्वकमासनानि दद्यात् । ततो दर्भेषु पङ्क्त्य-
 पात्राण्याग्नेयीसंस्थान्यासाद्य तेषु दर्भत्रयात्मकानि पवित्राणि निधा-
 याप आसिच्य शं नो देवोरिति सकृदनुमन्त्रय तिलोऽसि सोम० स्वधा

नम इति मन्त्रावृत्त्या प्रतिपात्रं तिलानोप्य गन्धपुष्पाणि क्षिप्त्वा यज्ञो-
पवीती तत्तदर्थपात्रं तत्तद्विप्राग्ने स्वधाऽर्घ्या इति मन्त्रावृत्त्या प्रत्येकं
निवेदयेत् । सन्त्वर्घ्या इति प्रतिवचनम् । एकब्राह्मणपक्षे तस्मा एव
सकृन्मन्त्रेण सर्वाणि निवेदयेत् । एकस्य स्थानेऽनेकब्राह्मणपक्षे तदर्थ-
पात्रं सकृन्मन्त्रेण युगपत्सर्वेभ्यो निवेदयेत् । ततोऽन्या अपः प्रदाय
दक्षिणहस्तेन सशेषमर्घ्यमादाय सव्योपगृहीतेन सपत्नीक पितरिदं तेऽर्घ्य-
मिति दत्त्वा या दिव्या आपः० भवन्तु । इति विप्रहस्तात्सवन्तीरपोऽनु-
मन्त्र्यापो दद्यात् । एवं पितामहादीनां तत्तन्मन्त्रेणार्घ्यदानम् । एकब्राह्म-
णपक्षे तस्मा एव सर्वाण्यर्घ्याणि प्रत्येकमाद्यन्तयोरुदकदानपूर्वकं दद्यात् ।
अनेकब्राह्मणपक्षे तद्देशार्घ्यं विगृह्य सर्वेभ्यो दद्यात् । ततः प्रथममर्घ्यपात्रं
पिड्यविप्रवामभागेऽन्यत्र वा शुचौ देशे निधाय तस्मिन्नितरार्घ्यपात्र-
स्थान्संस्रवान्समवनीय ताभिरद्भिः पुत्रकामश्चेन्मुखमनक्ति अपः स्पृष्ट्वा
तत्पात्रं प्रपितामहपात्रेणापिधाय तदा श्राद्धसमाप्तेर्न चाळयेत् । ततः
प्राचीनावीती, अस्मत्पितृपितामहप्रपितामहा अमुकशर्मण इत्याद्युच्चार्य
एष वो गन्धः स्वधा नमो न मम । एवमाद्यन्तयोरुदकदानपूर्वकं गन्ध-
पुष्पधूपदीपाच्छादनानि प्रदाय भोजनपात्राण्यासाद्य भोजनार्थादन्नाद-
न्नमादाय घृताक्तं कृत्वा प्राचीनावीती पिड्यविप्रपाणिषु मेक्षणेन हस्तेन
वाऽवदानधर्मेण सोमाय पितृमते स्वधा नमः । सोमाय पितृमत इदं० ।
अग्रये कव्यवाहनाय स्वधा नमः । अग्रये कव्यवाहनायेदं० इति प्रत्येकं
द्वे द्वे आहुती जुहुयात् । अपि वा, एकैकामाहुतिं विगृह्य सर्वेषु विप्र-
पाणिषु जुहुयात् । विप्राः स्वस्वपाणिस्थमन्नं स्वस्वपात्रे संस्थाप्य
बहिर्गत्याऽऽचम्य यथास्थानमुपविशेयुः । कर्ता यज्ञोपवीती देवपूर्वमन्नं
भोजनपर्याप्त्याधिकं परिविष्य हुतशेषं सर्वेषु पितृपात्रेषु दद्यात् । ततो
यज्ञोपवीती देवपात्रस्थमन्नं सावित्र्याऽभ्युक्ष्य पुरुरवारद्रवसंज्ञकेभ्यो
विश्वेभ्यो देवेभ्य इदमन्नममृतरूपं परिविष्टं परिवेक्ष्यमाणं चाऽऽ तृप्तेः
स्वाहा हव्यं नमो न ममेति निवेद्य पितृपात्रस्थमन्नं सावित्र्याऽभ्युक्ष्य
प्राचीनावीती, अस्मत्पित्रेऽमुकशर्मणेऽमुकगोत्राय वसुरूपाय सपत्नीका-
येदमन्नममृतरूपं परिविष्टं परिवेक्ष्यमाणं चाऽऽ तृप्तेः स्वधा कव्यं नमो न
मम । एवं पितामहादिभ्यो निवेद्याऽऽपोशनार्थमुदकं दद्यात् । विप्राश्चान्नं
पारेपिच्य बलिदानवर्जमापोशनं कृत्वा प्राणाहुतीर्गृहीत्वोक्तनियमयुक्ता
मुखीरन् । कर्ता यज्ञोपवीती भुञ्जानान्नाक्षोन्नपिड्यादीनि च श्रावयेत् ।
तेषु तृप्तेषु मधु दाता ऋतायते म० इति तिस्रोऽक्षत्रमीमदन्तेति चैकां

श्रावयेत् । ततो ब्राह्मणान्पृच्छति संपन्नमिति । ते च संपन्नमिति प्रत्युचुः ।
 ततः कर्ता भुक्तशेषात्सार्ववर्णिकमन्नं पिण्डार्थं प्रकिरणार्थं चोद्धृत्य
 शेषं ब्राह्मणेभ्यो निवेदयेत् । शेषमन्नं किं कियतामिति । विप्रास्तत्स्वी
 कुर्युरित्येः सह भुज्यतामिति वा वदेयुः । ततः कर्ता पिण्डदानं कुर्यात् ।
 द्विजोच्छिद्यसमीप आग्नेयीसंस्थां लेखामुल्लिखेत् । अपहता असुरा रक्षांसि
 वेदिषदः । तत्पश्चात्तथैवोल्लिख्य क्रमेणाभ्युक्ष्य चर्हिर्द्वयमास्तीर्य प्राचीना-
 धीती पूर्वस्यां त्रिरुदकं निनयेत् । शुन्धन्तां सपत्नीकाः पितराद्या इति
 षड्वारमुदकं निनयेत् । ततः षट् पिण्डान्कृत्वा, एतत्तेऽस्मत्पितरमुकश-
 र्मन्नमुकगोत्रं वसुरूप सपत्नीक ये च त्वामन्नानु इति पित्रे पिण्डं दत्त्वा
 एतत्तेऽस्मत्पितामहेत्यादिमातुःप्रपितामहान्तेभ्यो दद्यात् । अथ पिण्ड-
 स्थान्पितृनुमन्त्रयेत् । अत्र पितरो० यध्वम् । सव्यावृद्धुदङ्ङावृत्य यथा-
 शक्ति प्राणान्नियम्याभिपर्यावृत्य, अमीमदन्त० धीपत । इति पुनः पिण्डा-
 ननुमन्त्रय यज्ञोपवीती चरुशेषमवघ्रायाऽऽचम्य प्राचीनावीती पूर्वधच्छु-
 न्धन्तामित्यादि पिण्डेषु जलं निनयेत् । ततः पितरमुकशर्मन्नमुकगोत्रं
 वसुरूप सपत्नीकाम्यद्भक्ष्वेति तैलाभ्यश्चने दद्यादेवमितरेषु तथैवाद्भक्ष्वेत्य-
 क्षनम् । अथ दशामूर्णास्तुकां वा दद्यात् । पञ्चाशद्वर्षताया ऊर्ध्वं स्वीय-
 प्रकोष्ठस्थं हृत्स्थं वा लोम दद्यात् । एतद्द्वः० युद्भध्वम् । इति प्रतिपार्वणं
 मन्त्रावृत्तिः । अथ पिण्डस्थान्पितृनुपतिष्ठेत् नमो वः पितर इषे०
 स्याम । मनोन्वाहुवामह इति च तिसृभिः । अथैनान्प्रवाहयेत् । परेतन०
 नियच्छत । ततो वीरं मे दत्त पितर इति मन्त्रावृत्त्या मध्यमं पिण्डद्वय-
 मादायाऽऽधत्त पितरो ग० असदिति पत्नीं प्राशयेत् । अवशिष्टान्पिण्डा-
 नप्स्वग्नौ वा क्षिपेत् । ततो विप्रैरुत्तरापोशनादिशुद्धा(दध्या)चमनान्तं
 कारयित्वा पूर्वोद्धृतमन्नं सजलं विप्राणामग्रतस्तूर्णीं भुवि प्रकिरन्नुत्सृजेत् ।
 ततः पूर्वासादितमर्घ्यपात्रं चालयेत् । यज्ञोपवीती ब्राह्मणेभ्यो दक्षिणां
 यथासंभवं गोहिरण्यालंकारादि दत्त्वा ॐ स्वधोच्यतामिति अस्तु
 स्वधेति वोक्त्वा विसृजेत् । ते च ॐ स्वधा, अस्तु स्वधेति वा भुवन्त
 उत्तिष्ठेयुः । कर्ता दक्षिणामुखस्तिष्ठन्वरान्याचेत् । दातारो० व नः ।
 श्रद्धा च नो०स्त्विति । विप्राः । दातारो धो० व षः । श्रद्धा च वो०-
 स्त्विति प्रतिवदेयुः । कर्ता यस्य स्मृत्या०च्युतम् । मन्त्रहीनं०मम । यः
 कश्चिच्छ्रान्द्वयज्ञ०स्तु मे । सर्वं संपूर्णमस्त्विति विप्राः । कर्ताऽनेन दर्श-
 श्रान्द्वयज्ञेन भगवान्पितृस्वरूपी परमेश्वरः प्रीयताम् । तत्सद्ब्रह्मार्पणमस्तु ।

ज्ञातो विप्रोच्छिष्टान्युद्वास्य भूमौ निखन्याऽऽच्छाद्य गृहं गोमयेनोपलिप्य
शान्द्धशेषेणैव वैश्वदेवाधिकं कृत्वेष्टैः सह भुञ्जीतेति ।

इति श्रीमच्चित्तपावनके० शान्द्धमञ्जरीं संक्षिप्तः सूत्रोक्तः

पार्यणशान्द्धप्रयोगः समाप्तः ।

अथ दर्शशान्द्धपिण्डपितृयज्ञयोर्व्यतिपद्गप्रयोगः । चतुर्दश्यां सायंहो-
मानन्तरममावास्यायां वा प्रातर्होमानन्तरं दर्शशान्द्धार्थं ब्राह्मणान्निमन्त्र्य
तान्पाकसिद्ध्युत्तरं समाहूय तैः स्नानं कारयित्वा स्वयं स्नातो दर्शशान्द्धा-
ङ्गुत्तर्पणं कृत्वाऽऽचम्य धृतपवित्रः प्राणानायम्य देशकालौ संकीर्त्य
प्राचीनावीती, अस्मत्पितृपितामहप्रपितामहानाममुकश०गो०व० सपत्नी-
कानाम् । अस्मन्मातामह० सपत्नीकानां तृप्तिद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं
दर्शशान्द्धं पिण्डपितृयज्ञं च व्यतिपद्गेण करिष्य इति संकल्प्य यज्ञो-
पवीती, औपासनाग्निं प्रज्वालयाऽऽग्नेय्यभिमुखोऽग्निं ध्वात्वाऽऽग्नेयीमा-
ग्न्याप्रदक्षिणं सकृत्परिसमुह्याऽऽग्नेय्यग्रकैर्दक्षिणं परिस्तीर्य तथैव
पर्युक्ष्याग्नेरी(रे)शान्यां वायव्यां वाऽऽग्नेय्यग्रकान्दर्मानास्तीर्याभ्युक्ष्य तत्र
चरुस्थालीं शूर्पं स्फपमूलूसलं मुसलं सुवं ध्रुवां कृष्णाजिनं सकृदाच्छिन्नं
घर्हिर्द्वयमिधमं मेक्षणं कमण्डलुमिति द्वादश पात्राणि न्यग्बिलान्येकैकश
आग्नेयीसंस्थान्यासाद्योत्तानानि कृत्वा कमण्डलुजलेन प्रोक्ष्य स्थालीं
शूर्पं चाऽऽदायाग्नेर्दक्षिणतोऽग्रस्थितं व्रीहिमच्छकटं दक्षिणत आरुह्य
शूर्पे स्थालीं निधाय तां व्रीहिमिः पूरयित्वा यथा स्थालीमुखोपरिस्था
व्रीहयः शूर्पे निपतन्ति तथा स्थालीं निमृज्य शूर्पे पतितान् व्रीहीञ्छकटे
प्रास्याग्नेः पश्चिमतो वायव्यग्रीवमूर्ध्वलोमकृष्णाजिनमास्तीर्य तत्रोलूसलं
निधाय तस्मिन्स्थालीस्थान् व्रीहीनोप्याऽऽग्नेय्यभिमुख्या तिष्ठन्त्या प-
ल्याऽवहतान्सकृत्फलीकृतानविधिच्य सकृत्प्रक्षालिततण्डुलांश्चरुस्थाल्यां
समोप्याग्नावधिश्रित्य जीवतण्डुलं चरुं श्रपयेत् । किञ्चिदपक्वश्चरुर्जी-
वतण्डुलचरुरित्येकोऽर्थः । जीवतण्डुलानामित्यपरः । जीवतण्डुलक्षणं
भैत्रायणीयपरिशिष्टे—

पुराणा व्रीहयो येषां बीजमुत्तं प्ररोहति ।

तेषां ये तण्डुला जाता ज्ञेयास्ते जीवतण्डुलाः ॥ इति ।

ततश्चरुमुद्रास्यैवाग्नेरेकं प्रदीप्तमुत्सुकं गृहीत्वाऽग्नेराग्नेष्यां दिशि कृत-
स्थण्डिले ये रूपाणि प्रतिमुञ्चमाना असुराः सन्तः स्वधया चरन्ति ।
परा पुरो निपुरो ये भरन्त्याग्निष्ठाऽल्लोकात्प्रणुदात्वस्मात् ।

इति मन्त्रेण निधाय तमतिप्रणीतास्यमग्निं पूर्ववत्परिसमुह्याऽऽग्नेष्य-
ग्रकैः कुशैः परिस्तीर्य पर्युक्ष्याऽऽग्नेष्यभिमुख औपासनातिप्रणीतयोरन्त-
राले स्फ्येन लेखामुल्लिखेत् । अपहता असुरा रक्षांसि वेदिपदः । तत्पश्चा-
त्तथैव मन्त्रावृत्त्या द्वितीयामुल्लिख्य तल्लेखाद्वयं तूष्णीमद्भिरभ्युक्ष्य सकृ-
दाच्छिन्नघर्हिर्द्वयेन लेखाद्वयमवस्तीर्याऽऽज्यं विलापितमनुत्पूतं ध्रुवाया-
मासिच्यापि वा नवनीतं पात्रान्तरे गृहीत्वा लौकिकाग्नौ विलीनमात्रं
कृत्वाऽन्यस्मिन्पात्र आनीय पवित्राभ्यां तूष्णीमुत्पूय तदाज्यकार्यार्थं
ध्रुवायामासिच्याग्नेर्दक्षिणतो दर्भेषु निधाय सुवं संमृज्य तेन ध्रुवास्थमा-
ज्यमादाय चरुमभिधार्योद्गुद्रास्यातिप्रणीताग्नेः पश्चाद्दर्भेष्वसाद्य तद्द-
क्षिणतोऽभ्यञ्जनाञ्जनकशिपूपबर्हणान्यासादयेत् । एतदन्तं पिण्डपितृ-
यज्ञं कृत्वा निमन्त्रितान्विप्रान्स्वागतेनाभिपूज्य पादप्रक्षालनादिभोजन-
पात्राण्यासाद्य सन्ततो भस्ममर्यादां कृत्वा हस्तशुद्धिं विधायेत्यन्तं
पार्वणं कृत्वा पात्रान्तरे पितृयज्ञस्थालीपाकाद्भ्रमुद्धृत्य घृताक्तं कृत्वा
प्राचीनावीती, अग्नौ करिष्य इति पित्रर्थद्विजान्पृष्ठा क्रियतामिति तैः
प्रत्यभ्यनुज्ञातोऽतिप्रणीताग्नेः पश्चादुपविश्य तमर्चयित्वाऽरत्निमितपश्चद-
शदारुकमिध्ममभिधारितं पितृतीर्थेन तूष्णीमग्नावाधाय सुवेणाऽऽज्यमा-
दाय मेक्षणमुपस्तीर्योद्धृतं चरुं द्वेधा विभज्योत्तरभागमध्याद्ङ्कुष्ठपर्वमात्रं
मेक्षणेनावदाय पुनः पूर्वार्धादवदाय पश्चायत्ती तु तृतीयं पश्चार्धादवदाय
पात्रस्थमवत्तं चाभिधार्योतिप्रणीताग्नौ दक्षिणभागे सोमाय पितृमते स्वधा
नम इति पितृतीर्थेन हुत्वा सोमाय पितृमत इदं न ममेति त्यजेत् । पुनस्त-
थैव दक्षिणभागादवदायाग्नेरुत्तरभाग अग्नये कव्यवाहनाय स्वधा नम
इति पूर्ववद्धुत्वा, अग्नये कव्यवाहनायेदमिति त्यजेत् । ततस्तूष्णीं मेक्ष-
णमग्नावनुप्रहरेत् । अपि वा यज्ञोपवीती अग्नये कव्यवाहनाय स्वाहेति
प्रथमाहुतिः । सोमाय पितृमते स्वाहेति द्वितीया । अस्मिन्पक्षे
मेक्षणानुप्रहरणमपि यज्ञोपवीतिनैव । एतावत्पिण्डपितृयज्ञं कृत्वा
विप्रानाचाम्य पात्राण्युपस्तीर्यान्नानि परिविष्येत्यादिशेषमन्नं किं क्रिय-
तामित्यन्तं कृत्वा श्राद्धान्नशेषात्पिण्डार्थमुद्धृतमन्नं पिण्डपितृयज्ञचरुशे-
षेण संमिश्र्य मधुं सर्पिस्तिलयुक्तं च कृत्वा तस्य पट् पिण्डान्कृत्वा ध्रुवा-

ज्येनाभिधार्य प्राचीनावीती पूर्वास्तृतवर्हिपोः पूर्वासादितकमण्डलुजलं
शुन्धन्तां पितर इत्यादिपण्मन्त्रैर्निनीय ततः पिण्डदानादिवात्सोदानान्तं
पूर्ववत्कृत्वा कशिपूपवर्हणे निवेद्य पिण्डार्चनादिपिण्डप्रवाहणान्तं कृत्वा,
अग्ने तमद्याश्वं० ओहैरिति मन्त्रेणौपासनाग्निं प्रत्येत्य

यदन्तरिक्षं पृथिवीमुत द्यां यन्मातरं पितरं वा जिहिंसिम ।

अग्निर्मा तस्मादेनसः प्रमुञ्चतु करोतु मामनेनसम् ॥

इति मन्त्रं गार्हपत्यपदरहितं जपेत् । अनेन मन्त्रेणाग्निमुपतिष्ठेत् वा ।
ततः पिण्डान्नमस्कृत्य वीरं मे दत्त पितर इत्याद्यथशिष्टान्पिण्डानप्स्वग्नौ
वा क्षिपेदित्यन्तं पूर्ववत्कृत्वा पूर्वासादितयज्ञपात्राणि द्वादश उत्सृजेत् ।
चरुस्थालीं शूर्पं च । स्फ्यमुलृसलं च । मुसलं सुवं च । ध्रुवां कृष्णा-
जिनं च । अग्रशिष्टं कमण्डलुं तृणेन सहोत्सृजेत् । तत औपासनाग्नेः
परिस्तरणानि विसृज्याऽऽयतनं संसृज्यालं कुर्यात् । एवं पिण्डपितृयज्ञं
समाप्य विप्रेभ्य उत्तरापोशनं दत्त्वा गण्डूपादि कारयित्वा तानाचाम्य
विकिरदानादिश्राद्धशेषं समापयेत् । आचान्तेषु पिण्डदानमिति पक्षे
विप्रेरुत्तरापोशनादिशुद्धा(द्ध्या)चमनान्तं कारयित्वा पिण्डदानाद्य-
ग्न्यायतनालंकरणान्तं कृत्वा विकिरदानादिश्राद्धशेषं समापयेदिति ।

इति श्रीमच्चित्तपावनकेळकरो० श्राद्धमञ्जरीं पिण्डपितृयज्ञव्य-
तिपक्तदर्शश्राद्धप्रयोगः ।

अथ पूर्वोक्तप्रयोगाणामधिकारिभेदाद्यवस्थोच्यते । अनाहिताग्नेर्गृह्या-
ग्निमत एव पिण्डपितृयज्ञदर्शश्राद्धयोर्व्यतिपङ्गे भवति । सण्डपर्वणि तु
पूर्वेद्युर्दर्शश्राद्धमपरेश्वरपराह्णे केवलः पिण्डपितृयज्ञो भवति । केवलपि-
ण्डपितृयज्ञप्रयोगस्तु प्रयोगरत्ने द्रष्टव्यः । आहिताग्निस्तु पिण्डपितृयज्ञं
समाप्य ततः पूर्वोक्तपाणिहोमविधिना पार्वणं करोति । अनग्निकस्य
पाणिहोम एव । यत्राग्नावग्नौकरणविधिस्तत्र स्थालीपाकादुद्धृत्य होमः ।
स्थालीपाकेन भुक्तशेषेण चाग्निसमीपे पिण्डनिपरणम् । पाणिहोमे तु
मोजनार्थादन्नादुद्धृत्य घृताक्तं कृत्वा पाणिहोमः । ब्राह्मणसमीपे भुक्तशे-
पमात्रेण पिण्डनिपरणम् । गृह्याग्निमतः सण्डपर्वणि केवलदर्शश्राद्धे पिण्ड-
पितृयज्ञाभावादाहिताग्निवत्पाणिहोम एव । केचिच्चतुर्वाद्येषु साग्नीनां

वहो होमो विधीयत इति वचनात्केवलमग्नौकरणमेवेत्याहुः । तत्र-
योगो रघुनाथीयपद्धत्यनुसारेणोच्यते । पूर्ववत्पाणिहोमात्प्राक्तनं श्राद्धप्र-
योगं कृत्वा भोजनार्थादन्नाद्गृताक्तमोदनं गृहीत्वा प्राचीनावीती अग्नौ
करिष्य इति पित्रर्थद्विजान्पृष्ट्वा क्रियतामिति तैरनुज्ञात औपासनसमीपमे-
त्य तं प्रज्वाल्य कव्यवाहनरूपं ध्यात्वा सकृदप्रदक्षिणं परिसमुह्याऽऽग्ने-
व्यग्रकैर्दक्षिणं परिस्तीर्य तथैव सकृत्पर्युक्ष्य विलापितमनुत्पूतमाज्यं
पात्रे गृहीत्वाऽन्नमग्नावधिश्रित्याभिचार्योद्वास्याग्नेः पश्चाद्दर्भेष्वासाद्याग्नि-
मभ्यर्च्य पञ्चदशदारुकमिध्ममेकां समिधं वा तूष्णीमग्नावाधाय मेक्षणे
स्रुवेणोपस्तीर्य चरोरुत्तरभागस्य मध्यात्पूर्वार्धाच्चान्नुष्ठपर्वमात्रं मेक्षणेनैव
द्विरवदाय पश्चावत्ती तु पश्चार्धात्तृतीयमवदाय पात्रस्थमवत्तं चाभिघार्य
सोमाय पितृमते स्वधा नम इति पितृतीर्थेन दक्षिणभागे हुत्वा सोमाय
पितृमत इदं न ममेति त्यजेत् । पुनः पूर्ववद्दक्षिणभागचरोरवदायाग्रथे
कव्यवाहनाय स्वधा नम इति उत्तरभागे हुत्वा, अग्रथे कव्यवाहनायेदं
न ममेति त्यक्त्वा तूष्णीं मेक्षणमनुप्रहरेत् । होमे प्राचीनावीतित्वे
प्राचीनावीतिनैव मेक्षणानुप्रहरणम् । यज्ञोपवीतित्वे यज्ञोपवीतिनैवेति
वृत्तिकृत् । उभयत्रापि यज्ञोपवीतिनैवेति प्रयोगरत्ने चन्द्रिकायां च ।
अस्मिन्पक्षे पिण्डनिपरणमग्निसमीपे ।

इति पार्वणश्राद्धम् । अटकाश्राद्धमाध्यावर्षश्राद्धमासिमासिश्राद्धा-
नामेकोद्दिष्टस्य च प्रयोगः प्रयोगरत्नेऽवगन्तव्यः ।

अथ काम्यश्राद्धम् । तत्र कृष्णपक्षे पुत्रकामेण पञ्चम्यां पार्वणश्राद्ध-
वत्पद्धदैवत्यं सपिण्डं पाणिहोमविधिना कार्यम् । तत्र धूरिलोचनसंज्ञका
विश्वे देवाः । अपि कन्यागते सूर्ये काम्ये च धूरिलोचनावित्युक्तत्वात् ।
सासिश्राद्धस्य पार्वणस्य चैककार्यत्वादन्यतरेणैवालम् । तत्र मासि
श्राद्धं कृतवांश्चेत्पर्वणि केवलं पिण्डपितृयज्ञः कार्य एव । काम्यश्राद्धं
कृतं चेत्तेनैवालं न पुनर्मासिश्राद्धपार्वणश्राद्धे कार्ये इति वृत्तिकृत् ।

अथ शौनकोक्तं काम्यश्राद्धमुच्यते ।

काम्यश्राद्धमहं वक्ष्ये शौनकस्त्वृषित्तम इत्युपक्रम्य

पार्वणेन विधानेन श्राद्धं कुर्यात्समाहितः ।

तिलार्थं तु यवैः कार्यं वृद्धिश्राद्धदादिष्यते ॥

प्रोष्ठपद्यपरे पक्षे पञ्चम्यामाहरेत्सुधीः ।

इत्युक्तत्वाद्वाद्रुकृष्णपञ्चम्यां वृद्धिश्राद्धवद्भवति वृद्धिश्राद्धं त्वये
वक्ष्यामः । अथ शास्त्रान्तरोक्तानि काम्यश्राद्धान्युच्यन्ते । तत्र तिथि-
श्राद्धान्याह पराशरमाधवीधे मनुः—

कुर्वन्प्रातिपदि श्राद्धं सुरूपान्विन्दते सुतान् ।
कन्यकां तु द्वितीयायां तृतीयायां तु वन्दिनः ॥
पशून्शुद्रांश्चतुर्थ्यां तु पञ्चम्यां शोभनान्सुतान् ।
पठ्यां धृतं कृषिं चैव सप्तम्यां लभते नरः ॥
अष्टम्यामपि वाणिज्यं लभते श्राद्धदः सदा ॥
स्यान्नवम्यामेकसुरं दशम्यां द्विसुरं बहु ।
एकादश्यां तथा रूपं ब्रह्मवर्चस्विनः सुतान् ॥
द्वादश्यां जातरूपं तु रजतं रूप्यमेव च ।
ज्ञातिश्रेष्ठ्यं त्रयोदश्यां चतुर्दश्यामुरुप्रजाः ॥
प्रीयन्ते पितरश्चास्य ये शस्त्रेण रणे हताः ।
श्राद्धदः पञ्चदश्यां तु सर्वान्कामान्समश्नुते ॥ इति ।

एतानि श्राद्धानि सर्वेष्वेवापरपक्षेषु प्रतिपदादितिथिषु भवन्तीति
मार्धैवः । आपस्तम्बोऽपि—सर्वेष्वेवापरपक्षस्याहःसु क्रियमाणे पितृन्प्री-
णाति कर्तुंस्तु कालनियमात्कलविशेष इति । अथ वारश्राद्धानि ।
तान्युक्तानि कूर्मपुराणे—

आदित्यवारे चाऽऽरोग्यं चन्द्रे सौभाग्यमेव च ।
कुजे सर्वत्र विजयं सर्वान्कामान्बुधे तथा ॥
विद्यां विशिष्टां च गुरौ धनं वै भार्गवे पुनः ।
शनैश्चरे भवेदायुरारोग्यं च सुदुर्लभम् ॥ इति ।

निर्णयसिन्धौ—बवादिकरणेष्वेतच्छ्राद्धकृत्स्नमते फलमित्युक्तत्वाद्यत्सू-
र्यादिवारफलं तदेव बवादिकरणश्राद्धेष्वपि योजनीयम् । एतानि
श्राद्धानि सर्वेषु मासेषु शुक्लकृष्णपक्षेषु भवन्ति । आदित्यादिदिनेष्वेवं
श्राद्धं कुर्वन्सदा नर इति विष्णुधर्मोत्तर उक्तत्वात् । सततमादित्येऽह्नि
श्राद्धं कुर्वन्नारोग्यमाप्नोतीति विष्णुक्तेश्च । श्राद्धे कृष्णपक्षस्य संस्तवा-
दपरपक्षे पित्र्याणीति सुदर्शनभाष्याच्च सकृत्करणे कृष्णपक्षे कर्तव्यत्वं
युक्तम् ।

अथ नक्षत्रेश्राद्धानि । तान्याह मार्कण्डेयः—

कृत्तिकासु पितृनर्चन्स्वर्गमाप्नोति मानवः ।
 अपत्यकामो रोहिण्यां सौम्ये त्वोजस्वितं लभेत् ॥
 आर्द्रायां शौर्यमाप्नोति क्षेत्रादीनि पुनर्वसौ ।
 पुष्टिं पुष्ये पितृनर्चनाश्लेषासु वरान्सुतान् ॥
 मघासु स्वजनश्रेष्ठं सौभाग्यं फल्गुनीषु च ।
 प्रदानशीलो भवति सापत्यश्चोत्तरासु च ॥
 प्राप्नोति ज्येष्ठतां सत्सु हस्ते श्राद्धप्रदो नरः ।
 रूपवन्ति च चित्रासु तथाऽपत्यान्यवाप्नुयात् ॥
 घाणिज्यलाभदा स्वाती विशाखा पुत्रकामदा ।
 कुर्वतां चानुराधाश्च दद्युश्चक्रप्रवर्तनम् ॥
 ज्येष्ठास्वर्थाधिपत्यं च मूले चाऽऽरोग्यमुत्तमम् ।
 आपाढासु यशःप्राप्तिरुत्तरासु विशोकता ॥
 श्रवणे च शुभाह्लोकान्धनिष्ठासु धनं महत् ।
 वेदश्रेष्ठं चामिजिति भिषक्सिद्धिं च दारुणे ॥
 अजाविकं प्रोष्ठपदे विन्देद्भार्यां तथोत्तरे ।
 रेवतीषु तथा रौप्यमश्विनीषु तुरंगमान् ॥
 श्राद्धं कुर्वस्तथाऽऽप्नोति मरणीष्वायुरुत्तमम् ।
 तस्मात्काम्यानि कुर्वीत ऋक्षेष्वेतेषु तत्त्ववित् ॥ इति ।

चक्रप्रवर्तनं सर्वत्राऽऽज्ञायाः प्रतिघाताभावेन प्रवर्तनमिति माधवः
 मरीचिः—

कृत्तिकादिषु ऋक्षेषु श्राद्धे यत्फलमीरितम् ।
 विष्कम्भादिषु योगेषु तदेव फलमिष्यते ॥

नक्षत्रादिश्राद्धान्यपि सार्धकालिकानि । एतेषामेव तिथ्यादिश्राद्धान्
 फलान्तराप्यपि माधवीयादिग्रन्थेभ्यो ज्ञेयानि । अत्र पिण्डरहितां
 श्राद्धान्युच्यन्ते रामकौतुके—

नन्दाश्वकामरव्यारभृग्वग्निपितृकालभे ।

गण्डे वैधृतिपाते च पिण्डास्त्याज्याः सुतेप्सुभिः ॥

नन्दाः प्रतिपत्पष्ठचेकादशयः । अश्वः सप्तमी । कामश्चयोदशी

रविः सूर्यः । आरो भौमः । भृगुः शुक्रः । अग्निं कृत्तिका । पितृभं
मघा । कालं मरणा । पौर्णमासीपु पिण्डदानं निपिद्धमिति सिन्धौ ।
एतेष्वेव काम्यश्राद्धेष्वयं निषेधः ।

तिथिवारप्रयुक्तो यो दोषो वै समुदाहृतः ।

स श्राद्धे तन्निमित्ते स्यान्नान्यश्राद्धे कदाचन ॥

इति विश्वरूपनिबन्धोक्तेः । पृथ्वीचन्द्रोदये नारदोऽपि—

सकृन्महालये काम्ये पुनः श्राद्धेऽखिलेषु च ।

अतीतविषये चैव सर्वमेतद्विचिन्तयेत् ॥ इति ।

यत्र पिण्डदाननिषेधस्तत्र सांकल्पिकविधिः । तदाह निर्णयसिन्धो
छागलेयः—

पिण्डो यत्र निवर्तेत मघादिषु कथंचन ।

सांकल्पं तु तदा कार्यं नियमाद्ब्रह्मवादिभिः ॥ इति ।

सांकल्पिकश्राद्धविधिस्त्वग्रे वक्ष्यते । अत्रापि सर्वेषु श्राद्धेषु धूरि-
लोचनसंज्ञका विश्वे देवाः । पितरस्तु सपत्नीकाः । पित्राद्यस्त्रयः सप-
त्नीका मातामहादयश्च त्रयः । एवं पट् । संकल्पेऽस्मत्पितृपितामह-
प्रपितामहानाममुकशर्मणाममुकगोत्राणां वसुरुद्रादित्यस्वरूपाणां सप-
त्नीकानामस्मन्मातामहमातुःपितामहमातुःप्रपितामहानाममुकशर्मणाम-
मुकगोत्राणां वसुरुद्रादित्यस्वरूपाणां सपत्नीकानामेतेषां तृप्त्यर्थं पुत्र-
कामः प्रतिपच्छ्राद्धं सांकल्पिकविधिना सदैवमन्त्रेण हविषा श्वः सद्यो
वा करिष्ये । द्वितीयायां तु एतेषां तृप्त्यर्थं कन्याकामो द्वितीयाश्राद्धं
सदैवं सपिण्डं पार्वणेन विधिनाऽन्त्रेण हविषा श्वः सद्यो वा करिष्ये ।
एवं तत्तच्छ्राद्धे तत्तत्कामोल्लेखः । अन्यत्सर्वं दर्शश्राद्धवत् । प्रतिपत्पष्ठी-
सप्तम्येकादशीत्रयोदशीपौर्णमासीश्राद्धानि सांकल्पविधिना कार्याणि ।
अन्यानि पिण्डसहितानि पार्वणवत् । चतुर्दशीश्राद्धे विशेष उच्यते ।

युवानः पितरो यस्य मृताः शस्त्रेण वा हताः ।

तेन कार्यं चतुर्दश्यां तेषां तृप्तिमभीप्सुना ॥

इति मार्कण्डेयपुराणाद्येषां युवानः पितरः शस्त्रहता वा मृतास्तेरेव
कर्तव्यम् ।

प्रतिपत्प्रमृतिष्वेकां वर्जयित्वा चतुर्दशीम् ।

शस्त्रेण तु हता ये वै तेभ्यस्तत्र प्रदीयते ॥

इति याज्ञवल्क्योक्तेश्च । यानि तु अपमृत्युर्भवेद्येपामित्यादिवचनानि
तानि महालयान्तर्गतचतुर्दशीश्राद्धपराणि । तत्प्रकरणे पठितत्वात् ।
इदं चैकोद्दिष्टमेव कार्यं न पार्वणम् ।

चतुर्दश्यां तु यच्छ्राद्धं सपिण्डीकरणात्परम् ।

एकोद्दिष्टविधानेन तत्कार्यं शस्त्रघातिनः ॥

इति गार्ग्यवचनात् । पित्रादित्रिके द्वयोः शस्त्रादिमृतयोरैकोद्दिष्टद्वि-
तयं त्रयाणामपि तथात्व एकोद्दिष्टत्रयं कार्यमिति चन्द्रिकायाम् । अथवा
त्रयाणां शस्त्रमृतौ पार्वणमेव ।

पित्राद्यस्त्रयो यस्य शस्त्रघातात्त्वनुक्रमात् ।

स भूते पार्वणं कुर्यादाद्विकानि पृथक्पृथक् ॥

इति मदनरत्ने पराशरस्मृतेः । मम तु अशस्त्रमृतानामपि कामनायां सत्यां
पार्वणविधिना चतुर्दशीश्राद्धं कर्तव्यमिति प्रतिभाति । चतुर्दश्यामुरुप्रजा
इति मनुवचसो वैयर्थ्यापत्तेः । यत्तु वर्जयित्वा चतुर्दशीमिति याज्ञवल्क्य-
वचनं तत्कामाभावे योजनीयमित्यधिरोध इति । एकोद्दिष्टश्राद्धविधि-
स्त्वग्रे वक्ष्यते । रविभौमशुक्रवारश्राद्धानि सांकल्पिकानि अन्यानि सपि-
ण्डिकानि । नक्षत्रश्राद्धेषु कृत्तिकामघाभरणीश्राद्धानि सांकल्पिकानि ।
अन्यानि सपिण्डिकानि । अभिजिच्छ्राद्धं तृत्तरापाढान्तिमपादश्रवणाद्यघ-
टिकाचतुष्टयात्मकस्य ज्योतिःशास्त्रप्रसिद्धस्याभिजिन्नक्षत्रस्य यस्मिन्दि-
नेऽपराह्णे योगस्तस्मिन्दिने कार्यम् । योगेषु गण्डव्यतीपातवैधृतिश्राद्धानि
सांकल्पिकान्यन्यानि सपिण्डिकानि । नक्षत्रयोगाणां ह्यासवृद्धित्वे तिथि-
यन्निर्णयः । करणानां तु यस्मिन्दिने यत्करणमपराह्णे संभवति तस्मि-
न्दिने तत्करणश्राद्धम् । अन्यथा रात्रौ श्राद्धप्रसङ्गः स्यात् । श्राद्धसं-
पातनिर्णयं त्वग्रे वक्ष्यामः । अथैषां तर्पणनिर्णयः । मघाभरणयोः श्राद्धे
श्राद्धोत्तरं तत्कालं एव तिलतर्पणं कृत्वा काले वैश्वदेवादि कृत्वा
मुञ्जीत । अन्येषु श्राद्धात्पूर्वं दर्शश्राद्धवद्विशेषवचनाभावात् । वैधृतिव्य-
तीपातश्राद्धयोर्ब्रह्मचर्यादिनियमा न सन्ति । व्यतीपातादिके श्राद्धे
नियमान्परिवर्जयेदितिवचनात् ।

इति श्रीमच्चित्तपावनके० श्राद्धमञ्जरीं काम्यश्राद्ध-
प्रयोगः समाप्तः ।

अथ वृद्धिश्राद्धमुच्यते । तच्च गर्भाधानादिषु संस्कारेषु जातकर्मा-
दिष्वपत्यसंस्कारेषु श्रवणाकर्मादिषु वापीकूपतडांगादिषु देवताप्रतिठार्यां
चानप्रस्थाश्रमे संन्यासस्वीकारे तुलापुरुपादिमहादानादौ नववास्तुप्रवेशे
व्रतोद्यापनादिषु राजाभिषेके महानाम्न्यादिवेदव्रतेषु प्रथमोपाकर्मात्सर्ज-
नयोः सर्वेषु शान्तिकपौष्टिकेषु अग्न्याधानादिषु श्रौतकर्मसु च कार्यम् ।
तच्च पार्वणत्रयात्मकम् । आदौ मातृपार्वणम् । ततः पितृपार्वणम् । ततः
सपत्नीकमातामहपार्वणम् । तत्कालः—कर्माहात्पूर्वेद्युर्मातृपार्वणश्राद्धम् ।
तच्च देवरहितमेव । कर्माहे देवपूर्वकं पितृपार्वणश्राद्धम् । कर्मात्तराहे
देवपूर्वकं सपत्नीकमातामहपार्वणश्राद्धम् । अस्यासंभवे पूर्वद्युरेव पूर्वाह्ने
मातृकम् । मध्याह्ने पैतृकम् । अपराह्ने मातामहानाम् । अस्याप्यसंभवे
पूर्वद्युरेव पूर्वाह्ने सर्वेषां देवपूर्वकं तन्त्रेणानुष्ठानम् । अत्र पूर्वाह्णशब्दः
सार्धप्रहरवाचकः । महत्सु कर्मसु पूर्वद्युरन्येषु तु कर्माह एवेति प्रयोगरत्ने ।
पुत्रजन्मनि तु दिने वा रात्रौ वा पुत्रजन्मानन्तरमेव कार्यम् । आधानाङ्गं
नान्दीश्राद्धं त्वपराह्ण एव । आग्निं त्वपराह्ण इति विष्णुक्तेः । अस्य
कालैक्यत्वात्तन्त्रेणैवानुष्ठानं युक्तमिति प्रतिभाति । अत्र विश्वे देवाः
सत्यवसुसंज्ञकाः । इष्टिश्राद्धे कर्माङ्गश्राद्धे च क्रतुदक्षसंज्ञकाः । इष्टि-
श्राद्धलक्षणं श्राद्धचन्द्रिकायाम्—इष्टिश्राद्धमाधानसोमयागादौ क्रिय-
माणं वृद्धिश्राद्धमिति । कर्माङ्गश्राद्धलक्षणमपि तत्रैव—

निषेककाले सोमे च सीमन्तोन्नयने तथा ।

ज्ञेयं पुंसवने चैव श्राद्धं कर्माङ्गमुच्यते ॥ इति ।

इष्टिश्राद्धं कर्माङ्गश्राद्धमिति कौस्तुभे । आधानाङ्गश्राद्धे सत्यवसु
इति केचित् । ब्राह्मणास्तु वैश्वदेवस्थाने द्वौ । मात्रादिस्थाने प्रत्येकं
द्वौ द्वौ । एवं विंशतिः । वैश्वदेवस्थाने चत्वार इति केचित् । अथवा
वैश्वदेवस्थाने द्वौ । मात्रादिपार्वणत्रये प्रतिपार्वणं द्वौ द्वौ । एवमदौ ।
कौस्तुभे तु अत्यशक्तौ देवस्थान एकः । मात्रादिपार्वणत्रये त्रयः । एवं
चत्वार इत्युक्तम् । विप्रचरणक्षालनकाले यद्यतिथिः समागतश्चतमपि
सर्वपितृस्थाने विनियोज्य स्वागतादिविधिना भोजयेत् । मातृपार्वणे
विप्राभावे श्राद्धार्हसुवासिन्योऽपि भोज्याः सर्वं पितृकर्मापि यज्ञोपवी-
तिनैव कार्यम् । न सव्यजानुनिपातनम् । प्रदक्षिणमुपचारः । तिलस्थाने
यवा एव । तिलोदककार्यं यवोदकेन । पूजोपचाराणां देवतीर्थेन

द्विर्द्विर्दानम् । गन्धदानं तु मध्यमाहुल्याऽनामिकया वा । कर्तुः प्राङ्मु-
खतोद्ङ्मुखता वा । कर्मणोऽपि प्रागपवर्गतोद्गपवर्गता वा । स्वधाश-
ब्दस्थाने स्वाहाशब्दः । न नामग्रहणम् । नास्मद्गोत्रवसुरुपादेशब्दाः ।
नामगोत्रादिनिषेधस्तु सपिण्डकश्राद्धे न भवतीति निर्णयसिन्धौ ।
संस्कारकर्माङ्गनान्दीश्राद्धे दर्भस्थाने दूर्वाः । आधानसोमाद्यङ्गमूते तु
दर्भा एव । तेऽप्यमूलाः । हरितदर्भा इति केचित् । नात्र पुष्पमाला-
रक्तगन्धादिनिषेधः । पुष्पाणि तु मालतीशतपत्रीमल्लिकाकुब्जकेतकीपा-
टलानि प्रशस्तानि । मालाश्चैतेषामेव पुष्पाणाम् । चतुरस्राण्येव सर्वाणि
मण्डलानि । सौवर्णान्येव सर्वाणि भोजनपात्राणि । अलाभे मधुकय-
लाशग्राम्यकदल्याद्यन्यतमपात्राणि । अन्नानि तु मोदकमाङ्गलिकपक्वा-
न्नभक्ष्यभोज्यपायसाज्यगुडमिश्रैर्दनादिमधुरद्रव्यसहितानि । आम्लकटु-
कमापात्रादिद्रव्याणि निषिद्धानि । श्राद्धदिनकृत्यमाह निर्णयसिन्धौ
पराशरः—

सुवेपभूपणैस्तत्र सालंकरैस्तथा नरैः ।

कुङ्कुमाद्यनुलिप्ताङ्गैर्भाव्यं तु ब्राह्मणैः सह ॥

स्त्रियोऽपि स्युस्तथाभूता गीतनृत्यादिहर्षिताः ॥ इति ।

वृद्धिश्राद्धे पिण्डदानं कृताकृतम् । कुलदेशाचारतो व्यवस्थेति प्रयो-
गरत्ने । साग्निकस्य तु पिण्डदानं नियतमेव ।

अग्नौ तु विद्यमाने यो वृद्धो पिण्डान्न निर्वपेत् ।

पतन्ति पितरस्तस्य नरके स तु पच्यते ॥

इति ब्रह्मपुराणात् । अस्मिन्नान्दीश्राद्धे सर्वत्र देवशब्देषु तत्तद्वि-
भक्त्या नान्दीमुखपूर्वकोलेषु कर्तव्यः । नान्दीमुखाः सत्यवसुसंज्ञका
विश्वे देवा इत्यादि । अथवा देवशब्दोत्तरं नान्दीमुखशब्दः प्रयोक्तव्यः ।
सत्यवसुसंज्ञका विश्वे देवा नान्दीमुखा इत्यादि । एवमेव पितृशब्देषु च ।
तदुक्तं श्राद्धचन्द्रिकायाम्—

एकैको मन्त्रवत्पिण्डो देयस्तूष्णीमथापरः ।

सर्वमन्त्रेषु कर्तव्यं नान्दीमुखविशेषणम् ॥ इति ।

निर्णयसिन्धौ वृद्धपराशरः—

नान्दीमुखेभ्यो देवेभ्यः प्रदक्षिणकुशासनम् ।

पितृभ्यस्तन्मुखेभ्यश्च प्रदक्षिणामिति स्थितिः ॥

इत्यादिवाक्येषु नान्दीमुखविशेषणपूर्वकदेवपितृशब्दोच्चारणदर्शनात् । नान्दीमुखपितृलक्षणं गृह्यकारिकाभाष्ये—अत्र पूर्वोक्तमात्रादिमनुष्यपितृनूर्ध्वमुखदिव्यपितृविशेषणकान्कृत्वा तदभेदेनार्चयेदिति हेमाद्रिणा प्रपञ्चितम् । तत्रत्यवचनम्—ऊर्ध्ववक्त्रास्तु ये तत्र ते नान्दीमुखसंज्ञिता इति । एते दिव्यपितरः । मात्रादयश्च मनुष्यपितरः प्राधान्येनोद्देश्याः । नान्दीमुखत्वं च तदभेदं दृष्ट्वा मात्रादीनां सिद्धम् । अतोऽत्र नान्दीमुखानां पितृणामिदमासनामित्यादिकात्यायनीयप्रयोगवचनं सिद्धमिति । हिरण्यकेशीयसंस्काररत्नमालायामप्येवमेव प्रयोगः । अतो मन्त्रान्तर्गतेषु पितृशब्देष्वपि नान्दीमुखपूर्वकोल्लेखो युक्तः । तत्रैवं व्यवस्था मनो न्वाहुवामह इत्यादीनामाचार्योक्तानामृचां यथार्थमेव पाठः । तस्माद्दृचं नोहेदित्युक्तत्वात् । तत्र पितृशब्दोच्चारणकाले नान्दीमुखध्यानमात्रम् । शास्त्रान्तरप्राप्तानां स्वधाशब्दपितृपदघटितानामृचां लोप एव । शास्त्रान्तरोक्तमन्त्रत्यागे प्रत्यवायाभावात् । स्वाधिरुद्धमन्यतो ग्राह्यमिति च स्मरणात् । सौत्रमन्त्रेषु ऋग्भिन्नेषु तु भवत्येवोहः । सर्वेषु यजुर्निगदेषु प्रकृतौ समर्थनिगमेष्विति वचनात् । अथवा सौत्रमन्त्रा यवोऽसि सोमदेवत्य इत्यादयो ये परिशिष्टादाबूहितास्त एव तथैव पठनीयाः । अन्ये तु यथापाठमेव । पिण्डानुमन्त्रणादि पूर्ववदिति वृत्तिकृदुक्तेः । अत्र संकल्पे विशेषो निर्णयसिन्धौ—

शुभार्थी प्रथमान्तेन वृद्धौ संकल्पमाचरेत् ।

न पठ्या यदि वा कुर्यान्महादोषोऽभिजायते ॥ इति ।

अयं नियमः संकल्प एव । आसनादौ तु दर्शश्राद्धवत्तद्विमक्तयो-
ल्लेखः । विप्रनिमन्त्रणे द्वौ द्वौ विप्रौ युगपन्निमन्त्रयेदिति कमलाकरः । इदं
द्वितीयादिनिमन्त्रणपरम् । प्रथमं तु ब्राह्मणगृहे कर्तव्यत्वेन विहितत्वाद्युग-
पत्कर्तुमशक्यत्वात्पृथगेवेति प्रतिभाति । सति संभवे युगपन्निमन्त्रयेदिति ।
सर्वान्विप्रान्प्राङ्मुखानुपवेश्य स्वयमुदङ्मुखो भूत्वाऽर्चयेत् । यदि स्थल-
संकोचादिनोदङ्मुखा विप्राः स्युस्तदा स्वयं प्राङ्मुखो भूत्वाऽर्चयेत् । अत्र
वामकटिप्रदेशे नीवीबन्ध इति प्रागेवोक्तम् । सर्वाविप्रासनेषु दूर्वा दर्भा वा
दक्षिणभाग ऋजवः प्रागग्रा देयाः । आवहनमपि सर्वत्र दक्षिणाङ्गादिक्रमेण
पादादिशिरोन्तम् । सदा परिचरेद्भक्त्या पितृनप्यत्र देववदिति श्राद्धमयूखे

कात्यायनोक्तेः । देवेऽर्घ्यपात्रद्वयमिति शौनकः । जयन्तमत एकमेवा-
र्घ्यपात्रमासाद्य प्रथमविप्रकराग्रं द्वितीयविप्रकरे संस्थाप्य कराग्रेण पवि-
त्राग्रं तेन धारयित्वा सकृन्मन्त्रेण तन्त्रेणैवार्घ्यं दद्यात् । आश्वलायना-
नामर्घ्यराहितस्य देवार्चनस्य केषांचिदुक्तिसत्त्वेऽपि वृद्धिश्राद्धे देवेऽ-
र्घ्यं दद्यात् । देवेभ्योऽपि पृथग्दद्यादिहार्घ्यं स्मृतिचोदनादिति शौन-
कोक्तेः । पित्र्ये तु जयन्तमते प्रतिवर्गमेकैकमर्घ्यपात्रं संस्थाप्यैकैकमर्घ्यं
विगृह्य द्वाभ्यां द्वाभ्यां दद्यात् । मन्त्रास्तु नान्दीमुखे मातरिदं तेऽर्घ्यमि-
त्याद्येकवचनान्ता इति । गृह्यपरिशिष्टकारिकावृत्त्यनुसारेणार्घ्यदान-
विधिस्तु प्रयोगे वक्ष्यते । विंशतिब्राह्मणपक्षे प्रतिवर्गं त्रीणि त्रीणि
पात्राण्यासाद्य मात्रादीनां तत्तदर्घ्यं तत्तद्ब्राह्मणाभ्यां सकृत्सकृन्निवेद्य
प्रतिब्राह्मणं मन्त्रावृत्त्यैकैकमर्घ्यं विगृह्य द्वाभ्यां द्वाभ्यां दद्यात् । प्रथम-
विप्रकराग्रं द्वितीयविप्रकरे संस्थाप्य सकृदर्घ्यदानमिति केचित् । अत्रा-
र्घ्यपात्रं नाधोमुखं कुर्यादिति सिन्धौ । अत्र विप्रपाणावेवाग्नौकरण-
मिति वृत्तिकृत् । अग्नये कव्यवाहनाय स्वाहा । सोमाय पितृमते स्वाहेति
होममन्त्राविति स एव ।

शौनकोऽपि—अत्र स्वधानमःशब्दस्थाने स्वाहेत्युदीरयेत् ।

कारिकायां च—अग्नये कव्यवाहादिमन्त्रेण प्रथमाहुतिः ।

सोमायेति द्वितीया स्यात्तथाऽन्येषां च पाणिषु ॥

आभ्यामेव तु मन्त्राभ्यां द्वे द्वे हुत्वाऽऽहुती इह ।

एकैकामाहुतिं केचिद्विगृह्यैव प्रजुहति ॥

निर्णयसिन्धौ—अतो देवा इत्यद्गुष्ठग्रहणम् ।

मधु मध्विति यस्तत्र त्रिर्जपोऽशितुमिच्छताम् ।

गायत्र्यनन्तरं सोऽत्र मधुमन्त्रविधर्जितः ॥

न चाश्रत्सु जपेदत्र कदाचित्पितृसूक्तकम् ।

पठेच्छकुनिसूक्तं तु स्वस्तिसूक्तं शुभं तथा ॥

पावमानीः श्वतीरैन्द्रीरप्रतिरथं च श्रावयेदिति ।

शौनकः—तृप्तानथ द्विजाञ्ज्ञात्वा मधु वाता ऋतायते ।

इत्यादिकतृचस्थान उपास्मै गायता नरः ॥

पञ्चमक्षान्नित्येकामृचं चेति यथाक्रमम् ।

श्रावयित्वा तु संपन्नमिति पृच्छेद्विजानथ ॥

तेऽपि संपन्नमित्येवं ब्रूयुस्तृप्तिसमन्विताः ।

प्रकीर्यान्नं तु तेष्वग्रे विप्रानाचामयेत्ततः ॥ इति ।

एतन्मते वृद्धिश्राद्धे पिण्डदानात्पूर्वमेव प्रकीरणम् ।

यत्तु—आमश्राद्धे च वृद्धौ च प्रेतश्राद्धे तथैव च ।

विकिरं नैव कुर्वीत मुनिः कात्यायनोऽब्रवीत् ॥

इति वचनं तच्छाखान्तरविषयम् । चन्द्रिकायां वसिष्ठः—तृप्तिप्रश्ने तु संपन्नं देवे रुचितमित्यपि । रुचिरमिति क्वचित्पाठः । सुसंपन्नमिति प्रोक्ते शेषमन्नं निवेदयेदिति सिन्धौ । क्षिप्रमुच्छिष्टमार्जनमिति ब्रह्माण्डे ।

कारिकायां च—

संपन्नवचनादि स्यादाचान्तेषु द्विजन्मसु ।

अथ भुक्ताशयान्सम्यगोमयेनोपलेपयेत् ॥

तत्र प्रागग्रकान्दर्भानास्तृणाति ततः परम् ।

आदिशब्देन प्रकीरणं गृह्यते । एतस्मिन्नेव काले द्विजोच्छिष्टापनयन-विधानात्प्रकीरणस्योच्छिष्टसंबन्धादत्रैव प्रकीरणं युक्तमिति सिद्धम् । श्रावयित्वा च पृष्ठा च देवानां विकिरं चरेदित्याश्वलायनस्मृतिवचनाच्च । द्विजोच्छिष्टस्थानं गोमयेनोपलिप्य तत्रैव पिण्डदानं कार्यमिति कारिकाकारस्याऽऽशयः । वृत्तिकृतोऽपि तथैव । मोजनशालाया बहिः पिण्डदानं न तूच्छिष्टसमीप इति मयूख उक्तं तच्छासान्तरीयाणामेव ।

कारिकायाम्—

पृषदाज्येन संमिश्रं भुक्तशेषोद्धृतं मवेत् ।

एकैकस्योक्तमन्त्रेण द्वौ द्वौ पिण्डौ तु निर्वपेत् ॥

पृषदाज्यलक्षणमपि तत्रैव—पृषदाज्यं च कुर्वीत दध्यानयति सर्पिणि । इति ।

ब्राह्मे—शाल्यन्नं दधिमध्यक्तं बदराणि यवांस्तथा ।

मिश्रीकृत्वा तु चतुरः पिण्डाञ्छ्रीफलसंनिमान् ॥ इति ।

चतुर्विंशतिमते—

द्वौ द्वौ चाम्युदये पिण्डावैकैकस्मै विनिक्षिपेत् ।

एकं नाम्ना परं तूष्णीं दद्यात्पिण्डान्पृथक्पृथक् ॥ इति ।

एकैकस्मै मन्त्रावृत्त्या द्वौ द्वौ पिण्डाविति वृत्तिकृत । मन्त्रस्तु प्राकृत एव । नान्दीमुखेभ्यः पितृभ्यः स्वाहेति वा । पिण्डानुमन्त्रणादि कृता-कृतम् । अथानुमन्त्रणादि स्यात्तत्तु नेच्छन्ति केचनेति कारिकाक्तेः ।

ब्रह्मपुराणे—अथाक्षय्योदकस्थाने दत्त्वा क्षीरं यवोदकम् । इति ।

अक्षय्यस्थाने नान्दीमुखाः पितरः प्रीयन्तामिति कमलाकरः ।

ब्राह्मे—द्राक्षामलकमूलानि यवांश्च विनियोजयेत् ।

तान्येव दक्षिणार्थं तु दद्याद्विप्रेषु सर्वदा ॥ इति ।

स्वधां वाचयिष्व इत्यस्य स्थाने नान्दीमुखान्पितृन्वाचयिष्य इति कमलाकरोक्तिः ।

कात्यायनः—त्यमूषुवाजिनमिति विप्रांश्चैव विसर्जयेत् ।

ॐ स्वधोच्यतामित्यस्य स्थाने ॐ संपन्नमिति वृत्तिकृत् । ततः श्राद्धशेषं समाप्य माता पितामही चैवेति श्लोकद्वयं पठेत् । तत्तत्पार्वणाद्यजीवनवशेन यस्य कस्यचित्पार्वणस्य लोपे तत्तत्पार्वणविषयकश्लोकैकदेशस्य लोपः । केवलमातृपार्वणश्राद्धकरणपक्ष एता भवन्त्वित्यूहः । अत्र श्राद्धाङ्गुत्तर्पणं नेति निर्णयसिन्धौ । केचित्केवलजलेनैव नान्दीमुखां मातरं तर्पयामीत्येवं तर्पणं कार्यमित्याहुः । अस्मिन्श्राद्ध आदावन्ते वा वैश्वदेवः कर्तव्यः । आदौ करणपक्षे विप्रनिमन्त्रणानन्तरं तत्पूर्वं वा भिन्नपाकेन । बह्वृचानां तु श्राद्धान्ते श्राद्धशेषेण वैश्वदेवः । साग्नेर्निरग्नेश्च समानमेवेति कमलाकरः । अत्र कर्तुर्भोक्तुश्च ब्रह्मचर्यादिनियमा न सन्ति । तदुक्तं धर्मप्रदीपे—

आमे हैमे तथा नित्ये नान्दीश्राद्धे तथैव च ।

व्यतीपातादिके श्राद्धे नियमान्परिवर्जयेत् ॥ इति ।

एतच्च नान्दीश्राद्धं मातृपूजापूर्वकं कार्यम् । मातरस्तु द्विविधाः—मानुष्यो दैव्यश्च । तत्र मानुष्यो मातृपितामहीप्रपितामहीमातामहीमातुःपितामहीमातुःप्रपितामहीपितृष्वसृमातृष्वसार इत्यष्टौ । आसां जीवने प्रत्यक्षपूजनम् । मृतानां त्वक्षतपुञ्जेष्विति हेमाद्रिः । दैव्यस्तु गौर्याद्याः षोडश ब्राह्म्याद्याश्च सप्तैवेवं त्रयोविंशतिः । एता दुर्गा क्षेत्रपालं गणाधिपं च पूजयेत् । गौर्याद्याश्चतुर्दशेति केचिद्ददन्ति तत्पक्षे मातरो लोकमातर इति सर्वविशेषणम् । षोडशपक्षे देवतान्तरम् । कौस्तुभे तु ब्राह्म्याद्या महालक्ष्म्या सहाटावित्युक्तम् । प्रयोगरत्नादौ कार्तीयगृह्याद्यनुसारेण वसोर्धारापूजनमायुष्यसूक्तजपश्च विहितः । स तच्छास्त्रीयानां नियतः । अन्येषां त्वनियतः । करणे त्वभ्यु-

दय इति कमलाकरः । कौस्तुभेऽप्येवमेव । एतेषु पक्षेषु यथाऽऽचार-
स्तथा कर्तव्यम् । मातृकापूजनानन्तरं मातृकाप्रीतये युग्मान्ब्राह्मणान्भो-
जयेत् । आमान्नानि वा दद्यात् । नान्दीश्राद्धब्राह्मणभोजनेन सह वा
ब्राह्मणभोजनम् । प्रयोगरत्न आमश्राद्धप्रयोगे तथैव दर्शनात् । अपि
वा पूजैव कार्या ।

पुण्यैर्धूपैः सनैवेद्यैर्गन्धाद्यैर्भूपणैरपि ।

पूजयित्वा मातृगणं कुर्याच्छ्राद्धत्रयं बुधः ॥

इति कौर्मोक्तेः । यत्र प्रधानकर्माङ्गत्वेन पुण्याहवाचनं नान्दीश्राद्धं
च विहितं तत्र गणपतिपूजनपूर्वकं पुण्याहवाचनं कृत्वा मातृकापूजन-
पूर्वकं नान्दीश्राद्धं कुर्यात् । यत्र तु बौधायनेन श्रौतकर्माङ्गत्वेन कर्मा-
हात्पूर्वेद्युर्नान्दीश्राद्धमेव विहितं तत्र नान्दीश्राद्धाङ्गत्वेन पुण्याहवाचनं
कृत्वा मातृकापूजनपूर्वकं नान्दीश्राद्धं कुर्यात् । केचित्पुण्याहवाचनं विनैव
मातृकापूजनपूर्वकं नान्दीश्राद्धमेव कुर्वन्ति । श्राद्धत्रयरूपपक्षेऽपि
सकृदादौ मातृकाः संपूज्य श्राद्धत्रयान्ते विसर्जयेत् । कर्ता स्वमातरि
जीवन्त्यां पित्रादित्रयाणां मातामहादित्रयाणां वृद्धिश्राद्धं कुर्यात् ।
जीवेत्तु यदि वर्गाद्यस्तं वर्गं तु परित्यजेदिति वचनात् । पितरि जीवति
मात्रादित्रयाणां मातामहादित्रयाणां कुर्यात् । उभयोर्जीवत्त्वे माताम-
हवर्गस्यैव । जीवत्पिता सुतसंस्कारे मातृमातामहयोः कुर्यात्तस्यां
जीवन्त्यां मातामहस्यैवेति बह्वृचपरिशिष्टात् । मातामहे जीवति मातृ-
पितृवर्गयोः कुर्यात्त्रिष्वपि जीवत्सु पितुर्मात्रादीनामेव । पितामहे
जीवति पितृप्रपितामहवृद्धप्रपितामहानां कुर्यात् । एवं पितामह्यां
जीवन्त्यां मातुः पितामहे जीवति च ज्ञेयम् । केचित्पितरि जीवति पितु-
र्मात्रादिवर्गत्रयस्य कुर्यादित्याहुः । कर्तृनिर्णयादिविशेषस्तु ग्रन्थान्त-
रतोऽवगन्तव्यः । विस्तरभयान्नेहोच्यते । इति नान्दीश्राद्धविधिः ।

अथाष्टब्राह्मणपक्षमाश्रित्य पिण्डदानसहितस्तन्त्रेण नान्दीश्राद्धप्र-
योगः । तत्राऽऽदौ कर्ता सपत्नीकः कृतमाङ्गलिकस्नानो धौतवासाः
सालंकृतः करिष्यमाणकर्माङ्गत्वेन गणपतिपूजनपूर्वकं पुण्याहवाचनं
कृत्वा नान्दीश्राद्धाङ्गत्वेन मातृकापूजनं कुर्यात् । तच्चेत्थम्—गोमयो-
पलिप्ते रङ्गवह्न्यादिभिरलंकृते श्राद्धस्थले प्रतिमास्वक्षतपुञ्जेषु वा ।
ॐ गौर्यै नमः । गौरीमावाहयामि ॥ १ ॥ एवं सर्वत्र । ॐ पद्मायै नमः ।
२ ॐ शचर्यै ० ३ ॐ मेधायै ० ४ ॐ सावित्र्यै ० ५ ॐ विजयायै ० ६
ॐ जयायै ० ७ ॐ देवसेनायै ० ८ ॐ स्वधायै ० ९ ॐ स्वाहायै ०

१० ॐ मातृभ्यो० ११ ॐ लोकमातृभ्यो० १२ ॐ धृत्यै० १३ ॐ पुष्ट्यै० १४ ॐ तुष्ट्यै० १५ ॐ कुलदेवतायै० १६ ॐ ब्राह्म्यै० १७ ॐ माहेश्वर्यै० १८ ॐ कौमार्यै० १९ ॐ वैष्णव्यै० २० ॐ वाराह्यै० २१ ॐ इन्द्रायै० २२ ॐ चामुण्डायै० २३ ॐ दुर्गायै० २४ ॐ क्षेत्रपालाय० २५ ॐ गणपतये नमः । २६ इति पञ्चविंशतिदेवता आवाह्य षोडशोपचारैः पूजयेत् । ततो मातृकाप्रीतये युग्मान्ब्राह्मणान्भोजयेदामान्नानि वा दद्यात् । इति मातृकापूजनम् ।

अथ नान्दीश्राद्धम् । कर्ता यज्ञोपवीती प्राङ्मुख आचम्य पवित्रपाणिः प्राणानायम्य देशकालौ संकीर्त्य दक्षिणं जान्वाच्य मातृपितामहीप्रपितामह्यः, नान्दीमुखाः पितृपितामहप्रपितामहा नान्दीमुखाः, मातामहमातुःपितामहमातुःप्रपितामहाः सपत्नीका नान्दीमुखाः, एतानुद्दिश्य करिष्यमाणामुक्ककर्माङ्गत्वेन विहितं सदैवं सपिण्डमन्त्रेण हविषा नान्दीश्राद्धमद्य करिष्य इति संकल्प्य ब्राह्मणान्निमन्त्रयेत् । स्वयमुदङ्मुखः प्राङ्मुखोपविष्टस्य विप्रस्य दक्षिणं जानुं स्पृष्ट्वा, अस्मिन्नान्दीश्राद्धे सत्यवसुसंज्ञकानां विश्वेषां देवानां नान्दीमुखानां स्थाने त्वया क्षणः करणीयः । ॐ तथेति विप्रः । एवं द्वितीयस्य । इति वैश्वदेवार्थे द्वौ निमन्त्रयेत् । सर्वत्रेष्टिश्राद्धे कर्माङ्गश्राद्धे च क्रतुदक्षसंज्ञकानां विश्वेषां देवानां नान्दीमुखानामुल्लेखः । अस्मिन्नान्दीश्राद्धे नान्दीमुखानां मातृपितामहीप्रपितामहीनां स्थाने त्वया क्षणः करणीयः । ॐ तथेति । मातृवर्गे द्वौ निमन्त्रयेत् । अस्मिन्नान्दीश्राद्धे नान्दीमुखानां पितृपितामहप्रपितामहानां स्थाने त्वया क्षणः करणीयः । इति पितृवर्गे द्वौ । अस्मिन्नान्दीश्राद्धे नान्दीमुखानां मातामहमातुःपितामहमातुःप्रपितामहानां सपत्नीकानां स्थाने त्वया क्ष० । इति मातामहवर्गे द्वौ निमन्त्रयेत् । एवमष्टौ ब्राह्मणान्निमन्त्रयेत् । ततः काले निमन्त्रितान्विप्रान्समाहूय तेषां मङ्गलस्रानादि कारयित्वा स्वयमाचम्य प्राणानायम्य देशकालौ संकीर्त्य मातृपितामहीप्रपितामह्यः, नान्दीमुखा इत्यादि प्रथमया विमक्त्या पूर्ववदुच्चार्य, एतानुद्दिश्योपक्रान्तं नान्दीश्राद्धं करिष्य इति संकल्प्य यधोदकं कृत्वा पवित्रमन्त्रान्पठित्वा शुची वो हव्या इत्यादिभिर्यधोदकमभिमन्त्रयोपकल्पितान्यदार्थान्यधोदकेन प्रोक्ष्य विप्राणामग्रे ब्रह्मदण्डार्थं हिरण्यं निधाय सम-

स्तसंपदित्यादि तान्प्रदक्षिणीकृत्य नान्दीश्रान्द्धं कर्तुं ममाधिकारसंपद-
 स्त्विति भवन्तो ब्रुवन्तु । अस्तु नान्दीश्रान्द्धाधिकारसंपत् । ततः प्रत्येकं
 भवतः स्वागतम् । इति प्रब्रूयात् । सुस्वागतमिति प्रतिवचनम् । ततः
 पूर्ववत्पुनर्विप्रान्निमन्त्रयेत् । तत्रायं विशेषः—अस्मिन्नान्दीश्रान्द्धे सत्य-
 वसुसंज्ञकानां० नान्दीमुखानां स्थाने युवाभ्यां क्ष० यः । इति द्वौ युगप-
 दुक्ते प्राप्नुतां भवन्ताविति वदेत् । प्राप्नवावेति विप्रौ । एवं मात्रादीनां
 स्थाने द्वौ युगपन्निमन्त्रयेत् । ततः पाद्यार्थं चतुरस्रं मण्डलद्वयं निर्माय
 तयोः प्रागग्रान्दूर्वाङ्कुरान्दर्मान्वाऽऽस्तीर्य गन्धपुष्पयवैरभ्यर्च्य प्राङ्मु-
 खोपविष्टयोर्दिविकविप्रयोः पादान्मण्डले निधाय सत्यवसुसंज्ञका विश्वे
 देवा नान्दीमुखा इदं वः पाद्यं स्वाहा नम इति घृताक्तपादेषु युगप-
 द्विर्यवोदकं दत्त्वा शं नो देवीरिति क्रमेण पादान्प्रक्षाल्याभिवन्देत् ।
 एवमेव द्वितीयमण्डले द्वयोर्द्वयोर्युगपत् । मातृपितामहीप्रपितामहाः,
 नान्दीमुखा इदं वः पाद्यं स्वाहा नमः । पितृपितामहप्रपितामहा नान्दी-
 मुखा इदं वः पाद्यं स्वाहा नमः । मातामहमा० प्रपितामहाः सपत्नीका
 नान्दीमुखा इदं वः पाद्यं स्वाहा नमः । ततो मण्डलादुत्तरतो ब्राह्मणा-
 न्द्विराचमय्य (चाप्य) स्वयं पादौ प्रक्षाल्याऽऽचम्य पवित्रे धृत्वा ब्राह्मणैः
 सह श्रान्द्धमूमिमागत्याऽऽसनान्युपकल्प्य भूर्भुवः स्वः समाध्वमिति
 प्रत्येकं वदन्सर्वान्प्राङ्मुसानुपवेशयेत् । ततः प्रतिपात्रं घृतदीपं स्थाप-
 यित्वा वामकटिप्रदेशे सयवकुशसहितनीवीं बद्ध्वाऽऽचम्य देशकालौ
 स्मृत्वा पूर्ववन्मात्रादीन्प्रथमयोऽह्निर्येतानुद्दिश्य प्रक्रान्तं नान्दीश्रान्द्धं
 करिष्ये, अपहता असुरा र० मनः । इति प्रदक्षिणं यवानवकीर्य
 यवा रक्षन्त्वसुरान्दर्भा० रक्षकः । इति द्वारदेशे कुशयवान्प्रक्षिप्य
 तद्विष्णोः परमं० ततम् । इति मन्त्रेण गायत्र्या चान्नानि संप्रोक्ष्य
 पाकादीनां पवित्रताऽस्तु इत्युक्त्वा तथाऽस्त्विति प्रत्युक्ते देवार्चनं
 कुर्यात् । देवविप्रहस्तयोरपो दत्त्वा सत्यवसुसंज्ञकानां विश्वेषां देवानां
 नान्दीमुखानामिदमासनमित्युक्त्वा प्रत्येकमासनं दत्त्वाऽपो दद्यात् । ततः
 प्रत्येकमासनं संस्पृश्यात्राऽऽस्यतामिति वदेत् । धर्मोऽसीति प्रत्युक्ते
 विप्रयोर्निरङ्कुष्ठौ दक्षिणहस्तौ धृत्वा नान्दीमुखदेवे क्षणः(णौ?) क्रिये-
 तामिति सकृदुक्त्वा ॐ तथेति विप्राभ्यां युगपदुक्ते प्राप्नुतां भव-
 न्ताविति तृतीयनिमन्त्रणं कुर्यात् । प्राप्नवावेति विप्रौ युगपद्दे-

ताम् । ततः प्रागग्रेषु दूर्वाङ्कुरेषु दर्भेषु वाऽर्घ्यपात्रद्वयमासाद्य प्रोक्ष्योत्तानं कृत्वा पवित्रे निधायप आसिच्य शं नो देवीरिति सकृदनुमन्त्र्य यवोऽसीति मन्त्रावृत्त्या यवानोप्य गन्धपुष्पादि क्षिप्त्वा देवपात्रे संपन्ने इत्यमिमृश्य सुसंपन्ने इति प्रत्युक्तो यवानादाय नान्दीमुखान्विश्वान्देवानावाहयिष्यामि । विश्वे देवास० दत्त । इति विप्रयोः क्रमेण दक्षिणपादादियुग्मक्रमेण पादजान्वंसशिरःसु यवानवकीर्य विश्वे देवाः शृणुते० मादयध्वम् । आगच्छन्तु महाभागा० तु ते । इति सकृदुपस्थाय स्वाहाऽर्घ्या इति मन्त्रावृत्त्या निवेद्य हस्तयोरपो दत्त्वा प्रथमविप्रहस्ते पवित्रं निधाय प्रथममर्घ्यपात्रादर्घ्यमादाय सत्यवसु० विश्वे देवा नान्दीमुखा इदं वोऽर्घ्यमिति दत्त्वा या दिव्या आप इति स्रवन्तीरनुमन्त्र्यापो दद्यात् । एवमेव द्वितीयमर्घ्यपात्राद्वितीयविप्रहस्ते दद्यात् । ततः सत्यवसु० देवा नान्दीमुखा अमी वो गन्धाः स्वाहा नमो न मम । गन्धद्वारां० आयने ते० धूरसि० उद्दीप्यस्व० युधं वस्त्राणि० इति मन्त्रैर्गन्धपुष्पधूपदीपाच्छादनानि द्विर्द्विर्दत्त्वा पुष्पमालाभिर्भूपयित्वा युवा सुवासा इत्युक्त्वाऽर्चनविधेः संपूर्णतां वाचयित्वा ताभ्यामनुज्ञातः पित्रर्चनं कुर्यात् । अपो दत्त्वा नान्दीमुखानां मातृपितामहीप्रपितामहीनामिदमासनम् । इति सकृदुक्त्वा मन्त्रावृत्त्या बोभयोः क्रमेण दक्षिणभागे सयवान्युग्मान्प्रागग्रानृजून्दूर्वाङ्कुरान्दर्भान्वा दत्त्वाऽपो दद्यात् । एवमुत्तरत्र नान्दीमुखानां पितृपितामहप्रपितामहानामिदमासनम् । नान्दीमुखानां मातामहमातुःपितामहमातुःप्रपितामहानां सपत्नीकानामिदमासनमित्यूहः । ततोऽत्राऽऽस्येतामित्यादि तृतीयनिमन्त्रणान्तं द्वयोर्द्वयोर्वैश्वदेववत् । नान्दीमुखपित्र्ये क्षणः (णौ?) क्रियेतामिति विशेषः । ततोऽभ्युक्षितायां भुवि प्रागग्रेषु दर्भेषु प्रतिवर्गं त्रीणि त्रीणि पात्राणि प्राक्मंस्थान्यासाद्य प्रोक्ष्योत्तानीकृत्य दर्भद्वयात्मकानि प्रागग्राणि पवित्राणि निधायप आसिच्य शं नो देवीरिति सकृदनुमन्त्र्य

यवोऽसि सोमदेवत्यो गोसवे देवनिर्मितः ।

प्रत्वन्दिः प्रतः पुष्ट्या नान्दीमुखान्वितृनिमाल्लोकान्प्रीणयाहि नः स्वाहा । इति मन्त्रावृत्त्या यवानोप्य गन्धपुष्पादि क्षिप्त्वाऽर्घ्यपात्राणि सपन्नानीत्युक्त्वा यवानादाय नान्दीमुखान्वितृनावाहयिष्यामीत्युक्त्वाऽऽवाहयेति प्रत्युक्तो मातृपितामहीप्रपितामहीनान्दीमुखा आवाहयामीति दक्षिणाङ्गादिक्रमेण पादजान्वंसशिरःसु यवानवकीरेत् । इति द्वयोर्यु-

गपदावृत्त्याऽऽवाहनम् । एवमुत्तरत्र । पितृपितामहप्रपितामहान्नान्दीमु-
सानावाहयामि । मातामहमातुःपितामहमातुःप्रपितामहान्सपत्नीकान्ना-
न्दीमुसानावाहयामि, इत्यावाह्य त्रीणि त्रीण्यर्घ्यपात्राणि तत्तद्ब्राह्मण-
योरग्रे निधाय क्रमेण द्वाभ्यां द्वाभ्यां विप्राभ्यां त्रीणि त्रीणि निवेदयेत् ।
तत्र मन्त्राः—नान्दीमुखा मातरः प्रीयन्ताम् । नान्दीमुखाः पितामह्यः
प्रीयन्ताम् । नान्दीमुखाः प्रपितामह्यः प्रीयन्ताम् । नान्दीमुखाः पितरः
प्रीयन्ताम् । नान्दीमुखाः पितामहाः प्रीयन्ताम् । नान्दीमुखाः प्रपिता-
महाः प्रीयन्ताम् । नान्दीमुखाः सपत्नीका मातामहाः प्रीयन्ताम् ।
नान्दीमुखाः सपत्नीका मातुःपितामहाः प्रीयन्ताम् । नान्दीमुखाः सप-
त्नीका मातुःप्रपितामहाः प्रीयन्ताम् । ततो मातृवर्गविप्रहस्तयोरपो दत्त्वा
प्रथमविप्रहस्ते प्रथमार्घ्यपात्रस्थं पवित्रं निधाय प्रथमपात्रार्घ्यमर्घ्यमा-
दाय देवतीर्थेन नान्दीमुखा मातर इदं वोऽर्घ्यमिति दत्त्वा या दिव्या
इत्यनुमन्त्रय तत्पवित्रं द्वितीयब्राह्मणहस्ते निधायवशिष्टमर्घ्यं नान्दी-
मुखा मातर इदं वोऽर्घ्यमिति सशेषं दत्त्वा या दिव्या इत्यनुमन्त्रयोभयो-
रपो दद्यात् । एवमेव द्वितीयपात्रस्थमर्घ्यं नान्दीमुखाः पितामह्य इदं
वोऽर्घ्यमिति मन्त्रावृत्त्या ताभ्यामेव विप्राभ्यां विगृह्य दद्यात् । तथैव
तृतीयं नान्दीमुखाः प्रपितामह्य इदं वोऽर्घ्यमिति मन्त्रावृत्त्या ताभ्यामेव
दद्यात् । ततः पितृवर्गार्थान्यर्घ्याणि तद्ब्राह्मणाभ्यां पूर्ववदेकैकं विगृह्य
विगृह्य दद्यात् । तत्र मन्त्राः—नान्दीमुखाः पितर इदं वोऽर्घ्यम् ।
नान्दीमुखाः पितामहा इदं वोऽर्घ्यम् । नान्दीमुखाः प्रपितामहा इदं
वोऽर्घ्यम् । तथैव मातामहवर्गार्थानि तद्ब्राह्मणाभ्यां दद्यात् । तत्र
मन्त्राः—नान्दीमुखाः सपत्नीका मातामहा इदं वोऽर्घ्यम् । नान्दीमुखाः
सपत्नीका मातुःपितामहा इदं वोऽर्घ्यम् । नान्दीमुखाः सपत्नीका मातुः
प्रपितामहा इदं वोऽर्घ्यम् । ततः संस्रवान्समरणीय ताभिरग्निः पुत्रकामो
सुरमनक्ति । ततो नान्दीमुखेभ्यः पितृभ्यः स्थानमसीति प्रथमपात्रं
निधाय तृतीयपात्रेणापिदद्यात् । ततो वैश्वदेववद्गन्धाद्युपचारान्पुष्प-
मालाश्च दत्त्वाऽर्चनविधेः संपूर्णतां वाचयित्वा भोजनपात्रस्थापनार्थं
सर्वाणि चतुरस्राणि मण्डलानि कृत्वा सयवान्दर्मान्प्रास्य भोजनपा-
त्राणि संस्थाप्य पग्निं देववद्भस्ममर्यादां कृत्वा करशुद्ध्यादि विधाय
घृताक्तमन्नमादाय मातृवर्गप्रथमब्राह्मणहस्ते दर्मानन्तर्थायावदानधर्मेण
पाणिनाऽऽदाय, अग्रये कव्यवाहनाय स्वाहा । अग्रये कव्यवाहनायेदं०
इति प्रथमाहुतिं हुत्वा पूर्ववद्वदाय सोमाय पितृमते स्वाहा । सामाय

पितृमत इदं० इति द्वितीयां जुहुयात् । एवमेव द्वितीयादि सर्वेषां
 पाणिषु जुहुयात् । ब्राह्मणाः स्वस्वपाणिस्थमन्नं स्वस्वपात्रे संस्थाप्य
 बहिर्गत्वाऽऽचम्य यथास्थानमुपविशेयुः । कर्ता मूर्धानं दिवो० देवाः ।
 आमासु० त् । इति भोजनपात्राण्याज्येनोपस्तीर्यान्नानि परिवेष्य पित्र्ये
 हुतशेषं च दत्त्वाऽन्ननिवेदनं कुर्यात् । देवपात्रस्थमन्नं सावित्र्याऽभ्युक्ष्य
 तूष्णीं परिपिच्येत्यादिपात्रालम्भनान्तं कृत्वा पृथिवी ते पात्रं० अत्रा-
 मुष्मिँल्लोक इत्यभिमन्त्र्य, अतो देवा अवन्तु नो० धामभिः । विष्णो
 हव्यं रक्षस्वेति विप्राङ्गुठमन्त्रे निवेश्य सव्यपाणिना पात्रमालभ्य दक्षि-
 णेन यवोदकमादाय सत्यवसुसंज्ञकेभ्यो विश्वेभ्यो देवेभ्य इदमन्नममृत-
 रूपं परिविष्टं परिवेक्ष्यमाणं चाऽऽ तृप्तेः स्वाहा हव्यं नमो न ममेति जलं
 क्षिपेत् । एवं द्वितीयान्नं निवेदयेत् । अथवोभयोस्तन्त्रेण ये देवास्तो०
 जुषध्वम् । इत्युपतिष्ठेत् । एवं पित्र्येऽपि देवघत् । तत्र विशेषः--मातृ-
 पितामहीप्रपितामहीभ्यो नान्दीमुखेभ्य इदमन्नममृतरूपं० पितृपितामह-
 प्रपितामहेभ्यो नान्दीमुखेभ्य इदमन्नं० मातामहमातुःपितामहमातुःप्रपि-
 तामहेभ्यः सपत्नीकेभ्यो नान्दीमुखेभ्य इदमन्नं० इत्यन्नं निवेद्य नान्दी-
 मुखाः पितरः प्रीयन्तामित्युपतिष्ठेत् । ततः सप्रणवव्याहृतिकां सावित्रीं
 जपित्वा ब्रह्मार्पणं० समाधिना । हरिर्दाता० हरिः । चतुर्भिश्च० दत्तु ।
 एको विष्णु० व्ययः । अनेन नान्दीश्राद्धे ब्राह्मणभोजनेन भगवान्नान्दी-
 मुखपितृस्वरूपी श्रीपरमेश्वरः प्रीयताम् । वृद्धिरस्तु । आपोशनार्थमुदकं
 दत्त्वा प्राणाहुतिमन्त्रान्पठेत् । विप्राश्च बलिदानवर्जमुक्तभोजननियम-
 युक्ता भुञ्जीयुः । कर्ता, अपेक्षितं० मानसैः । यथासुखं जुषध्वम् । इत्युक्त्वा
 सव्याहृतिकां गायत्रीं जप्त्वा (पित्वा) भुञ्जानाञ्शकुनिसूक्तं स्वस्ति-
 सूक्तं पावमानीः शंभतीरैन्द्रीरप्रतिरथं च श्रावयेत् । न पितृसूक्तम् ।
 शकुनिसूक्तं कनिक्रददित्यादि । स्वस्तिसूक्तं स्वस्ति नो मिमीतामित्यादि ।
 पावमान्यः स्वादिष्टयेत्याद्याः । शंभत्यः शं न इन्द्राग्नी इत्याद्याः ।
 ऐन्द्र्यः सुरूपकृत्नुमूतय इत्याद्याः । अप्रतिरथमाशुः शिशान इति
 सूक्तम् । तृप्तेषु सिद्धस्य हविषो मध्ये यद्भोचते तद्याचध्वम् । इत्यु-
 क्त्वाऽलमिति विप्रैरुक्त उपास्मै गायता नरः० वता मधु । ऋक् ५ अक्ष-
 न्नामीमदन्त० हरी । इति पङ्कचः श्रावयित्वा सत्यवसुसंज्ञका विश्वे
 देवा नान्दीमुखा रुचितमिति पृष्ठा सुरुचितमिति प्रत्युक्ते नान्दी-
 मुखाः पितरः संपन्नम् । सुसंपन्नमिति प्रत्युक्ते शेषमन्नं किं क्रियतामिति
 वदेत् । विप्रा ईष्टः मह भुज्यतामिति वदेयुः । स्वीकारपक्षे म्यी कुर्युः ।

तत एतस्मिन्नेव काले पूर्वोद्धृतं सार्ववणिकमन्त्रं द्विजोच्छिष्टसमीपे प्रकि-
रेत् । असोमपाश्च० देविकम् । इति देवे ।

ये कुमारा याः कुमार्यो ये च गर्भाद्विनिःसृताः ।

तेषामन्नमिदं प्रैत्तं तृप्यन्तु च मुदन्तु च ॥

इति पित्र्ये । तत उच्छिष्टभाग्भ्योऽन्नं दीयतामित्यादि विप्रैरुत्तरापो-
शनगण्डूपकरणहस्तप्रक्षालनादिशुद्ध्याचमनान्तं कारयित्वा द्विजोच्छि-
ष्टपात्राणि निष्कृश्य शुद्धभूमौ निखाय भुक्ताशयान्सम्यग्गोमयेनोपलिप्य
तत्र पिण्डदानं कुर्यात् । तद्यथा—अपहता०दिपदः । इति मन्त्रावृत्त्या
प्रागग्रा उदक्संस्थास्तिस्रो लेखा उल्लिख्याभ्युक्ष्य तासु क्रमेण प्रागग्रं
बर्हित्रयमासाद्य प्रथमलेखां त्रिरुदकेनोपनयेत् । शुन्धन्तां नान्दीमुखा
मातरः । शुन्धन्तां नान्दीमुखाः पितामहाः । शुन्धन्तां नान्दीमुखाः प्रपि-
तामहाः । ततो द्वितीयलेखायाम्—शुन्धन्तां नान्दीमुखाः पितरः ।
शुन्धन्तां नान्दीमुखाः पितामहाः । शुन्धन्तां नान्दीमुखाः प्रपितामहाः ।
ततस्तृतीयलेखायाम्—शुन्धन्तां नान्दीमुखाः सपत्नीका मातामहाः ।
शुन्धन्तां नान्दीमुखाः सपत्नीका मातुःपितामहाः । शुन्धन्तां नान्दी-
मुखाः सपत्नीका मातुःप्रपितामहाः । ततः पृषदाज्यदधिमधुबदरयवमि-
श्रितशाल्यन्नेन श्रीफलसंनिभानष्टादश पिण्डान्कुर्यात् । केवलपृषदाज्य-
मिश्रितान्नेन वा । सर्पिषि दध्यानयति तत्पृषदाज्यम् । एतत्ते नान्दीमुखे
मातर्ये च त्वामत्रानु तेभ्यश्चेति मन्त्रेण देवतीर्थेन मात्रे पिण्डं दत्त्वा
पुनर्मन्त्रावृत्त्या द्वितीयं दद्यात् । एवमग्रेऽपि । एतत्ते नान्दीमुखे पितामहि
ये च त्वामत्रानु तेभ्यश्च । एतत्ते नान्दीमुखे प्रपितामहि ये च त्वामत्रानु
तेभ्यश्च । एतत्ते नान्दीमुखे पितर्ये च त्वा०भ्यश्च । एतत्ते नान्दीमुखे पिता-
मह ये च त्वाम०भ्यश्च । एतत्ते नान्दीमुखे प्रपितामह ये च त्वा०भ्यश्च ।
एतत्ते नान्दीमुखे सपत्नीक मातामह ये च०भ्यश्च । एतत्ते नान्दीमुखे सप-
त्नीक मातुःपितामह ये च०भ्यश्च । एतत्ते नान्दीमुखे सपत्नीक मातुः-
प्रपितामह ये च०भ्यश्च । एवं क्रमेण बर्हित्रय एकैकस्मिन्पट्ट पट्ट पिण्डा-
न्दद्यात् । ततोऽत्र नान्दीमुखाः पितरो मादयध्वम् । यथाभागमावृषाव-
ध्वमित्यनुमन्त्र्य सव्यावृद्धुदङ्गावृत्त्य यथाशक्त्यप्राणनासित्वा, अमी-
मदन्त० नान्दीमुखाः पितरो यथाभागमावृषायीपत । इति पुनरनुमन्त्र्य

न्दीश्राद्धे सत्यवसुसंज्ञकानां क्रतुदक्षसंज्ञकानां वा विश्वेषां देवानां नान्दीमुखानां स्थाने त्वया क्षणः करणीयः । ॐ तथेति प्रतिवचनम् । इति वैश्वदेवार्थं द्वौ निमन्त्रयेत् । अस्मिन्नान्दीश्राद्धे नान्दीमुखानां मातृपितामहीप्रपितामहीनां स्थाने त्वया क्षणः करणीय इति द्वौ मातृवर्गे । एवं पितृवर्गे मातामहवर्गे च द्वौ द्वौ निमन्त्रयेत् । ततः काले निमन्त्रितान्समाहूय तेषां मङ्गलस्नानपाद्याचमनानि विधाय नान्दीमुखसत्यवसुसंज्ञकवैश्वदेवस्वरूपाविति ध्यायन्द्वौ प्राङ्मुखानुपवेश्य ममैते नान्दीमुखा मात्राद्याः पितर इति ध्यायन्पद् प्राङ्मुखानुपवेशयेत् । तत आचम्य प्राणानायम्य देशकालौ संकीर्त्य मातृपितामहीप्रपितामह्यो नान्दीमुखा इत्यादि प्रथमया विभक्त्या पूर्ववदुच्चार्यैतानुद्दिश्योपक्रान्तं नान्दीश्राद्धं करिष्य इति संकल्प्य कुरुष्वेति प्रत्युक्तः, तद्विष्णोः परमं० राततम् । इति मन्त्रेण गायत्र्या च पाकप्रोक्षणं विधाय देवार्चनं कुर्यात् । सर्वत्राऽऽसनाद्याच्छादनान्तेपूपचारेष्वाद्यन्तयोरपो दद्यात् । सत्यवसुसंज्ञकानां विश्वेषां देवानां नान्दीमुखानामिदमासनमिति दक्षिणभाग ऋजून्दर्भानुभयोर्दत्त्वा प्रागग्रेषु दर्भेषु पात्रद्वयमासाद्य प्रागग्राणि दर्भद्वयात्मकानि पवित्राणि निधायप आसिच्य शं नो देवीरिति सकृदनुमन्त्र्य यवोऽसि धान्यराजो वेति मन्त्रावृत्त्या यवानोप्य गन्धादि क्षिप्त्वा देवपात्रे संपन्ने इत्यभिमृश्य विश्वान्देवान्नान्दीमुखानावाहयिष्यामीत्युक्त्वा विश्वे देवास० दत् । सत्यवसुसंज्ञकान्विश्वान्देवान्नान्दीमुखानावाहयामीति सकृदुक्त्वोभयोः क्रमेण दक्षिणपादादियुग्मक्रमेण पादजान्वंसशिरःसु यवानवकीर्य विश्वे देवाः शृणु० यध्वम् । आगच्छन्तु महा० तु त इति सकृदुपस्थाय स्वाहाऽर्घ्या इति मन्त्रावृत्त्या निवेद्य सत्यवसुसं० नान्दीमुखा इदं वोऽर्घ्यमित्यर्घ्यं दत्त्वा या दिव्या इत्यनुमन्त्रयेत् । एवं द्वितीये । ततः सत्यवसु० देवा नान्दीमुखा अभी वो गन्धाः स्वाहा नमो न मम । एवं पुष्पधूपदीपाच्छादनानि दत्त्वाऽर्चनविधेः संपूर्णतां वाचयित्वा ताभ्यामनुज्ञातः पित्रर्चनं कुर्यात् । तत्र सर्वत्र यज्ञोपवीत्येव वैश्वदेवार्चनधर्मेण । विशेषस्तूच्यते । नान्दीमुखानां मातृपितामहीप्रपितामहीनामिदमासनमिति सकृदुक्त्वोभयोः क्रमेणाऽऽसनं दद्यात् । एवमुत्तरत्र । नान्दीमुखानां पितृपितामहप्रपिताहानामिदमासनम् । नान्दीमुखानां मातामह० प्रपितामहानां सपत्नीकानामिदमासनमित्यूहः । ततो

नवाद्यपात्राण्यासाद्य पवित्राणि निधायाप आसिच्य शं नो देवीरिति
सकृदनुमन्त्र्य यवोऽसि सोमदेवत्यो गोसवे देवनिर्मितः । प्रत्नवद्भिः
प्रत्तः पुष्ट्या नान्दीमुखान्पितृनिमाँल्लोकान्प्रीणयाहि नः स्वाहेति प्रति-
पात्रं मन्त्रावृत्त्या यवानोप्य गन्धादि क्षिप्त्वा पात्राणि तत्तद्विप्राग्ने निधाय
द्वाभ्यां द्वाभ्यां त्रीणि निवेदयेत् । तत्र मन्त्राः—नान्दीमुखा मातरः प्रीय-
न्ताम् । नान्दीमुखाः पितामह्यः प्री० । ना०प्रपितामह्यः प्री० । ना०पितरः
प्री० । नान्दीमुखाः पितामहाः प्री० । ना०प्रपितामहाः प्री० । ना०सपत्नीका
मातामहाः प्री० । ना०सपत्नीका मातुःपितामहाः प्री० । ना० सपत्नीका
मातुःप्रपितामहाः प्रीयन्ताम् । ततो मातृवर्गविप्रयोः प्रथमविप्रहस्ते
प्रथमपात्रस्थमर्धमर्धं नान्दीमुखा मातर इदं वोऽर्घ्यं दत्त्वा या दिव्या
इत्यनुमन्त्र्यावशिष्टमर्धं द्वितीयविप्रहस्ते नान्दीमुखा मातर इदं वोऽर्घ्य-
मिति दत्त्वा या दिव्या इत्यनुमन्त्रयेत् । एवमेव द्वितीयपात्रस्थमर्धं
तृतीयपात्रस्थं च ताभ्यामेव विप्राभ्यां दद्यात् । नान्दीमुखाः पितामह्य
इदं वोऽर्घ्यम् । नान्दीमुखाः प्रपितामह्य इदं वोऽर्घ्यमिति द्विर्द्विमन्त्रौ ।
ततः पितृवर्गार्थान्यर्घ्याणि तद्वाह्यणाभ्यां पूर्ववद्दद्यात् । तत्र मन्त्राः—
नान्दीमुखाः पितर इदं वोऽर्घ्यम् । नान्दीमुखाः पितामहा इदं वोऽर्घ्यम् ।
नान्दीमुखाः प्रपितामहा इदं वोऽर्घ्यम् । तथैव मातामहवर्गार्थानि
तद्वाह्यणाभ्यां दद्यात् । तत्र मन्त्राः—नान्दीमुखाः सपत्नीका
मातामहा इदं वोऽर्घ्यम् । नान्दीमुखाः सपत्नीका मातुःपितामहा इदं
वोऽर्घ्यम् । नान्दीमुखाः सपत्नीका मातुः प्रपितामहा इदं वोऽर्घ्यम् ।
संस्वान्समवनीय ताभिरद्भिः पुत्रकामो मुखमनक्ति । अपः स्पृष्ट्वा
तत्पात्रं प्रपितामहपात्रेणापिधाय मातृपितामहीप्रपितामह्यो नान्दीमुखा
इत्याद्युच्चार्य गन्धपुष्पधूपदीपाच्छादनानि प्रदायार्चनविधेः संपूर्णतां
वाचयित्वा मण्डलेषु भोजनपात्राण्यासाद्य घृताक्तमन्नमादाय पित्र्य-
विप्रपाणिषु हस्तेनावदानधर्मेण, अग्नये कव्यवाहनाय स्वाहा । अग्नये
कव्यवाहनायेदं० । सोमाय पितृमते स्वाहा । सोमाय पितृमत इदं० ।
इति प्रत्येकं द्वे द्वे आहुती जुहुयात् । अपि वैकैकामाहुतिं विगृह्य
विगृह्य जुहुयात् । विप्राः स्वस्वपाणिस्थमन्नं स्वे स्वे पात्रे संस्थाप्य
बहिर्गत्वाऽऽचम्य यथास्थानमुपविशेयुः । कर्ता देवपूर्वं भोजनपात्रा-
ण्युपस्तीर्यान्नं परिविष्य हुतशेषं पितृपात्रेषु दत्त्वा देवपात्रस्थमन्नं
सावित्र्याऽभ्युक्ष्य सत्यवसुसंज्ञकेभ्यो विश्वेभ्यो देवेभ्यो नान्दीमुखेभ्य

इदमन्नममृतरूपं परिविष्टं परिवेक्ष्यमाणं चाऽऽ तृप्तेः स्वाहा हव्यं नमो
 न ममेत्युभयोर्युगपन्निवेद्य पितृपात्रस्थमन्नं सावित्र्याऽभ्युक्ष्य मातृपि-
 तामहीप्रपितामहीभ्यो नान्दीमुखेभ्य इदमन्नममृतरूपं परिविष्टं परिवे-
 क्ष्यमाणं चाऽऽ तृप्तेः स्वाहा हव्यं न ममेति सकृदुक्त्वोभयोर्निवेदयेत् ।
 एवमुत्तरत्र । पितृपितामहप्रपितामहेभ्यो नान्दीमुखेभ्य इदमन्नं० माता-
 महमातुःपितामहमातुःप्रपितामहेभ्यः सपत्नीकेभ्यो नान्दीमुखेभ्य इद-
 मन्नं० इति निवेद्य ब्रह्मार्पणं कृत्वाऽऽपोशनार्थमुदकं दद्यात् । विप्रा
 बलिदानवर्जमापोशनं कृत्वा भुञ्जीरन् । कर्ता भुञ्जानाञ्छकुनिसूक्तं
 स्वस्तिसूक्तं पावमानीः शंभतीरैन्द्रीरप्रतिरथं च श्रावयेत् । तृप्तेषु,
 उपास्मै गा० मधु । अक्षन्नमी० हरी । इति पङ्क्त्यः श्रावयेत् । ततो
 ब्राह्मणान्पृच्छति संपन्नमिति । ते च संपन्नमिति प्रत्युचुः । कर्ता
 पिण्डार्थं प्रक्षिरणार्थं चान्नमुच्छृत्य शेषं निवेदयेत् । शेषमन्नं किं क्लिय-
 ताम् । विप्रा इष्टैः सह भुज्यताम् । कर्ता प्रक्षिरणीयमन्नं सजलं विप्रो-
 च्छिष्टसमीपे भुवि तूष्णीं प्रकीर्य विप्रेभ्य उत्तरापोशनं दत्त्वा तेषां गण्डू-
 पकरणादिशुद्धा(दध्या)चमनान्तं कारयित्वाच्छिष्टपात्राणि निष्काश्य
 भुक्ताशयान्सम्यग्गोमयेनोपलेपयित्वा (प्य) तत्र, अपहता असु० पदः ।
 इति मन्त्रावृत्त्या प्रागग्रास्तिस्रो लेखा उल्लिख्याभ्युक्ष्य बर्हिश्चयमासाद्य
 क्रमेणोदकं निनयेत् । शुन्धन्तां नान्दीमुखा मातर इत्यादि । ततः पृष-
 दाज्यमिथिताज्ञेनाष्टादश पिण्डान्कृत्वा, एतत्ते नान्दीमुखे मातर्यं च
 त्वामन्नानु तेभ्यश्चेति मन्त्रावृत्त्या मात्रे द्वौ पिण्डौ दद्यात् । एवं पिता-
 मह्यादिभ्यस्तत्तन्नामोच्चारपूर्वकं द्वौ द्वौ दद्यात् । अनुमन्त्रणादिपिण्ड-
 प्रतिपत्यन्तं पूर्ववत् । अन्ये त्वनुमन्त्रणादि नेच्छन्ति । ततः पूर्वासादि-
 तमर्धपात्रं चालयित्वा ब्राह्मणेभ्यस्ताम्बूलं दत्त्वा द्राक्षामलकादि
 तन्निष्कृत्य वा दक्षिणात्पेन दत्त्वाऽऽलंकारादि दत्त्वा ॐ संपन्नमित्युक्त्वा
 विसृजेत् । ते च ॐ संपन्नमिति ब्रुवन्त उच्छिष्टेयुः । कर्ता प्राङ्मुखो
 बद्धाञ्जलिस्तिष्ठन्वरान्याचेत—दातारो नोऽभिवर्धन्ताम्० बहु देयं च
 नोऽस्त्विति । विप्रा दातारो योऽभिवर्धन्तामित्याद्याशिषो वदेयुः । कर्ता
 माता पितामही० । पिता पितामहश्चैव० । मातामह० । एते भवन्तु
 सु० । कर्ता, इळामग्ने० त्वस्मे । शिवं शिवं शिवम् । इति त्रिहिरण्येन
 पात्रे शब्दं कुर्यात् । अद्य मे सफलं जन्मेत्यादि विप्रान्संप्राथ्यं प्रजा-
 पते० रयीणाम् । अनेन नान्दीश्रान्द्रेण श्रीपरमेश्वरः प्रीयताम् ।

ततो मातृका विसर्जयेत् । सांकल्पिकनान्दीश्राद्धप्रयोगस्तु प्रयोगरत्ना-
दायवगन्तव्यः ।

इति श्रीमच्चित्तपावनके० श्राद्धमञ्जर्यां सूत्रोक्तो
नान्दीश्राद्धप्रयोगः ।

अथ श्राद्धानुकल्पाः । तत्र यथोक्तसर्वविप्रालाभे त्वाह हेमाद्रौ व्यासः—

काणाः कूटाश्च कुब्जाश्च दरिद्रा व्याधितास्तथा ।

सर्वे श्राद्धे नियोक्तव्या मिश्रिता वेदपारगैः ॥

तत्रैव वसिष्ठः—अपि चेन्मन्त्रविद्युक्तः शारीरैः पङ्क्तिद्रूपणैः ।

अदुष्यं तं यमः प्राह पङ्क्तिपावन एव सः ॥

पङ्क्तिद्रूपणकरैः कुठादिशारीरद्रूपणैर्युक्तोऽपि वेदपारगश्चेच्छ्राद्धे भोज-
येदित्यर्थः । मातृश्राद्धे तु विप्रालाभे सुवासिन्योऽपि भोजनीया इत्युक्त
निर्णयसिन्धो । तत्रैवानेकविप्रालाभे त्वाह शङ्खः—

भोजयेदथवाऽप्येकं ब्राह्मणं पङ्क्तिपावनम् ।

दैवे कृत्वा तु नैवेद्यं पश्चात्तस्य तु निर्धयेत् ॥ इति ।

अशक्तावपि तथैवोक्तं ग्रन्थान्तरे—

अशक्तावैकविप्रं वा भोजयेत्पङ्क्तिपावनम् ।

तेन तत्फलमाप्नोति शक्तौ सत्यां न तत्फलम् ॥ इति ।

तद्विधिमाह वसिष्ठः—

यद्येकं भोजयेच्छ्राद्धे दैवं तत्र कथं भवेत् ।

अन्नं पात्रे समुद्धृत्य सर्वस्य प्राकृतस्य च ॥

देवतायतने कृत्वा ततः श्राद्धं समाचरेत् ।

प्रास्येद्ग्नौ तदन्नं तु दद्याद्वा ब्रह्मचारिणे ॥ इति ।

हेमाद्रौ देवलः—एकेनापि हि विप्रेण पद्मपिण्डं श्राद्धमाचरेत् ।

पङ्क्तिद्रूपान्दापयेत्तत्र पद्मभ्यो दद्यात्तथा हविः ॥ इति ।

पात्रे च—सकृद्भ्यार्चितं लिङ्गं शालग्रामशिलां च यः ।

पीठे संस्थापयित्वा तु श्राद्धं च कुरुते नरः ।

पितरस्तस्य तिष्ठन्ति कल्पकोटिशतं दिवि ॥ इति ।

अस्मिन्पक्षे पीठादौ शालग्रामशिलां शिवलिङ्गं वा तदुभयं वा प्राङ्मुखं संस्थाप्य तद्दक्षिणत उद्गुम्बुखं पित्र्यविप्रमुपवेश्य सर्वमविकृतं श्राद्धप्रयोगं कुर्यात् । वैश्वदेविकविप्रनिमन्त्रणादीनां लोपः । परिवेषणकाले सर्वस्मादन्नात्पुरुषाहारपरिमितं पात्रान्तरे कृत्वा देवसमीपे निधायान्ननिवेदनकाले तदन्नं सावित्र्याऽभ्युक्ष्य परिपिच्य पात्रमालभ्य विश्वेभ्यो देवेभ्य इदमन्नममृतरूपं परिविष्टं स्वाहा हव्यं नमो न ममेति विश्वदेवोद्देशेन देवाय निवेद्य पित्र्यपात्रस्थान्ननिवेदनादि कृत्वा देवनिवेदितमन्नं ब्रह्मचारिणे दद्यात् । तदलाभेऽग्नौ दहेदिति चन्द्रिकायामेव ।

अथ दर्भबटुश्राद्धविधिः । सर्वथा विप्रालाभे तत्प्रतिनिधित्वेनाऽऽसनेषु दर्भबटुं निधाय तानेव विप्रान्ध्यायन्सर्वमविकृतं श्राद्धप्रयोगं कुर्यात् । ब्राह्मणसंबन्धिमन्त्रप्रतिवचनानि स्वयमेव वदेत् । तदुक्तं चन्द्रिकायां देवलेन—

निधाय वा दर्भबटुनासनेषु समाहितः ।

प्रैपानुप्रैपसंयुक्तं विधानं प्रतिपादयेत् ॥ इति ।

दर्भबटुदर्भसमूहः । हेमाद्रौ सत्यव्रतः—

निधाय दर्भनिचयमासनेषु समाहितः ।

प्रैपानुप्रैपसंयुक्तं सर्वं श्राद्धं प्रकल्पयेत् ॥

नात्र दर्भसंख्यानियमः । तदाह कात्यायनः—

यज्ञवस्तुनि मुष्टौ च स्तम्भे दर्भबटौ तथा ।

दर्भसंख्या न विहिता विहरास्तरणेषु च ॥ इति ।

अत्राग्नीकरणं वृशादौ गृह्याग्निमता गृह्याग्नी कर्तव्यम् । तदभावे लौकिकाग्नावपि । श्राद्धे त्वौपासनाग्नी, तु निरग्नीलौकिकेऽनल इति वचनात् ।

मण्डनोऽपि—नष्टाग्निर्दूरमार्यश्च पार्वणे समुपस्थिते ।

संधायार्थिं ततः कुर्याद्धोममग्निं समुत्सृजेत् ॥ इति ।

यद्यप्याश्वलायनानां सूत्रे पाणिस्मार्ताग्नी विना विधानान्तरं नोक्तं तथाऽप्येतादृशस्थले स्वाविरुद्धमन्यतो ग्राह्यमित्युक्तत्वाच्छास्त्रान्तरमपि स्वीकरणीयम् । अग्नीकरणप्रयोगस्तु पार्वणश्राद्धान्ते दर्शित एव । अन्ननिवेदनादौ यथाश्रुतं ब्राह्मणशब्दस्यैव निर्देश इदमन्नं हविरयं ब्राह्मण आहवनीयार्थं इत्यादि । सोमप्रतिनिधिपूतिकादिवत् । दक्षिणामन्यस्मै दद्यादिति कमलाकरः । संकल्पितान्नप्रतिपत्तिमाह देवलः—

पात्राभावे क्षिपेद्ग्नौ गवे दद्यात्तथाऽप्यु वा ।

न तु प्राप्तस्य लोपोऽस्ति पेतृकस्य विशेषतः ॥ इति ।

आमहेमपक्षयोस्तु श्राद्धं निर्वर्त्य तद्द्रव्यं कालान्तरे ब्राह्मणाय ब्राह्म-
णेभ्यो वा दद्यादिति । इति दर्भवदुश्राद्धविधिः ।

अथ क्वचित्प्रतिनिधिनाऽपि श्राद्धं कारयेत् । तदुक्तं हेमाद्रौ वाराहे-

न शक्नोति स्वयं कर्तुं यदा ह्यनयकाशतः ।

श्राद्धं शिष्येण पुत्रेण तदन्येनापि कारयेत् ॥

नियमानाचरेत्सोऽपि नियतांश्च वसुंधरे ।

यजमानोऽपि तान्सर्वानाचरेत्सुसमाहितः ॥

स्कान्देऽपि—राजकार्ये नियुक्तस्य बन्धनिग्रहवर्तिनः ।

व्यसनेषु च सर्वेषु श्राद्धं विप्रेण कारयेत् ॥ इति ।

इति प्रतिनिधिश्राद्धम् ।

अथाऽऽमश्राद्धम् । तन्निमित्तान्याह चन्द्रिकायां कात्यायनः—

आपद्यनग्नौ तीर्थे च प्रवासे पुत्रजन्मनि ।

आमश्राद्धं प्रकुर्वीत भार्यारजसि संक्रमे ॥

तत्रैव मरीचिः—श्राद्धविधौ द्विजातीनामामश्राद्धं प्रकीर्तितम् ।

अमावास्यादिनियतं माससंवत्सराहते ॥

मासो मासिकम् । संवत्सरः सांवत्सरिकम् । स्मृतिदर्पणे—

मृताहं च सपिण्डं च गयाश्राद्धं महालयम् ।

आपन्नोऽपि न कुर्वीत श्राद्धमामेन कर्हिचित् ॥

ग्रहणे तु प्रत्याब्धिकं भोक्तृसंभवे पक्वान्नेनैव कार्यम् । भोक्तुरसंभव
आमेन हेम्ना वा कार्यमिति चन्द्रिकायाम् । तीर्थप्रवासादौ त्वामादिना
श्राद्धं कार्यम् । पाकश्राद्धं तु न भवत्येवेति हेमाद्र्यादयः । सर्वत्र पाका-
माव आमादिना पाकसंभवे त्वन्नेनैवेति विज्ञानेश्वरादयः । आमं वितुप-
धान्यमिति चन्द्रिकायाम् । तच्चाऽऽमं द्विजभोजनपर्याप्तादन्नाच्चतुर्गुणं
द्विगुणं त्रिगुणं वा सोपस्करं दद्यात् । अत्यशक्तौ सममपीति स्मृत्य-
र्थसारे ।

व्यासः—सिद्धान्ते तु विधिर्यः स्यादामश्राद्धेऽप्यसौ विधिः ।

हस्तेऽग्नौकरणं कुर्याद्ब्राह्मणस्य विधानतः ॥

चन्द्रिकायाम्—आमश्राद्धं यदा कुर्यात्पिण्डदानं कथं भवेत् ।

गृहपाकात्समुद्धृत्य सक्तुभिः पायसेन वा ॥

पिण्डान्दद्याद्यथालामं तिलैः सह विभत्सरः ॥ इति ।

अग्नौकरणविकिरादौ त्वाममेवेति तत्रैव ।

सिन्धौ—तृप्तिप्रश्नोऽवगाहश्च जुषप्रश्नो यथागुरुत्तम् ।

आमश्राद्धे भवेन्नैतदापोशनं च पञ्चमम् ॥

अवगाहोऽद्भुठनिवेशनम् । आमश्राद्धमनद्भुठमग्नौकरणवर्जितम् ।

तृप्तिप्रश्नविहीनं तु कर्तव्यं मानवैर्धुवम् ।

आवाहनं नैव भवेद्दर्घ्यदानं तथैव च ॥ इति ।

हेमाद्रौ भविष्ये—आवाहनं भवेत्कार्यमर्घ्यदानं तथैव चेति । विकिरं नैव कुर्वीतेति धर्मप्रदीपे । तृप्तिप्रश्नादीनां न्यायतोऽर्थाभावाह्योपसिद्धेरयमनुवादः । आवाहनार्घ्यदानाग्नौकरणविकिराणां पूर्वोक्तव्यासाद्विचनविरोधाद्विकल्प इति प्रतिभाति । शास्त्रान्तरविषयं वाऽस्त्विति कमलाकरः ।

मरीचिः—आवाहने स्वधाकारे मन्त्रा ऊह्या विसर्जने ।

अन्यकर्मण्यनूह्याः स्युरामश्राद्धविधिः स्मृतः ॥ इति ।

यद्यपि तस्माद्भृचं नोहेदित्यूगूहो निपिद्धस्तथाऽपि वचनाद्भवतीति कमलाकरः । आवाहने पितृन्हविषे अत्तव इत्यत्र स्वीकर्तव इत्यूहः । विसर्जनमन्त्रे तृप्ता यातेत्यत्र तप्स्यथ यातेत्यूहः । स्वधा पित्र्यहविर्दानं तत्करणं च स्वधाकारस्तदङ्गमन्त्र इदमन्नमित्यादिस्तत्रेदमाममित्यादि-रूपेणोहः कार्य इति स्वधाकार इत्यस्यार्थ इति चन्द्रिकाकारः । स्वधाकारे नमो वः पितर इप इत्यत्र इप इतिपदस्थान आमद्रव्यायेत्यूह इति कमलाकरः । अस्मिन्नामश्राद्धे ब्रह्मचर्यादिनियमा न सन्तीति पूर्वमेवोक्तम् । सिन्धौ हारीतः—

आमश्राद्धं तु पूर्वाह्न एकोद्दिष्टं तु मध्यतः ।

पार्वणं चापराह्णे तु प्रातर्धृद्धिनिमित्तकम् ॥ इति ।

अथाऽऽमश्राद्धप्रयोगः—पूर्वाह्न एव देशकाली संकीर्त्य प्राचीनावीती पृथयन्तान्पितृनुच्चार्यतेषां तृप्त्यर्थममुकश्राद्धं सदैवं सपिण्डं पार्वणेन विधिनाऽऽमान्नेन हविषा सद्यः करिष्य इति संकल्प्य पूर्ववद्द्वैश्वदेवार्थं पित्र्यं च ब्राह्मणान्निमन्त्र्य, अस्मत्पित्रादीन्भवत्स्वावाहयिष्यामीत्यन्त-मविकृतं सर्वं पार्वणवत्कृत्वाऽऽवाहनमन्त्र ऊहः कार्यः । यथोशन्तस्त्वा

निधीम०पितृहविषे स्वीकर्तव्य इति विशेषः । पितृणामाच्छादनप्रदानान्तमर्चनं विधायार्चनविधेः संपूर्णतां वाचयित्वाऽऽचम्य घृताक्तमामद्रव्यमादाय तेन विप्रपाणिप्यग्नौकरणं विधाय देवपित्र्यविप्राणां पुरतः क्रमेण पात्रेप्सामानि निधाय दैविकं गायत्र्या प्रोक्ष्य तूष्णीं परिषिच्येत्यादिपात्रात्तन्मनान्तं कृत्वा पृथ्वी ते पात्रमित्यादि अमुत्रामुष्मिहोके, इदं विष्णुर्विच०सुरे । विष्णो हव्यं रक्षस्वेत्युक्त्वा पुरुरवार्वसंज्ञका विश्वे देवा देवता, इदमामं हविरयं ब्राह्मण०गदाधर, इदमामं ब्रह्मणे दत्तं सुवर्णपात्रस्थमक्षय्यवदच्छायेयम् । पुरुरवार्वसंज्ञकेभ्यो विश्वेभ्यो देवेभ्य इदमामं सोपस्करममृतरूपं स्वाहा न ममेति निवेदयेत् । नात्र विप्राद्बुधनिवेशनम् । एवं पित्रादिभ्यस्तत्तन्नामाद्यूहेनाऽऽमानानि निवेद्य ये चेह पितर इत्यादि समानम् । संकल्पेऽनेन मम पित्रादीनाममुकश्राद्धे ब्राह्मणेभ्य आमानदानेन पितृस्वरूपी जनार्दनवासुदेवः प्रीयतां न ममेति संकल्प्य गायत्रीं जपित्वा मधु वाता इति तिस्रोऽक्षत्रमीति चैकां श्रावयित्वा संपन्नप्रश्नं कृत्वा गृहसिद्धान्तेन पायसेन सक्तुभिर्वा पिण्डदानं कुर्यात् । तत्रोपस्थानमन्त्रे विशेषः । नमो वः पितर आमद्रव्याय नमो वः पितर ऊर्जे नमो वः पितरः शुष्मायेत्यादि । विकिराण्यामद्रव्येण । शोभनं हविरित्यस्य लोपः । विसर्जनमन्त्रे वाजे०ऋतज्ञाः । अस्य मध्यः पित्रत मादयध्वं तप्स्यथ यात पथिभिर्देवयानैः । इत्यूहः । अन्यत्सर्वं पूर्ववत् । तत्तच्छ्राद्धधर्मण पूर्वमन्तेऽपरेद्युर्वा तर्पणम् । काले वैश्वदेवादि कृत्वा भुञ्जीत । नात्र ब्रह्मचर्यादिनियमाः । इत्यामश्राद्धप्रयोगः ।

अथाऽऽमाभावे हिरण्यश्राद्धम् । तत्र निमित्तानि विधिधर्मः कालः प्रयोगश्चाऽऽमश्राद्धयत् । विशेषस्तूच्यते । सकल्प आमानेन हविषेत्यत्र हिरण्येनेत्युत्तरः । गृहसिद्धान्तेन पायसेन सक्तुभिर्वाऽऽग्नौकरणं पिण्डदानं प्रकिरणं च । आमद्रव्यमूल्यादष्टगुणं चतुर्गुणं द्विगुणं वाऽत्यशक्तौ समं वा हिरण्यं निधाय विश्वेभ्यो देवेभ्य इदं हिरण्यममृतरूपं स्वाहा न ममेत्यादिसकल्पः । पिण्डोपस्थानमन्त्रे नमो वः पितरो हिरण्याय नमो वः पितर ऊर्ज इत्यूहः । अत्र श्राद्धोत्तरं तत्काल एव तिलतर्पणं कृत्वा काले वैश्वदेवादि कृत्वा भुञ्जीत । अत्र पिण्डदाने विकल्पः । अरुरणे सांकल्पिकप्रयोगः । इति हिरण्यश्राद्धम् । अथ सांकल्पिकश्राद्धम् । तत्राशक्तेन कर्तव्यम् । तदुक्तं निर्णयसिन्धौ-

समग्रं यस्तु शक्नोति कर्तुं नैवेह पार्वणम् ।
अपि संकल्पविधिना काले तस्य विधीयते ॥

अन्यान्यपि निमित्तान्युक्तानि हेमाद्रौ—

संक्रान्तौ ग्रहणे पाते युगमन्वन्तरादिषु ।
भरण्यां चापि कुर्वीत श्राद्धं पिण्डं विनैव तु ॥

तत्रैव वृद्धपराशरः—

युगादिषु मघायां च विषुवत्ययने तथा ।
भरणीषु च कुर्वीत पिण्डनिर्वपणं न हि ॥

सिन्धौ गार्ग्यः—

पौर्णमासीषु सर्वासु निपिद्धं पिण्डपातनम् ।
वर्जयित्वा प्रोष्ठपर्दीं यथा दर्शस्तथैव सा ॥ इति ।

स्मृतिरत्नावल्याम्—

पुत्रे जाते व्यतीपाते ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ।
श्राद्धं कुर्यात्प्रयत्नेन पिण्डनिर्वपणादृते ॥

हेमाद्रौ ज्योतिष्पराशरः—

विवाहे विहितान्मासांस्त्यजेषुर्द्वादशैव हि ।
सपिण्डाः पिण्डनिर्वापं मौञ्जीबन्धे पडेव हि ॥

त्रिस्थलीसेती काष्णांजिनिः—

विवाहयत्तच्छूडासु वर्षमर्धं तदर्धकम् ।
पिण्डदानं मृदा स्नानं न कुर्यात्तिलतर्पणम् ॥

सिन्धौ—वृद्धिमात्रे तथाऽन्यत्र पिण्डदाननिराक्रिया ।
कृता गर्गादिभिर्मुख्यैर्मासमेकं तु कर्मिणाम् ॥

मदनरत्ने—पिण्डान्सपिण्डा नो दद्युः प्रेतपिण्डं विनाऽत्र तु ।
पितृयज्ञे च यज्ञे च गयायां दद्युरेव ते ॥

अस्य वचसोऽर्थमाह चन्द्रिकाकारः—पितृयज्ञे पिण्डपितृयज्ञे । यज्ञे
पित्र्येष्ट्याम् । तत्र पिण्डान्दद्युरिति ।

सिन्धौ—मुण्डनं पिण्डदानं च प्रेतकर्म च सर्वशः ।
न जीवत्पितृकः कुर्याद्द्विर्विणीपतिरेव च ॥ इति ।
तथा—पिण्डहीनं तु यच्छ्राद्धं संकल्पाख्यं प्रचक्षते ।

तद्विधिमाह पृथ्वीचन्द्रोदये षसिष्ठः—

आवाहनं स्वधाशब्दं पिण्डाग्नौकरणं तथा ।
विकिरं चार्घ्यदानं च सांकल्पे पद्मविवर्जयेत् ॥

समन्त्रकस्याऽऽवाहनस्य निषेधः । तूष्णीं भवत्येवेति हेमाद्यादयः ।
नाक्षय्यवाचनमिति सिन्धौ । चन्द्रिकायां वृद्धशातातपः—

पिण्डनिर्वापरहितं यत्तु श्राद्धं विधीयते ।
स्वधावाचनलोपोऽत्र विकिरस्तु न लुप्यते ॥
अक्षय्यदक्षिणास्वस्तिसौमनस्यं यथास्थितम् । इति ।

अतो विकिराक्षय्ययोर्विकल्पः । सिन्धौ स्मृत्यन्तरम्—
अङ्गानि पितृयज्ञस्य यदा कर्तुं न शक्नुयात् ।
स तदा वाचयेद्विप्रान्संकल्पासिद्धिरस्त्विति ।

अथ सांकल्पिकश्राद्धप्रयोगः । उक्तापराह्णे देशकालौ संकीर्त्य प्राची-
नावीती पित्रादीनां पष्ठयन्तप्रयोगेणोत्कीर्तनं कृत्वंतेषां तृप्त्यर्थममुक-
श्राद्धं सदैवं सांकल्पिकविधिनाऽन्नेनाऽऽमान्नेन वा हविया हिरण्येन वा
सद्यः करिष्य इति संकल्प्य पूर्ववद्विप्रनिमन्त्रणादिपादप्रक्षालनान्तं कृत्वा
पूर्ववदुपवेश्याऽऽवाहनार्घ्यदानवर्जमासनाद्याच्छादनान्तेरुपचारैः पूजयेत् ।
अथ वा तूष्णीमावाहनम् । ततोऽग्नौकरणवर्जमापोशनदानान्तं कुर्यात् ।
ब्राह्मणा बलिदानवर्जं विधिना भुञ्जीयुः । भोजनान्ते तृप्तिप्रश्नं कृत्वा
मधुमतीरक्षन्नमीमदन्तेति च श्रावयित्वा संपन्नप्रश्नं कृत्वा शेषमन्नं किं
क्रियतामित्यादि उच्छिष्टभागेभ्योऽन्नदापनान्तं कृत्वाऽऽचान्तेषु विप्रेषु
प्रकिरणपक्षेऽन्नं प्रकीर्य विप्रहस्तेषु शिवा आपः सन्तु इत्यादिभिर्जलादि
दत्त्वा, अघोराः पितरः सन्त्वित्यादि पूर्ववत् । अक्षय्यवाचनपक्षे तत्कृत्वा
ताम्बूलदक्षिणे दत्त्वा विश्वे देवाः प्रीयन्तामित्यादिकर्मेश्वरार्पणान्ते विप्रा-
न्प्रति वदेत् । कृतस्यामुकश्राद्धस्य संकल्पासिद्धिरस्त्विति भवन्तो
ब्रुवन्तु । विप्रास्तथाऽस्त्विति वदेषुः । कर्ता वैश्वदेवादि कृत्वा बन्धुभिः
सह श्राद्धशेषं भुञ्जीत । तर्पणं तु श्राद्धकालानुरोधेन सर्वेष्वपि श्राद्धा-
नुकल्पेषु भवत्येव । इति सांकल्पिकश्राद्धम् । अत्यशक्तौ ब्रह्मार्पणवि-
धिना श्राद्धं कुर्यात् । तदुक्तं पद्मपुराणे—

ब्रह्मार्पणेन विधिना कुर्याद्वा भक्तिमान्सुतः ।
निमन्त्र्य ब्राह्मणाञ्जशक्त्या द्वायेकं वा यथाविधि ॥

पादप्रक्षालनं कृत्वा पीठादावुपवेश्य च ।
 परिविष्य त्यजेदन्नं ब्रह्मार्पणविधानतः ॥
 गोविन्दं पुण्डरीकाक्षं गङ्गां काशीं गयां ततः ।
 गदाधरं स्मरेद्भक्त्या श्राद्धसादृष्यहेतवे ॥ इति ।

अथ प्रयोगः । यथाशक्ति ब्राह्मणान्निमन्त्र्य संकल्पे पितृनुद्दिश्यै-
 तेषां तृप्त्यर्थममुकश्राद्धं सदैवं ब्रह्मार्पणेन विधिना सद्यः करिष्य इत्युक्त्वा
 विप्राणां पादप्रक्षालनं कृत्वा पीठेषूपवेश्यार्घ्यावाहनवर्जं देवपितृपूजां
 विधायान्नं परिविष्य सावित्र्या प्रोक्ष्य विश्वेभ्यो देवेभ्य इदमन्नममृतरूपं
 परिविष्टं परिवेक्ष्यमाणं चाऽऽ तृप्तेः स्वाहा हव्यं नमो न ममेत्येवं तत्त-
 न्नामाद्युच्चारपूर्वकं पितृभ्यो निवेदयेत् । कव्यं नमो न ममेति मन्त्रे
 विशेषः । ततः, ब्रह्मार्पणं० धिना । इत्यादि पितृस्वरूपी जनार्दनवा-
 सुदेवः प्रीयतामित्यन्तं संकल्पवाक्यमुच्चार्य भुक्तवन्त्यो यथाशक्ति
 ताम्बूलं दक्षिणां च दत्त्वा गोविन्देति श्लोकं पठित्वा संकल्पात्सिद्धि-
 रस्त्विति भवन्तो ब्रुवन्त्विति वाचयित्वा कर्मेश्वरार्पणं कृत्वा वैश्वदे-
 वादिभोजनान्तं पूर्ववदिति । इति ब्रह्मार्पणविधिना श्राद्धम् ।

संकटेऽन्येऽपि श्राद्धानुकल्पा उक्ता निर्णयसिन्धौ बृहन्नारदीये-

द्रव्याभावे द्विजाभावे अन्नमात्रं तु पाचयेत् ।

पैतृकेण तु सूक्तेन होमं कुर्याद्विचक्षणः ॥

पैतृकं सूक्तमुदीरतामित्यादि ।

देवलः—पिण्डमात्रं प्रदातव्यमभावे द्रव्यविप्रयोः ॥

वृद्धवसिष्ठः—किञ्चिद्दद्यादशक्तस्तु उदकुम्भादिकं द्विजे ।

किञ्चिदन्नं तिलान्वाऽपि दक्षिणामात्रमेव वा ॥

असमर्थोऽन्नदानस्य धान्यमात्रं स्वशक्तितः ।

तृणानि वा गवे दद्यात्पिण्डान्वाऽप्यथ निर्वपेत् ॥

तिलोदकैः पितृन्वाऽपि तर्पयेत्स्नानपूर्वकम् ।

भविष्ये—अग्निना वा दहेत्कक्षं श्राद्धकाले समागते ॥

तस्मिंश्चोपवसेदह्नि जपेद्वा श्राद्धसंहिताम् ।

कक्षं तृणम् । श्राद्धसंहिता सर्वमन्त्रसहितः श्राद्धकल्पः । विष्णु-
 पुराणे—

सर्वाभावे वनं गत्वा कक्षामूलप्रदर्शकः ।

सूर्यादिलोकपालानामिदमुच्चैः पठिष्यति ॥

न मेऽस्ति वित्तं न धनं न चान्यच्छ्राद्धोपयोगि स्वपितृन्नतोऽस्मि ।

तृप्यन्तु भक्त्या पितरो मयैतौ भुजौ कृतौ वर्त्मनि मारुतस्य ॥

प्रभासरण्डे—गत्वाऽरण्यममानुष्यमूर्ध्वबाहुर्विरौत्यदः ।

निरन्नो निर्धनो देवाः पितृणामनृणं कृथाः ॥

ग्रन्थान्तरे—कक्षं वा प्रदहेत्कालेऽथवा दद्यात्फलादिकम् ।

अथवा श्राद्धदिवसे भवेन्निरशनः स्वयम् ॥

गत्वाऽथवा महारण्ये कक्षामूलं प्रदर्शयेत् ।

दक्षिणास्यो रुदेदेवमूर्ध्वबाहुः समाहितः ॥

न मे धनं न चान्नं भोः पितरः सर्वसाक्षिणः ।

प्रापध्वमतुलां तृप्तिं कक्षामूलप्रदर्शनात् ॥

अवस्थं तद्दिनं नेयं येन केनापि कर्मणा ।

पूर्णं करोति भगवान्भक्त्या मक्तजनाश्रयः ॥

ततस्तु तर्पणं कार्यं श्राद्धाङ्गं विधिचोदितम् ।

अन्वथा श्राद्धवैगुण्यमङ्गहानिनिमित्ततः ॥ इति ।

अष्टकाश्राद्धकरणाशक्तावेकस्यां वा माचकृष्णाष्टम्यामष्टमीश्राद्धं
कार्यमिति सिन्धौ । तस्याप्यशक्तौ शौनकः—

अद्वयोऽपि यथाशक्ति कुर्यादेवाष्टकां बुधः ।

योऽशक्तिक(यो ह्यशक्त?)स्तथा कर्तुं दारिद्र्येणाष्टकामिमाम् ॥

संप्रदद्यादनडुहे तृणान्यप्यथवाऽग्निना ।

गुल्ममेकं दहेदेवं मेऽष्टका त्विति चिन्तयन् ॥

अष्टकासमये जीवन्नत्वेवानष्टको भवेत् ।

गुल्मं तृणस्य । अप्यनडुहो यवसमाहरेदग्निना वा कक्षमुपोषेदेपा
मेऽष्टकेति नत्वेवानष्टकः स्यादित्याश्वलायनः ।

इति श्रीमच्चित्तपावनके० श्राद्धमञ्जर्यां श्राद्धानुकल्पाः ।

अथ क्षयाहश्राद्धम् । तत्स्वरूपमाह निर्णयसिन्धो व्यासः—

मासपक्षतिथिस्पृष्टे यो यस्मिन्प्रियतेऽहनि ।

प्रत्यङ्गं तु तथाभूतं क्षयाहं तस्य तं विदुः ॥

तच्चाधिमासमृतानां प्रथमाब्धिकं त्रयोदशे मासे कार्यम् । मध्ये यद्यधिमासो भवेत्तदा च त्रयोदशे मासे कार्यम् । यद्यन्तेऽधिमासस्तदा तस्मिन्नेवाधिमासे कार्यम् ।

द्वितीयादिवार्षिकं तु शुद्धमास एव । अधिमासमृतानां तु यदा स एव मासोऽधिकः स्यात्तदा तत्रैवाधिमासे कार्यम् । दर्शं वार्षिकं चेत्तदा पूर्वं वार्षिकं कृत्वा ततः पिण्डपितृयज्ञो दर्शश्राद्धं चेति निर्णयदीपे स्मृतिसारे च क्रम उक्तः । कमलाकरेण तु पिण्डपितृयज्ञानन्तरं वार्षिकं कृत्वा ततः दर्शश्राद्धं कर्तव्यमिति सिद्धान्तितम् । तत्पक्षे नात्र व्यतिपन्नो भवति । प्रवासमरणादिना क्षयाहतिथेरज्ञाने तन्मासस्य कृष्णाष्टम्यां कृष्णैकादश्याममावास्यायां शुक्लैकादश्यां वा कार्यम् । यदि तिथिर्विज्ञाता मासो न विज्ञातस्तदा मार्गशीर्षे माघे भाद्रपदे आषाढे वा तत्तिथौ कार्यम् । तिथिमासयोरविज्ञाने माघे मार्गे वाऽमावास्याया कार्यम् । अथवा प्रस्थानमासदिनसौ ग्राह्यौ । तयोरपि तिथेरज्ञाने प्रस्थानमासदर्शं कार्यम् । तिथेरज्ञाने मासाज्ञाने तु मार्गशीर्षादौ । उभयस्याप्यविज्ञाने मृतवार्ताश्रवणकालिकौ तिथिमासौ ग्राह्यौ । तयोरन्यतराज्ञाने प्रस्थानदिनगासवन्निर्णयः । एतयोरप्यविज्ञाने मार्गदर्शं कार्यम् । इदं चाऽऽब्धिकं कर्तुर्भार्यायां रजस्वलायां सत्यामपि सपिण्डकर्मन्नेनैव कार्यम् । एवं गर्भिण्यामपि । मृतस्य भार्यायां रजस्वलायामपि तथैव । सा यद्यपुत्रकस्य भर्तुः श्राद्धकर्त्री चेत्तदा पञ्चमेऽह्नि कुर्यात् । आशौचे तु आशौचनिवृत्तौ तद्दिने एव कार्यम् । तदतिक्रमे कृष्णाष्टम्यामेकादश्यां द्वादश्याममावास्यायां वा कार्यम् । क्षयाहे ग्रहणप्रसक्तौ भोक्तृसंभवे पक्वान्नेनैव कार्यम् । भोक्तुरसंभव आमेन हेम्ना वा कार्यम् । ग्रस्तोदये ग्रस्तास्ते चापि तथैव । एतन्मूलवाक्यानि निर्णयसिन्धुपराशरमाधवीयादौ द्रष्टव्यानि । श्राद्धदिने यद्गृहमत्या भार्यायाः षोडशदिनं पतेत्तदा तत्र विशेषमाह वसिष्ठः—

एकादश्यां यदा राम प्रतिसंबत्सरं दिनम् ।

भार्या त्वृतुमती चैव कथं धर्मः प्रवर्तते ॥

श्राद्धं कुर्याद्भूत कुर्यादाग्राय पितृसेवितम् ।

ऋतुमत्या ऋतुं दद्यादर्धरात्रादनन्तरम् ॥ इति ।

अत्र अपत्रादिप्रत्याब्देकश्राद्धे पार्वणैकोद्दिष्टयोः समबलत्वाद्गीहि-
यववद्विकल्पः । स चाऽऽचाराद्यवस्थित इति सर्वनिबन्धकारसंमतिः ।
अत एव दाक्षिणात्याः पार्वणं कुर्वते मैथिलादय एकोद्दिष्टमिति चन्द्रि-
काकारः । पितृव्यादीनां श्राद्धे विशेषश्चतुर्विंशतिमते—

पितृव्यभ्रातृमातृणां ज्येष्ठानां पार्वणं भवेत् ।

एकोद्दिष्टं कनिष्ठानां दंपत्योः पार्वणं मिथः ॥ इति ।

मातृणां सपत्नमातृणां । दाक्षिणात्यास्त्वेवमेवाऽऽचरन्तीति चन्द्रि-
काकारः । अत्र भ्रातृणामेव वयसा ज्येष्ठत्वं कनिष्ठत्वं च ज्ञेयम् । पितृ-
व्यसापत्नमातृणां तु वयसा कनिष्ठत्वेऽपि स्थानतो ज्येष्ठत्वात्पार्वणमेव ।
अतः पितृमृताहे पितृपितामहप्रपितामहांस्त्रीनुद्दिश्य पार्वणविधिना
श्राद्धं कुर्यात् । मातृमृताहे मातृपितामहीप्रपितामहीरुद्दिश्य कुर्यात् ।
तथाऽपुत्रमातामहस्य तन्मृताहे तस्य तद्द्वर्गमात्रस्य । एवं मातामह्यास्त-
न्मृताहे तद्द्वर्गमात्रस्य । अपुत्रायाः सापत्नमातुस्तन्मृताहे तद्द्वर्गमात्रस्य ।
तथाऽपुत्राणां पितृव्यमातुलभ्रातृणां मृताहे तत्तद्द्वर्गमात्रस्य पार्वणं
कुर्यात् । कनिष्ठभ्रातृणामविवाहितानामेकोद्दिष्टमेव । केचित्सापत्नमातृ-
पितृव्यमातुलज्येष्ठभ्रातृणामपुत्राणां तत्तन्मृताहे तं तमेवोद्दिश्यैकोद्दिष्ट-
विधिना श्राद्धं कुर्यादित्याहुः । ज्येष्ठस्यापि जीवत्पितृकस्य भ्रातुरेको-
द्दिष्टमेव । केचित्पार्वणमिति वदन्ति । सर्वत्र पार्वणमित्यन्ये । अत्रापि
देशाचाराद्यवस्था । आचारावश्यकत्वमाह बृहद्देशातातपः—

देशधर्मं समाश्रित्य वंशधर्मं तथाऽपरम् ।

सूरयः श्राद्धमिच्छन्ति पार्वणं च क्षयेऽहनि ॥ इति ।

बृहन्नारदीयेऽपि—देशाचाराः परिग्राह्यास्तत्तद्देशीयजैर्जनैः ।

अन्यथा पतितो ज्ञेयः सर्वधर्मबहिष्कृतः ॥

सिन्धौ भृगुः—यस्मिन्देशे पुरे ग्रामे त्रैविद्ये नगरेऽपि वा ।

यो यत्र विहितो धर्मस्तं धर्मं न विचारयेत् ॥ इति ।

मित्रबन्धुगुर्याचार्यसपिण्डादीनामपुत्राणामपत्नीकानां यथाधिकारं
यथाचारं पार्वणमेकोद्दिष्टं वा कार्यमिति । विद्यमाने पितरि संन्यस्ते
पतिते वा तत्कर्तृकाणि दर्शाब्दिकमहालयादीन्यावश्यकानि नित्यनैमि-
त्तिकानि श्राद्धानि तत्पुत्रेण जीवत्पितृकेणापि पितुःपित्राद्युद्देशेन
कार्याणि । तदुक्तं कात्यायनेन—

ब्राह्मणादिहते ताते पतिते सङ्गवर्जिते ।
व्युत्क्रमाच्च मृते देयं येभ्य एव ददात्यसौ ॥

सङ्गवर्जिते संन्यस्ते । व्युत्क्रमाच्च मृत इति । व्युत्क्रममृतसपिण्डीकर-
णामावपक्षे तस्य संप्रदानत्वायोग्यत्वाद्येभ्यः पिता स्वपितृजीवनेन
स्वपितामहादिभ्यो ददौ तेभ्यः स्वयं पुत्रो दद्यादित्यर्थः । तथाऽपुत्र-
काणां सापत्नमातृमातामहभ्रातृपितृव्याणां क्षयाहश्राद्धं जीवत्पितृके-
णापि कर्तव्यम् । एतद्विस्तरो रामकृष्णभट्टकृते जीवत्पितृकनिर्णये द्रष्टव्य
इत्यन्यत्र विस्तर इति दिक् ।

अथैकोद्दिष्टश्राद्धकालः । तदाह माधवीये व्यासः—

कुतपप्रथमे भाग एकोद्दिष्टमुपक्रमेत ।
आवर्तनसमीपे वा तत्रैव नियतात्मवान् ॥

एकोद्दिष्टं तु मध्यत इति हारीतः । मध्यतो मध्याह्न इत्यर्थः । मध्या-
ह्नश्च पञ्चधाविभक्तदिनतृतीयभाग इति माधवः । एकोद्दिष्ट इति कर्त-
व्यतोक्ता याज्ञवल्क्येन—

एकोद्दिष्टं देवहीनमेकार्घ्यैकपवित्रकम् ।
आवाहनाग्नौकरणरहितं त्वपसव्यवत् ॥ इति ।

आश्वलायनानां त्वेकोद्दिष्टेऽप्यग्नौकरणादयः पदार्था भवन्त्येव । तद्वृ-
ह्यसूत्रे पार्वणादिचतुर्ष्वप्यग्नौकरणादीनां साम्येनोक्तेरिति चन्द्रिकाकारः ।
देवराहित्यादियाज्ञवल्क्योक्ता धर्मा भवन्त्येव । सूत्राविरुद्धत्वात् ।

अथाऽऽब्धिकश्राद्धप्रयोगः । देशकालकीर्तनान्तेऽस्मत्पितृपितामह-
प्रपितामहानाममुकशर्मणाममुकगोत्राणां वसुरुद्रादित्यस्वरूपाणामेतेषां
तृप्प्रयर्थं प्रत्याब्धिकश्राद्धं सदेवं सपिण्डं पार्वणेन विधिनाऽन्नेन हविषा
श्वः सद्यो वा करिष्य इति संकल्पपूर्वकं दर्शश्राद्धोक्तविधिना तद्वर्गमात्र
स्वैव कुर्यात् । अस्मिन्श्राद्धदिने नित्यतर्पणं तिलरहितं कार्यम् । श्राद्धा-
ङ्गतर्पणं तु परेद्युः स्नानं प्रातःसंध्यां च कृत्वा सतिलमेव । श्राद्धेज्यवर्गस्य
तर्पणं कृत्वा पुनः सर्वकर्मार्थं स्नानं कृत्वाऽवशिष्टमाह्निकं कुर्यादिति ।
यदा विघ्नवशात्क्षयाहे दिवा श्राद्धं न जातं तदा रात्रावपि कार्यमिति
कमलाकरः । प्रथमे संवत्सरेऽतीते क्षयाहदिने यच्छ्राद्धं तत्प्रथमाब्दि-

१ ग स्वस्य जीवत्पितृकत्वात्स्वपि । २ ग 'पुत्राणां । ३ ग 'दिष्टेति' । ४ स. ग. साम्य-
तोक्ते' । ५ ग 'वर्गेषु (गोदे) शेन इ' । ६ क. अ. दिवसे ।

कम् । द्वितीये वत्सरेऽतीते द्वितीयाब्दिकम् । तृतीये वत्सरेऽतीते तृतीयाब्दिकम् । तदूर्ध्वं प्रत्याब्दिकमिति ।

अथ मातृश्राद्धे विशेषः । चन्द्रिकायां स्मृत्यन्तरे—

भर्तुरग्रे मृता नारी सह वा तेन या मृता ।

तस्याः स्थाने नियुञ्जीत विप्रैः सह सुवासिनीम् ॥ इति ।

अथ प्रयोगः । देशकालकीर्तनान्तेऽस्मन्मातृपितामहीप्रपितामहीनाममुकदानाममुकगोत्राणां वसुरुद्रादित्यस्वरूपाणामेतासां तृप्त्यर्थं प्रत्याब्दिकश्राद्धं सदैवं सपिण्डं पार्वणेन विधिनाऽन्नेन हविषा सद्यः करिष्य इति संकल्प्य दर्शश्राद्धोक्तविधिना तद्वर्गमात्रस्यैव कुर्यात् । निमन्त्रणादिषु मात्रादिनामाद्युल्लेखः । मात्राद्यर्घ्यपात्रेषु तिलावापे तिलोऽसि सोमदेवत्य इत्यस्मिन्मन्त्रे पितृनित्यस्य पदस्य नोहः । यथाश्रुतमेव पाठः । एवमुत्तरेष्वपि मन्त्रेषु साधारणपितृशब्दस्य नोहः । यत्रोहप्रसक्तिस्तत्प्रदर्श्यते । पात्राभिमर्शने मातृपात्रं संपन्नम् । पितामहीपात्रं संपन्नम् । प्रपितामहीपात्रं संपन्नमित्यूहः । अस्मन्मातृपितामहीप्रपितामहीः दाः गोत्राः वसुरुद्रादित्यस्वरूपा भवत्स्वावाहयिष्यामि । इत्यावाहने । मातरिदं तेऽर्घ्यम् । पितामहीदं तेऽर्घ्यम् । प्रपितामहीदं तेऽर्घ्यमित्यर्घ्यदाने मन्त्राः । अर्घ्यपात्रासादने मातृभ्यः स्थानमसीतिमन्त्रः । अस्मन्मातृपितामहीप्रपितामह्यो दाः गोत्राः वसुरुद्रादित्यस्वरूपा एष वो गन्ध इत्याद्यर्चनम् । सति संभवे सधवाया मातुर्मृतायाः स्थाने विप्रपद्मौ सुवासिनीमुपवेश्यास्मन्मातुः, गङ्गादायाः काश्यपगोत्राया वसुरुद्राया इदमासनम् । अस्मन्मातः, गङ्गादे काश्यपगोत्रे वसुरुद्र एष ते गन्ध इति सुवासिन्यै गन्धं दत्त्वा हरिद्राकुङ्कुमसिन्दूरगदि दत्त्वा पुष्पधूपदीपान्सम्प्याऽऽच्छादनार्थं स्त्रीपरिधानयोग्यं नवं श्वेतं वस्त्रं कञ्चुकीसहितं दद्यात् । मातृश्राद्धेऽपि ब्राह्मणेभ्यो यज्ञोपवीतानि दद्यादिति हेमाद्रिः । अन्ननिवेदने पात्रालम्भनादि कृत्वा माताऽमुकदाऽमुकगोत्रा वसुरुद्रा देवतेदमन्नं हविः० अस्मन्मात्रेऽमुकदायै गोत्रायै वसुरुद्राया इदमन्नमसृतरूपं० पितामही अमु० देवता० पितामह्यै दायै० इदमन्न० प्रपितामही अमुक० देवता० प्रपितामह्यै दायै० इदमन्न० तिसृणामेकब्राह्मणपक्षेऽस्मन्मातृपितामहीप्रपितामह्योऽमुकदा गोत्रा रूपा देवता इदमन्नं हविः० अस्मन्मातृपितामहीप्रपितामहीभ्योऽमुकदाभ्यो गोत्राभ्यो रूपाभ्य इद-

मन्त्रममृतरूपं० इति यथार्थमूहः । ततः सुवासिनीपात्रस्थमन्नं प्रोक्ष्य
 मात्रे दायै गोत्रायै वसुरूपाया इदमन्नममृतरूपं परिविष्टं परिवेक्ष्यमाणं
 चाऽऽ तृप्तेः स्वधा कव्यं नमो न ममेति निवेदयेत् । मात्रादिद्वयोः सुवा-
 सिन्योर्मृतौ द्वे सुवासिन्यौ भोजयेत् । तिसृणां तथात्वे तिस्रः । अशक्तौ
 सर्वासां स्थान एकां वा सुवासिनीं भोजयेत् । अनेन मम मात्रादीनां
 प्रत्याब्धिकश्राद्धे ब्राह्मणसुवासिनीभोजनेन मातृस्वरूपी जनार्दनवासु-
 देवः प्रीयताम् । इति संकल्पः । तृप्तिप्रश्ने मातरस्तृप्ताः । स्थेत्यूहः । मातृतृ-
 प्यर्थं पिण्डप्रदानं करिष्य इत्यादि । उदकं निनयेत् । शुन्धन्तां मातरः
 शुन्धन्तां पितामह्यः शुन्धन्तां प्रपितामह्य इत्यूहः । पिण्डदान एतत्तेऽ-
 स्मन्मातरमुकदेऽमुकगोत्रे वसुरूपे ये च त्वामत्रानु तेभ्यश्चेति मन्त्रः ।
 एव मुत्तरयोर्मातरमुकदे० गोत्रे रूपेऽभ्यङ्क्ष्वेत्याद्यभ्यञ्जनम् । अङ्क्ष्वे-
 त्यञ्जनम् । अत्र पितरो मादयध्वम्० अमीमदन्त पितरः० एतद्द्वः पितरो०
 नमो वः पितर इपे० मनो न्वाहुयामहे० परेतन पितरः० वीरं मे दत्त पितरः ।
 आधत्त पितरः० एषु मन्त्रेषु नोहः । यथाश्रुतमेव पाठः । अथोरा
 मातरः सन्तु इत्यूहः । विंशेभ्यो दक्षिणादानान्ते सुवासिन्यै दक्षिणां
 दत्त्वा सति संभवे कण्ठसूत्रादिनालंकारान्दद्यात् । मातरः प्रीयन्ता-
 मिति भवन्तो ब्रुवन्तु । उत्तिष्ठत मातरो विश्वदेवैः सह । अनेन मातुः
 प्रत्याब्धिकश्राद्धयज्ञेन भगवान्मातृस्वरूपी० इत्यूहः । अन्यत्सर्वं पितृश्रा-
 द्धवत् । तर्पणेऽस्मन्मातरमित्याद्यूहः । सधवाया मातुर्मृतायाः श्राद्धं
 जीवत्पितृक्रेणापि सपिण्डकं कार्यं वचनात् । सापत्नमातुरपि तथैव ।
 तर्पणं तु तिलरहितं केवलजलेन कार्यम् । शुक्लतिलैरिति केचित् । एवमे-
 वापुत्रायाः सापत्नमातुः श्राद्धप्रयोगः । तत्र मातृस्थाने सापत्नमातुरु-
 ह्यसः । अस्मत्सापत्नमातृपितामहीप्रपितामहीनामित्यादि । एवं पिता-
 मह्यादिश्राद्धेष्वपि । पत्नीश्राद्धे तु अस्मत्पत्नीमातृपितामहीनामित्यु-
 चारणम् । मातामहश्राद्धेऽस्मन्मातामहमातुःपितामहमातुःप्रपितामहा-
 नाम् । पितृव्यश्राद्धेऽस्मत्पितृव्यपितामहप्रपितामहानाम् । मातुलश्राद्धे
 मातुलमातामहमातुःपितामहानाम् । भ्रातृश्राद्धे भ्रातृपितृपितामहाना-
 मित्यादि संकल्पादौ तत्तद्विभवत्योच्चारणम् । विधिस्तु पितृश्राद्धवत् ।
 ऊहपदेषु पित्रादिस्थाने मातामहादिशब्दः प्रयोज्यः । मयूसे दक्षः—

ज्येष्ठभ्रातृपितृज्येष्ठसपत्नीमातरस्तथा ।

एतेषां च मृताहे तु परेऽहनि तिलोदकम् ॥ इति ।

अथान्वारोहणश्राद्धप्रयोगः । श्राद्धदिने पितृश्राद्धार्थं मातृश्राद्धार्थं च पाकद्वयं संपाद्याऽऽपत्तावोदनभेदमात्रं कृत्वैकेनैव पाकेन वाऽपराह्णे देश-कालकथनान्तेऽस्मत्पितृपितामहप्रपितामहानां शर्मणां गोत्राणां वसुरुद्रादित्यस्वरूपाणामस्मन्मातृपितामहीप्रपितामहीनाममुकदानां गोत्राणां वसुरुद्रादित्यस्वरूपाणांतेषां तृप्त्यर्थं प्रत्याब्धिकश्राद्धं सदैवं सपिण्डं पार्वणेन विधिनाऽन्नेन हविषा तन्त्रेण सद्यः करिष्य इति संकल्प्य तन्त्रेणैव वैश्वदेवविप्रनिमन्त्रणं कृत्वा पितृवर्गार्थं विप्रत्रयं मातृवर्गार्थं च विप्रत्रयं प्रतिवर्गमेकैकं वा निमन्त्र्य सर्वं दर्शश्राद्धवत्कुर्यात् । सति संभवे विप्रपद्मौ मात्रार्थं सुवासिनीमुपवेश्य संपूज्य भोजयेत् । वर्गद्वयस्य दर्शवत्पृथक्पिण्डदानम् । तिथिभेदे पृथक्पिण्डदानम् । तिथ्येकत्वे तु द्वयोर्द्विवचनोहेनैकः पिण्डो देय इति केचित् । परेऽहनि वर्गद्वयस्य तिलतर्पणम् । इति सहगमनश्राद्धप्रयोगः ।

पितामहे जीवति पितुः श्राद्धे पितृप्रपितामहवृद्धप्रपितामहानां श्राद्धं कुर्यात् । प्रपितामहे जीवति पितृपितामहप्रवृद्धप्रपितामहानाम् । उभयोर्जीवतोः पितृवृद्धप्रपितामहप्रवृद्धप्रपितामहानाम् । एवं मातामह्यादीनामपि जीवत्ये ज्ञेयम् ।

आशौचादिना मृताहातिक्रमे देशकालकथनान्ते तद्द्वर्गस्य पष्ठ्यन्त-मुच्चारणं कृत्वाऽतिक्रान्तमाब्धिकश्राद्धं करिष्य इति संकल्प्य सर्वं पूर्वोक्तवत्कृत्वा श्वोभूते तिलतर्पणं कुर्यात् । इत्यतिक्रान्तश्राद्धप्रयोगः ।

अथैकोद्दिष्टश्राद्धप्रयोगः । मध्याह्न एव देशकालकीर्तनान्तेऽस्मत्पितृव्यस्यामुकशर्मणोऽमुकगोत्रस्य वसुरूपस्य तृप्त्यर्थं प्रत्याब्धिकश्राद्धं सपिण्डमेकोद्दिष्टविधिनाऽन्नेन हविषा सद्यः करिष्य इति संकल्प्य पितृव्यार्थमेव ब्राह्मणान्ब्राह्मणं वा निमन्त्र्यार्घ्यपात्रासादनात्प्राक्तन सर्वं दर्शवत्कृत्वैकमर्घ्यपात्रं संस्थाप्यैकदर्भमयपवित्रान्तर्हितेऽप आसिच्येत्याद्यावाहनवर्जमर्घ्यदानान्तं कृत्वा तत्पात्रं शुचौ देशे पितृभ्यः रथान-मसीति न्युब्जं कृत्वाऽग्नौकरणं च कृत्वा पिण्डदानकाल एक एव पिण्डः । अन्यत्सर्वमविकृतं दर्शश्राद्धवत् । द्वितीयेऽहनि श्राद्धाङ्गं सतिलतर्पणम् ।

एवं मानुलभ्रात्रादीनां तत्तच्छब्दोहेन प्रयोगो ज्ञेयः । सापत्नमातुरपि तथैव । तत्र संभवे सुवासिनीं भोजयेदिति विशेषः । इत्येकोद्दिष्टश्राद्ध-प्रयोगः ।

अथ संन्यासिनामाब्धिकश्राद्धप्रयोगः । तत्र देशकालोत्कीर्तनान्तेऽ-
 स्मत्पितुरमुकशर्मणो ब्रह्मीभूतस्यामुकगोत्रस्य वसुरूपस्यास्मत्पितामहस्य
 प्रपितामहस्येत्येवं पूर्ववदुच्चार्यतेषां तृप्त्यर्थं प्रत्याब्धिकश्राद्धं सदैवं
 सपिण्डं पार्वणेन विधिनाऽन्नेन हविषा सद्यः करिष्ये । समुदितोच्चारण-
 पक्षेऽस्मद्ब्रह्मीभूतपितृपितामहप्रपितामहानाममुकामुकशर्मणामित्यादि ।
 मन्त्रव्यतिरिक्तस्थले सर्वत्र नामोच्चारणे ब्रह्मीभूतपदोच्चारणमधिकम् ।
 मन्त्रेषु त्वभिध्यानमात्रम् । अन्यत्सर्वं पार्वणश्राद्धवत् । पितामहप्रपिता-
 महयोर्द्वयोरेकस्य वा यतित्वे तन्नामोच्चारणेऽपि ब्रह्मीभूतपदोच्चारणम् ।
 एवमन्येष्वपि श्राद्धेषु । आब्धिकश्राद्धानन्तरं तदानीमेवापरेद्युर्वा
 गुरोराराधनं कुर्यात् । तत्रैवं प्रयोगः । प्रातर्होमानन्तरं ब्रह्मीभूतस्य
 गुरोः समाराधाने गुर्वर्थे भवद्भिः क्षणः कर्तव्यः । ब्रह्मीभूतस्य
 गुरोः समाराधने परमगुर्वर्थे भवद्भिः क्षणः कर्तव्यः । ब्रह्मी० धने
 परमेष्ठीगुर्वर्थे भव० ब्रह्मी० धने परात्परगुर्वर्थे भव०र्तव्यः । एवं
 विप्रचतुष्टयं निमन्त्र्य [*यद्वा विश्वरूपधराचार्यार्थं भवद्भिः क्षणः
 कर्तव्यः । तत्र गुरुत्रयमिति वा चतुरो ब्राह्मणास्त्रिमन्त्रयेत् ।]
 ततः शुक्लपक्षे दिवं गतस्य ब्रह्मीभूतस्य गुरोः समाराधने केशवार्थं
 भवद्भिः क्षणः कर्तव्यः । एवं सर्वत्र नारायणार्थं० माधवार्थं० गोवि-
 न्दार्थं० विष्णवर्थं० मधुसूदनार्थं० त्रिविक्रमार्थं० वामनार्थं० श्रीधरार्थं०
 हृषीकेशार्थं० पद्मनाभार्थं० दामोदरार्थं० । कृष्णपक्षे संकर्षणार्थं० वासुदे-
 वार्थं० प्रद्युम्नार्थं० अनिरुद्धार्थं० पुरुषोत्तमार्थं० अधोक्षजार्थं० नारसिंहार्थं०
 अच्युनार्थं० जनार्दनार्थं० उपेन्द्रार्थं० हर्यर्थं० कृष्णार्थं० इति केशवाद्यर्थं
 संकर्षणाद्यर्थं वा द्वादश । एवं षोडश विप्रान्यतीन्वा मिश्रितान्वा
 निमन्त्र्य मध्याह्ने तानाहूय तेषां स्नानादि विधाय स्वयं स्नातः शुचि-
 राचम्य पवित्रपाणिः प्राणानायम्य देशकालौ संकीर्त्य श्रीनारायण-
 प्रीत्यर्थं ब्रह्मीभूतस्य गुरोराराधनं करिष्ये इति संकल्प्य गन्धाक्षततुल-
 सीकर्पूरमिश्रितजलेन विप्राणां पादप्रक्षालनं कृत्वा तानाचम्य (चाम्य)
 स्वयं चाऽऽचम्य विप्रान्प्राङ्मुखानुदङ्मुखान्वोपवेश्य पादप्रक्षालनोदकं
 पात्रान्तरे गृहीत्वा तत्पात्रं गन्धादिभिरलंकृत्य देवसंनिधौ स्थापयेत् ।
 ततो विप्राणां प्रत्येकं गन्धपुष्पतुलसीदलैः पादावभ्यर्च्य

* धनुषिहान्तर्गतो ग्रन्थो ग पुस्तक एव ।

आनन्दमानन्दकरं प्रसन्नं ज्ञानस्वरूपं निजबोधरूपम् ।
योगीन्द्रमीड्यं भवरोगवैद्यं श्रीमद्गुरुं नित्यमहं नमामि ॥

इति नमस्कुर्यादिति केचित् । कुशासने प्राङ्मुखानुदङ्मुखान्वो-
पवि(वे)श्य ततः पुरुषसूक्तेन प्रत्यृचम् । ॐ नमो नारायणायेति मन्त्रमुक्त्वा
विप्रान्काण्डानुसमयेन पदार्थानुसमयेन वाऽर्चयेत् । गन्धपुष्पधूपदीपा-
च्छादनैः पञ्चोपचारैर्वा पूजयेत् । इदं विष्णुर्वि० गुरुभ्यो नमः । केशवा-
दिभ्यो नमः । आसनादिअत्रगन्धपुष्पधूपदीपाच्छादनान्ताः सर्वे परिपूर्णा
भवन्तु । अर्चनविधे० न्यूनं वि० यस्य स्मृत्या च० मण्डलादि करिष्ये ।
पात्राण्यासाद्याभिधार्य ततः सर्वेषु पात्रेषु पायसादिविशिष्टमन्नं व्यञ्ज-
नादियुक्तं साज्यं सोपंस्करं परिविष्य गायत्र्या प्रोक्ष्य गुरव इदमन्नं परि-
विष्टं परिवेक्ष्यमाणं चाऽऽ तृप्तेः स्वाहा । एवमुत्तरत्र । परमगुरव इदमन्नं० २
परमेष्ठिगुरव इदमन्नं० ३ परात्परगुरवे० ४ केशवायेदमन्नं० ५ नारायणाये० ६
माधवाये० ७ गोविन्दाये० ८ विष्णवे० ९ मधुसूदनाय० १० त्रिविक्र-
माय० ११ वामनाय० १२ श्रीधराय० १३ हृषीकेशाय० १४ पद्मना-
भाय० १५ दामोदरायेदमन्नं० १६ । कृष्णे केशवादिस्थाने संकर्षणाये-
दमन्नं० ५ वासुदेवाय० ६ प्रद्युम्नाय० ७ अनिरुद्धाय० ८ पुरुषोत्तमाय० ९
अधोक्षजाय० १० नारसिंहाय० ११ अच्युताय० १२ जनार्दनाय० १३
उपेन्द्राय० १४ हरये० १५ श्रीकृष्णाय० १६ इत्यन्ननिषेदनं कृत्वा ।
ॐ तद्ब्रह्म । ॐ तद्वायुः । ॐ तदात्मा । ॐ तत्सत्यम् । ॐ तत्सर्वम् ।
ॐ तत्पुरोर्नमः । अन्तश्चरति भूतेषु गुहायां विश्वमूर्तिषु । त्वं यज्ञस्त्वं
वषट्कारस्त्वमिन्द्रस्त्वं रुद्रस्त्वं विष्णुस्त्वं ब्रह्म त्वं प्रजापतिः । त्वं तदाप
आपो ज्योती रसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः सुवरोम् । इत्यनुवाकं जपित्वा ब्रह्मा-
र्पणं इत्यदि ब्रह्मार्पणं कृत्वा (ऽ*नेन ब्रह्मीभूतस्य गुरोः समाराधनेन
ब्राह्मणभोजनेन भगवान्नारायणः प्रीयताम् । ॐ तत्सद्ब्रह्मार्पणमस्तु । यथा-
सुखं जुषध्वम् । अमृतं भुञ्जीताम् (श्रीत) । अमृतोपस्तरणमसि । श्रद्धायां
प्राण इत्यादि । अपेक्षितं याचि०) भुञ्जानानुपनिषद्भागमन्त्राञ्जश्राव-
येत् । तृप्तेषु ॐ तद्ब्रह्मेत्यनुवाकं जपित्वा विप्रैरुत्तरायोशनादिशुद्ध्या-
चमनान्तं कारयित्वा पुनरासनेपूपवेश्य ताम्बूलदक्षिणावस्त्रालंकारादिभिः

* अयं ग्रन्थो ग. पुस्तक एव ।

परितोप्य तीर्थपूजनं कुर्यात् । तद्यथा । गुर्वाराधनाङ्गभृतं तीर्थपूजां
 (जनं)करिष्य इति संकल्प्य चतुरस्रं मण्डलं गोमयेनोपालिष्य परितो
 रङ्गवह्वयादिभिरलंकृत्य मण्डले धान्यराशिं कृत्वा तदुपरि पूर्वस्थापित-
 पादोदककलशं संस्थाप्य तत्र गङ्गादिसर्वतीर्थानि भावयित्वा पुरुषसूक्तेन
 प्रत्यृचं तीर्थराजाय नम इत्युक्त्वा षोडशोपचारैरभ्यर्च्य तत्पात्रं शिरसि
 धृत्वा ॐ लोकः सरस्वत्यायान्त्येष वै देवयानः पन्थास्तपेवान्वारोह-
 न्त्याक्रोशन्तो यान्त्यवर्तिमेवान्यस्मिन्प्रतिपद्य प्रतिष्ठां गच्छन्ति यदा
 दशशतं कुर्वन्त्यथैकमुत्थानं शतायुः पुरुषः शतेन्द्रिय आयुष्येवेन्द्रिये
 प्रतितिष्ठन्ति यदा शतं सहस्रं कुर्वन्त्यथैकमुत्थानं सहस्रसंमितो वा
 असौ लोकोऽमुमेव लोकमभिजयन्ति यदैषां प्रमीयेत यदा वा जीयेरन्न-
 थैकमुत्थानं तद्धि तीर्थम् । इत्यनुवाकशेषम् । ॐ भीषाऽस्माद्वातः पवते ।
 भीषोदेति सूर्यः । भीषाऽस्माद्गिश्चेन्द्रश्च । मृत्युर्धावति पञ्चम इति ।
 सैषाऽऽनन्दस्य मीमांसा भवति । युवा स्यात्साधु युवा ध्यायकः ।
 आशिष्ठो वृद्धिष्ठो बलिष्ठः । तस्येयं पृथिवी सर्वा वित्तस्य पूर्णा स्यात् ।
 स एको मानुष आनन्दः । ते ये शतं मानुषा आनन्दाः । स एको मनु-
 प्यगन्धर्वाणामानन्दः । श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य । ते ये शतं मनुष्यग-
 न्धर्वाणामानन्दाः । स एको देवगन्धर्वाणामानन्दः । श्रोत्रियस्य चाकाम०
 ते ये शतं देवगन्धर्वाणामानन्दाः । स एकः पितृणां चिरलोकलोकाना-
 मानन्दः । श्रोत्रियस्य चा० । ते ये शतं पितृणां चिरलोकलोकानामा-
 नन्दाः । स एक आजानजानां देवानामानन्दः । श्रोत्रियस्य चा० । ते ये
 शतमाजानजानां देवानामानन्दाः । स एकः कर्मदेवानां देवानामानन्दः । ये
 कर्मणा देवानपियन्ति । श्रोत्रियस्य चा० । ते ये शतं कर्मदेवानां देवानामा-
 नन्दाः । स एको देवानामानन्दः । श्रोत्रियस्य चा० । ते ये शतं देवानामा-
 नन्दाः । स एक इन्द्रस्याऽऽनन्दः । श्रोत्रियस्य० । ते ये शतमिन्द्रस्याऽऽ-
 नन्दाः । स एको बृहस्पतेरानन्दः । श्रोत्रिय० । ते ये शतं बृहस्पतेरानन्दाः ।
 स एकः प्रजापतेरानन्दः । श्रोत्रिय० । ते ये शतं प्रजापतेरानन्दाः । स एको
 ब्रह्मण आनन्दः । श्रोत्रिय० । स यश्चायं पुरुषे । यश्चासावादित्ये ।
 स एकः । स य एवंविद् । अस्माल्लोकात्पेत्य । एतमन्नमयमात्मानमुपसं-
 क्रामति । एतं प्राणमयमात्मानमुपसंक्रामति । एतं मनोमयमात्मानमुप-
 संक्रामति । एतं विज्ञानमयमात्मानमुपसंक्रामति । एतमानन्दमयमात्मान-
 मुपसंक्रामति । तदप्येव श्ल को भवति—

यतो वाचो निवर्तन्ते । अप्राप्य मनसा सह । आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान्न
विमेति कुतश्चेति । एतः ह वाव न तपति । किमहं साधु नाकरवम् ।
किमहं पापमकरवमिति । स य एवं विद्वानेते आत्मानं स्पृणुते । उभे
ह्येवैष एते आत्मानं स्पृणुते । य एवं वेद । इत्युपनिषत् । इत्यनुवाकं च
जपित्वा हरिकीर्तनपुरःसरसहर्षनृत्यं कृत्वा तत्पात्रं पुनर्मण्डले संस्थाप्य
चन्द्रनाक्षतपुष्पाणि पूजां कृत्वाऽवशिष्टानि बन्धुभिः सह स्वयं धृत्वा
विप्रान्प्रदक्षणीकृत्य, आनन्दमानन्दकरं प्र० मि ।

गुरुर्वह्ना गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः ।

गुरुरेक(कः) परं ब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥

इत्यादिमन्त्रैर्विप्रांस्तीर्थराजं च नमस्कृत्य गुर्वर्थविप्रहस्ते पादोदक-
कलशं दत्त्वा तदाज्ञया तत्तीर्थं मन्त्रेण गृह्णीयात् । तत्र मन्त्रः—

अविद्यामूलशमनं सर्वपापप्रणाशनम् ।

गुरुपादोदकं चित्रं संसारदुःखनाशनम् ॥

पुत्रादिकामनायां तु—

शोषणं पापपङ्कस्य दीपनं ज्ञानतेजसः ।

गुरुपादोदकं चित्रं पुत्रपौत्रप्रवर्धनम् ॥

इति मन्त्रेण गृह्णीयात् । ततो विप्रान्प्रणम्य तानन्यांश्च दक्षिणालं-
कारादिभिस्तोषयित्वा सन्मानपुरःसरं ताननुव्रज्य कर्मेश्वरार्पणं कृत्वा
सुहृद्युतो भुञ्जीतेति । इत्थं विस्तरेणाऽऽराधनकरणाशक्तौ यथाशक्तिं
ब्राह्मणानाहूय पादप्रक्षालनपूर्वकं गन्धादिभिर्दृष्टाक्षरमन्त्रेणाम्यर्च्य ब्रह्मी-
भूतगुरुद्वेषेण भोजयेदिति । सकृन्महालयश्राद्धानन्तरमप्येवमेवाऽऽरा-
धनम् । इदमाराधनं चतुर्विधानामपि संन्यासिनां समानमेव । चतुर्विधा
भिक्षवस्तूक्ताश्चन्द्रिकायाम्—

चतुर्विधा भिक्षवस्तु विख्याता ब्रह्मणो मुखात् ।

कुटीचको बहूदको हंसश्चैव तृतीयकः ॥

चतुर्थः परंहंसश्च संज्ञाभेदैः प्रकीर्तिताः ॥ इति ।

एषां लक्षणानि तत्रैव ज्ञेयानि । इति संन्यासिनामाराधनप्रयोगः ।

अथ विधवाकर्तृकश्राद्धम् । स्मृतिसमुच्चये—

१ क. ख. 'सरं ह' । २ क. ख. 'गि पूजाव' । ३ ग. 'तदत्तं तीर्थम्' । ४ क. ख. 'व्य-
द' । ५ ग. 'क्ति यतीन्ब्राह्म' । ६ क. ख. 'रभ्य' । ७ ग. 'ति । इ' । ८ ग. 'रमहंसश्च ज्ञा' ।

स्वभर्तृप्रभृतित्रिभ्यः स्वपितृभ्यस्तथैव च ।

विधवा कारयेच्छ्राद्धं यथाकालमतन्द्रिता ॥ इति ।

इदं च पद्मदैवत्यं दर्शश्राद्धादिविषयमिति मयूसे चन्द्रिकायां च ।
तीर्थमहालयादौ तु स्मृतिसंग्रहे—

चत्वारि पार्वणानीह विधवायाः सदैव हि ।

स्वभर्तृश्वशुरादीनां मातापित्रोस्तथैव च ॥

ततो मातामहानां च श्राद्धदानमुपक्रमेत् ॥ इति ।

अत्र मातामहादयः सपत्नीका ज्ञेयाः । सपत्न्यां मृतायां भर्त्रादयोऽपि
सपत्नीकाः । श्वश्रुजीवत्वे तु सपत्न्या भर्तृपार्वणोत्तरमेकोद्दिष्टम् । केचि-
त्पट्टपार्वणात्मकमष्टादशदैवत्यमिति वदन्ति । श्वश्रूणां च विशेषेण
मातामह्यास्तथैव चेति वचनात् । शक्तौ सत्यां स्वपितृव्यादीनामप्येको-
द्दिष्टानि कर्तव्यानीति मयूखादौ । अत्र यथाचारं व्यवस्था ।

अथ प्रयोगः । श्राद्धकर्त्री श्राद्धदिने देशकालौ स्मृत्वोत्तरीयवस्त्रेण
प्राचीनाधीतं कृत्वाऽस्मद्भर्तृतत्पितृतत्पितृणाममुकशर्मणाममुकगोत्राणां
वसुरुद्रादित्यस्वरूपाणामेतेषां तृप्त्यर्थं प्रत्यादिकश्राद्धं सदैवं सपिण्डं
पार्वणेन विधिनाऽग्नेन हविषा सद्यः करिष्ये । दर्शादौ तु भर्तृवर्गोच्चारणा-
नन्तरम् । अस्मत्पितृपितामहप्रपितामहानां शर्मणां गोत्राणां सपत्नी-
कानां वसुरुद्रादित्यस्वरूपाणामित्युल्लेखः । तीर्थमहालयादौ तु अस्मद्भ-
र्तृसपत्नीकतत्पितृतत्पितृणां शर्मणां गोत्राणां वसु०पाणाम् । अस्मत्पि-
तृपितामहप्रपितामहानां शर्मणां० । अस्मन्मातृपितामहीप्रपितामहीनाम-
मुकदानाममुकगोत्राणां सपत्नीकानां वसुरुद्रादि० पाणाम् । अस्मन्माता-
महमातुःपितामहमातुःप्रपितामहानाममुकशर्मणाममुकगोत्राणां सपत्नी-
कानां वसुरुद्रादित्यस्वरूपाणामेतेषां तृप्त्यर्थं०इत्युल्लेखः । अथवा भर्त्रा-
दित्रयाणामपि सपत्नीकानामुल्लेखः । मयूसे तथैव दर्शनात् । पट्टपा-
र्वणपक्षे भर्तृपार्वणानन्तरम् । अस्मच्छ्रुतच्छ्रुतच्छ्रुणाममुकदानां
गोत्राणां वसु०णाम् । पितृमातृमातामहपार्वणानन्तरम् । अस्मन्माताम-
हीमातुःपितामहीमातुःप्रपितामहीनाममुकदानाममुकगोत्राणां वसु०पा-
णाम् । अस्मिन्पक्षे भर्तृवर्गस्य सपत्नीरहितस्योल्लेख कृत्वा, अस्मत्सपत्न्या
अमुकदाया गोत्राया वसुरुद्राया इत्युल्लेखः । एकोद्दिष्टानां करणपक्षे—

अस्मत्पुत्रस्यास्मत्कन्याया अस्मत्पितृव्यस्यारमन्मातुलस्यास्मद्भ्रातुरि-
त्यादि यथाधिकारमुल्लेखं कृत्वाऽमुकश्राद्धं करिष्य इति स्वयं संकल्पं
कृत्वा कंचिद्ब्राह्मणमृत्विक्त्वेन परिकल्प्य तं ब्रूयात् । ममाऽऽज्ञया त्वमि-
दममुकश्राद्धार्यं कर्म कुरु इति । कर्ता करिष्याभीत्युक्त्वा सर्वमपि
समन्त्रकं श्राद्धविधिं कुर्यात् । तत्र विशेषः । अनुज्ञाकर्त्र्या भर्तुरमुक-
शर्मणः० तत्पितुरमुकशर्मणः० तत्पितुरमुकशर्मणः० । अनुज्ञाकर्त्र्याः पितु-
रित्यादि तत्तद्विभक्त्यूहेन प्रयोगः । ऋत्विक्कर्मकाले तद्यज्ञोपवीतित्वेऽनु-
ज्ञाऽपि यज्ञोपवीतिता कर्तव्या । तत्प्राचीनावीतित्वे तथा प्राचीनावी-
तिता कर्तव्या । तर्पणं तु विधवाकर्तृकमेव । श्राद्धकर्तृनियमास्तु ऋत्वि-
जोऽनुज्ञाकर्त्र्याश्च समानाः । अथवा विधवा स्वयमेव वैदिकमन्त्रवर्जं
सर्वं विधिं कुर्यात् । मन्त्रसाध्यं कर्मापि तूष्णीं कर्तव्यमेव । ब्राह्मणद्वारा
श्राद्धप्रयोगेऽपि मन्त्ररहितः प्रयोग इति बहवः । क्षयाह एकोद्दिष्टपक्षे
तद्धर्मण श्राद्धं कुर्यात् । कन्यायाः स्वपितृश्राद्धप्रसक्तावप्येवमेव विधिः ।
अपुत्रस्य विधवा पत्नी नित्यतर्पणमपि कुर्यात् ।

तर्पणं प्रत्यहं कार्यं भर्तुः कुशतिलोदकैः ।

तत्पितुस्तत्पितुश्चापि नामगोत्रादिपूर्वकम् ॥

इति स्कान्दोक्तेः । अपुत्रा पुत्रवत्पत्नी पुत्रकर्म समाचरेत् । इति
वचनात् । यदि विधवा पूर्तादौ वृद्धिश्राद्धं करोति तदा स्वभर्तृप्रभृति-
त्रयाणां स्वमात्रादितिस्त्र्याणां स्वपित्रादित्रयाणां स्वमातामहादित्रयाणां
सपत्नीकानां स्वयं प्रतिनिधिद्वारा वा कुर्यात् । इति वाजपेययाजि-
पद्धतौ । विधिस्तु पूर्वोक्तप्रकारेण । विप्राः षड्विंशतिर्दश वा । पार्व-
णाद्यजीवने द्वारलोपात्तत्पार्वणलोप एव । इति विधवाकर्तृकश्राद्धम् ।

अथानुपनीतकर्तृकश्राद्धम् । पित्रोर्दशाब्दिकादिश्राद्धे पुत्रान्तराभावे
कृतचूडोऽकृतचूडो वाऽनुपनीतः पुत्रोऽपि श्राद्धं कुर्यात् । तत्र विधिः
प्रयोगश्च विधवाकर्तृकश्राद्धोक्तवत् । अनुज्ञाकर्तुः पितुरित्यादिविशे-
षोऽकृतचूडश्चेत्संकल्पमात्रं कृत्वा सर्वं ब्राह्मणद्वारा कारयेत् । अत्र
मन्त्रवर्जश्राद्धप्रयोगो बहुसंमतः । इत्यनुपनीतकर्तृकश्राद्धम् ।

अथ सकृन्महालयश्राद्धम् । तत्र भाद्रपदकृष्णे प्रतिपदादिनिपिद्ध-
दिनरहिते कार्यम् । तत्र निपिद्धानि—प्रतिपत्पष्ठीसप्तम्येकादशीत्रयो-
दशीचतुर्दशीतिथयः । रविभौमभृगुवासराः । भरणीकृत्तिकारोहिणीमघा-

रेवतीनक्षत्राणि । स्वजन्मभं तत्पूर्वोत्तरे च नक्षत्रे इति सिन्धौ ।
जन्मभं ततो दशममेकोनविंशं च नक्षत्रमिति चन्द्रिकायाम् । गण्डव्य-
तीपातवैधृतियोगा इति । अस्यापवादो हेमाद्रौ—

अमापाते भरण्यां च द्वादश्यां पक्षमध्येके ।

तिथि वारं च नक्षत्रं योगं च न विचारयेत् ॥ इति ।

पक्षमध्यमष्टमी । पितृमृताहे निपिद्धदिनेऽपि सकृन्महालयः कार्यं
इत्युक्तं निर्णयसिन्धौ । कात्यायनोऽपि—

अशक्तः पक्षमध्ये तु करोत्येकदिने यदा ।

निपिद्धेऽपि दिने कुर्यात्पिण्डदानं यथाविधि ॥ इति ।

तथा—या तिथिर्यस्य मासस्य मृताहे तु प्रवर्तते ।

सा तिथिः पितृपक्षे तु पूजनीया प्रयत्नतः ॥

तिथिच्छेदो न कर्तव्यो विनाऽशौचं यदृच्छया ।

पिण्डश्राद्धं च कर्तव्यं विच्छित्तिं नैव कारयेत् ॥ इति ।

द्राक्षिणात्यास्त्वेवमेवाऽऽचरन्ति । अस्मिन्पक्षे पौर्णमास्यां मृतस्य
सकृन्महालयश्राद्धं त्वमावास्यायां कार्यम् । केचिद्द्वादपदपौर्णमास्यां
कार्यमिति वदन्ति तन्न युक्तिसहम् । पौर्णमास्याः कृष्णपक्षीयत्वासंभ-
वात् । षोडशमहालयश्राद्धपक्षे पौर्णमासीमारभ्यामावास्यापर्यन्तं षोडश-
दिनसंपादनं हेमाद्रिणा पाक्षिकमुक्तं तदपि ग्रन्थकारैरनङ्गीकृतम् ।
अतः शुक्लपञ्चम्यां मृतस्य यथा भाद्रपदकृष्णपञ्चम्यां कुर्वन्ति तथेदमपि
शुक्लपञ्चदश्यां मृतस्य कृष्णपञ्चदश्यामेव सकृन्महालयश्राद्धं युक्तमिति ।
यदा विघ्नवशेन पक्षमध्ये सकृन्महालयश्राद्धं न जातं चत्तदाऽऽश्विनशुक्ल-
पञ्चमीपर्यन्तं कर्तव्यमिति कौस्तुभे । आश्विनशुक्लपञ्चमीमारभ्याऽऽश्वि-
नकृष्णपञ्चमीपर्यन्तं पूर्वोक्तप्रतिपदादिनिपिद्धरहिते कस्मिंश्चिद्दिने कार्य-
मिति कमलाकरः । तत्राप्यसंभव आश्विनकृष्णामायां कार्यम् । तत्राप्य-
संभवे वृश्चिकसंक्रमणप्रवेशपर्यन्तमपि कार्यम् । एतच्च पितुर्मरणे प्रथ-
माब्दे कृताकृतमिति सिन्धौ । केचिद्द्राक्षिणात्या भाद्रपदकृष्णप्रतिपदि
अनुच्छिष्टसंज्ञकं कुर्वन्ति । पठन्ति च—

प्रथमाब्दे प्रोष्ठपद्यां पितुः श्राद्धं कृताकृतम् ।

अनुच्छिष्टं तु नन्दायां प्रोष्ठपद्यां तु कारयेत् ॥ इति ।

तदेतन्महाग्रन्थानुपलम्भाच्चिन्त्यम् । अत्र विश्वे देवा धूरिलोचनसं-
ज्ञकाः । अपि कन्यागते सूर्ये काम्ये च धूरिलोचनाविति स्मरणात् ।

अत्र कन्यागत इत्युपलक्षणम् । तेनागतेऽप्यपरपक्षश्राद्धे धूरिलोचनाधेय
केचित्पुरुषार्द्रवा एवेति वदन्ति । अपरे तु महालयश्राद्धस्य नित्यत्वे
पुरुषार्द्रवौ । काम्यत्वे धूरिलोचनाधित्याहुः ।

अथ पितरः । तेषामनेकपक्षत्वेऽपि द्वाक्षिणात्वाचारानुसारेणैवोच्यन्ते ।
तत्राऽऽदौ पितृपार्वणम् । ततो मातृपार्वणम् । ततः सपत्नमातुरेकोद्दिष्टम् ।
तदनन्तरं मातामहपार्वणम् । ततो मातामहीपार्वणम् । ततः पत्न्या
एकोद्दिष्टम् । तत उपनीतस्य पुत्रस्य । ततो विवाहिताया दुहितुः । ततः
पितृव्यमातुलभ्रातृणां सपत्नीकानां समुतानां प्रत्येकमेकोद्दिष्टानि । ततः
पितृभगिनीमातृभगिन्यात्मभगिनीनां सभर्तृकाणां सापत्यानां प्रत्येकमे-
कोद्दिष्टानि ततः श्वशुरस्य सपत्नीकस्य समुत्स्यैकोद्दिष्टम् । ततः सपत्नी-
कस्य गुरोः । ततः शिष्यस्य । तत आप्तस्य । तदनन्तरं विभवे सती-
च्छायां च सत्यां स्वामिकृत्विकूपोपकाचार्यजामातृद्वयदानां सापत्न-
मातुः पित्रोश्चैकोद्दिष्टानि । गुर्वादीनां लक्षणमाह याज्ञवल्क्यः—

स गुरुर्यः क्रियां कृत्वा वेदमस्मै प्रयच्छति ।

एकदेशमुपाध्याय ऋत्विग्याज्यकृद्बुध्यते ॥ इति ।

क्रियामुपनयनम् । अत्र पत्न्यादीनां बहुत्वे तावन्ति ज्येष्ठकमे-
णैकोद्दिष्टानि । तथा सपत्नमातृणामपि । जीवन्मातृकोऽपि साप-
त्नमातुरेकोद्दिष्टं कुर्यान्न पार्वणम् । केचित्पितामह्याः सपत्नीसत्त्वे
तस्या अप्येकोद्दिष्टमित्याहुः । एवं प्रपितामह्याः सपत्न्या अपि ।
अन्ये तु अस्मन्मातृतरसपत्नीपितामहीतत्सपत्नीप्रपितामहीतत्सपत्नी-
नाममुकामुकदानामित्याद्युल्लेखेन मातृपार्वण एव संनिवेशः कार्य
इति वदन्ति । पितृव्यादीनां जीवत्वे तत्पत्न्यादीनां नोल्लेखः । द्वार-
लोपात् । एवं पितामह्यादिष्वप्युक्तम् । एते पितरो महालयश्राद्धे
तीर्थश्राद्धे गयाश्राद्धे नित्यतर्पणे च ज्ञेयाः । अत्र पार्वणैकोद्दिष्टवि-
धिना प्रयोगः । प्राधान्यं पार्वणस्यैव । अत एकोद्दिष्टे देवराहित्येऽपि
प्राधान्यान्तुरोधेन देवं कर्म भवत्येव । तथैवापराह्णकालोऽपि । यदेको-
द्दिष्टधर्मकर्म नाऽऽवाहनादि तद्यथासंभवं कर्तव्यमेव । एकोद्दिष्टे तूष्णी-
मावाहनमिति कल्पतरुः । इदं श्राद्धमन्त्रेणैव सपिण्डकं कर्तव्यम् । एक
एव पाकः । अत्र वैश्वदेवार्थं द्वायकं वा ब्राह्मणं निमन्त्र्य पित्रादीनां

प्रत्येकमेकैकं निमन्त्रयेत् । अन्ते च महाविष्ण्वर्थमेकं ब्राह्मणं निमन्त्रय
संपूज्य भोजयेदिति कौस्तुभे । अशक्तौ प्रतिपार्वणमेकैकं प्रत्येकोद्विष्ट-
मेकैकं निमन्त्रयेत् । तत्राप्यसंभवे यथा लाभं निमन्त्रय यथासंभवं
समावेशः कर्तव्यः । यथा । यदा त्वष्टौ विप्रा लभ्यन्ते तदा देवस्थान
एकः । पितृपार्वण एकः । मातृपार्वण एकः । सापत्नमातृस्थान एकः ।
मातामहपार्वण एकः । मातामहीपार्वण एकः । पत्नीस्थान एकः ।
पुत्रादिस्थान एकः । एवमष्टौ । सप्तपक्षे देवस्थानादिषु पण्णां समावेशः
पूर्ववत् । पत्न्यादीनां सर्वेषां स्थान एक इति । पत्न्यपक्षे देवस्थान एकः ।
पितृपार्वण एकः । मातृपार्वणे सापत्नमातृस्थाने चैकः । मातामहादि-
पार्वणद्वये द्वौ । पत्न्यादिस्थाने चैक इति । पञ्चपक्षे मातामहमातामही-
पार्वणयोरैकः । अन्यत्र पद्मविप्रपक्षवदिति । यदा तु चत्वारो विप्रास्तदा
देवस्थान एकः । पितृमातृपार्वणयोः सापत्नमातृस्थाने चैकः । माता-
महमातामहीपार्वणयोरैकः । पत्न्यादिस्थानेष्वेक इति । यदा तु त्रय-
स्तदा देवस्थान एकः । पार्वणेषु सापत्नमातरि चैकः । पत्न्यादिष्वेकः ।
यदा द्वौ विप्रौ लभ्येते तदा देवस्थान एकः । पितृस्थान एकः । एक-
स्मिन्ब्राह्मणे सर्वानाचार्यान्तान्प्रपूजयेदिति स्मृत्यन्तरात् । यदा त्वेक
एव तदा देवे कृत्वा तु नैवेद्यमित्यादि पूर्वोक्तविधिः । सापत्नमातृबहुत्वे
ज्येष्ठादिक्रमेण सर्वासामुल्लेखः । सति विभवे प्रत्येकमेकैकं विप्रं निमन्त्र-
येत् । सर्वासां स्थान एकं वा । अत्र परेद्युस्तर्पणम् । सकृन्महालये श्वः
स्यादिति वचनात् । एतच्च महालयश्राद्धं पितरि संन्यस्ते पतिते वा
जीवति तत्पुत्रेण जीवत्पितृकेणापि पितुः पित्रादीनुद्दिश्य पिण्डरहित
सांकल्पेन विधिना कार्यमिति कमलाकरः ।

भाद्रपदकृष्णपक्षे प्रतिपदादि पञ्चम्याद्यष्टम्यादि दशम्यादि वा दर्शा-
न्तमहरहर्महालयश्राद्धं कार्यम् । एवं करणाशक्तौ पितृमृताहे सकृन्म-
हालयश्राद्धं कार्यम् । तत्प्रयोगः-अपराह्णे देशकालकीर्तनान्ते प्राचीना०
अस्मत्पितृपितामहप्रपितामहानाममुकशर्मणाममुकगोत्राणां वसुरुद्रादि-
त्यस्वरूपाणाम् । अस्मन्मातृपितामहीप्रपितामहीनाममुकदानाम० गो०
वसु० णाम् । अस्मत्सापत्नमातुः० दायाः गोत्रायाः वसुरुद्रायाः ।
अस्मन्मातामहमातुःपितामहमातुःप्रपितामहानां शर्मणां गोत्राणां वसु०
पाणाम् । अस्मन्मातामहीमातुःपितामहीमातुःप्रपितामहीनां० दानां गो०

व० णाम् । अस्मत्पत्न्याः० दायाः० गोत्राया वसुरूपायाः । अस्म-
त्पुत्रस्य शर्मणो गोत्रस्य वसु० अस्मद्दुहितुः० दायाः० गोत्राया वसु०
अस्मत्पितृव्यस्य शर्मणो गोत्रस्य सपत्नीकस्य ससुतस्य वसुरूपस्य । अस्म-
न्मातुलस्य शर्मणो गोत्रस्य सपत्नीकस्य ससुतस्य वसुरूपस्य । अस्म-
न्नातुः शर्मणो गोत्रस्य सपत्नीकस्य ससुतस्य वसु० । अस्मत्पितृभ-
गिन्याः० दायाः० गोत्राया वसु० समर्तृकायाः सापत्यायाः । अस्मन्मातृ-
भगिन्याः० दायाः० गोत्रायाः समर्तृकायाः सापत्याया वसु० । अस्मदात्म-
भगिन्या० दायाः० गो० समर्तृकायाः सापत्याया वसु० । अस्मच्छृ-
णुरस्य शर्मणो गोत्रस्य सपत्नीकस्य सापत्यस्य वसु० । अस्मद्गुरोः
शर्मणः गोत्रस्य सपत्नीकस्य सापत्यस्य वसु० । अस्मदाप्तस्य शर्मणो
गोत्रस्य सप० साप० वसुरूपस्य । सति विभव इच्छायां च सत्यामृत्वि-
गादीनामपि पठ्यन्तमुल्लेखं कृत्वैतेषां तृप्त्यर्थं सकृन्महालयापरपक्षिणं
भाद्धं सदैवं सपिण्डं पार्वणैकोद्दिष्टविधिनाऽन्नेन हविषा सद्यः करिष्य
इति संकल्प्य विप्रनिमन्त्रणादिदर्शयद्देवार्चनान्तं कुर्यात् । पितृर्चने
विशेषः—तत्राऽऽसनप्रदानादि पित्र्ये क्षणः क्रियतामित्यन्तं कृत्वाऽभ्यु-
क्षितायां भुवि दर्भेषु पितृवर्गार्थं पात्रत्रयं मातृवर्गार्थं च पात्रत्रयं दर्भ-
त्रयात्मकपवित्रयुक्तं संस्थाप्य सापत्नमात्रार्थमेकदर्भात्मकपवित्रयुक्तमेकं
पात्रं संस्थाप्य मातामहवर्गार्थं मातामहीवर्गार्थं च प्रत्येकं पात्रत्रयं दर्भ-
त्रयात्मकपवित्रयुक्तं संस्थाप्य पत्न्याद्यर्थं प्रत्येकमेकैकमेकदर्भमयपवित्र-
युक्तं संस्थापयेत् । तेषु क्रमेणाप आसिच्य शं नो देवीरिति सकृद्गनुमन्त्र्य
तिलोऽसीतिमन्त्रावृत्त्या प्रतिपात्रं तिलानोप्य गन्धपुष्पादि क्षिप्त्वा
पितृपात्रं संपन्नमित्यादि यथालिङ्गं क्रमेणाभिसृशेत् । एतादृशस्थले
पितृव्यादीनां मन्त्रेषु सपत्नीकशब्दस्य न वा प्रयोगः । किं त्वभि-
ध्यानमात्रम् । एवमुत्तरत्रापि । तिलानादाय, अस्मत्पितृपितामहप्रपि-
तामहाञ्जशर्मणो गोत्रान्वसुरूपान् । अस्मन्मातृपितामहीप्रपितामहीर्दाः,
गोत्रा वसुरूपाः । अस्मन्मातामह० पान् । अस्मन्मातामही० हीः० दाः,
गोत्रा व० पाः । भवत्स्वावाहायिष्यामीति । अत्रेकोद्दिष्टानां नोल्लेखः । न
चाऽऽवाहनम् । पित्रादिवर्गचतुष्टयमात्रस्याऽऽवाहनं कृत्वाऽऽयन्तु न इत्यु-
पस्थायाध्यपात्राणि तत्तद्वाह्ये निधाय स्वधाऽर्घ्या इति मन्त्रावृत्त्या
प्रतिविप्रं निवेद्य पितरिदं तेऽर्घ्यमित्यादि तत्तद्विभक्त्यूहेनाध्यदानं कृत्वा
पितृपात्र एव सर्वपात्रस्थानपः (पां) संस्रवान्समवनीय ताभिरग्निः पुत्र-

कामश्चेन्मुखमङ्कत्वा प्रपितामहपात्रेणापिदध्यात् । ततो गन्धदानादि
समानम् । तत्तन्नामविमक्त्यूहः पित्रादिसर्वविप्रपाणिषु होमः । पिण्ड-
दाने पितृवर्गार्थं लेखां कृत्वा तत्पश्चान्मातृवर्गार्थं तत्पश्चान्मातामहव-
र्गार्थं तत्पश्चान्मातामहीवर्गार्थं च तत्पश्चात् सर्वैकोद्दिष्टार्थं दीर्घलेखा-
मालिखेत् । अपि वाऽऽग्नेयीसंस्था दक्षिणापवर्गाः पञ्च लेखा आलिखेत् ।
केचित्पत्येकोद्दिष्टमेकैकां लेखामित्येवं पङ्क्त्याऽऽकारेण लेखा लेखनीये-
त्याहुः । प्रतिलेखं बर्हिरास्तरणं प्रतिदेवतमुदकनिनयनं चाऽऽवर्तते ।
सर्वपितृपिण्डानां संनिवेशो यथा भवेत्तथैकं महद्बर्हिरास्तीर्य तत्तद्रेखा-
स्थबहिःप्रदेशे तत्तत्पिण्डान्दद्यादिति स्मृत्यर्थसारादौ । उदकनिनयने
शुन्धन्तां पितर इत्यादिप्रपितामह्यन्तमुक्त्वा शुन्धन्तां सापत्नमातरः ।
शुन्धन्तां मातामहा इत्यादिमातुःप्रपितामह्यन्ते शुन्धन्तां पत्न्यः ।
शुन्धन्तां पुत्राः । शुन्धन्तां दुहितरः । शुन्धन्तां पितृव्याः । शुन्धन्तां
मातुलाः । शुन्धन्तां भ्रातरः । शुन्धन्तां पितृभगिन्यः । शुन्धन्तां मातृ-
भगिन्यः । शुन्धन्तामात्मभगिन्यः । शुन्धन्तां श्वशुराः । शुन्धन्तां
गुरवः । शुन्धन्तामाप्ता इति । पत्न्यादियहुत्वे तु तत्तत्संख्यया तत्तन्म-
न्त्रस्याऽऽवृत्तिः । ततस्तत्तन्नामाद्युच्चारपूर्वकं पिण्डान्दत्त्वाऽऽप्तपिण्डस्य
पुरस्ताच्चतुर्भिर्मन्त्रैर्मन्त्रलिङ्गोक्तान्पितृनुद्दिश्य चतुरः पिण्डान्दद्यात् । ते
च मन्त्राः—

आ ब्रह्मणो ये पितृवंशजाता मातुस्तथा वंशभवा मदीयाः ।
वंशद्वयेऽस्मिन्मम दासभूता भृत्यास्तथैवाऽऽश्रितसेवकाश्च ॥
मित्राणि सख्यः पशवश्च वृक्षा इष्टाश्च स्पृष्टाश्च कृतोपकाराः ।
जन्मान्तरे ये मम संगताश्च तेभ्यः स्वधा पिण्डमहं ददामि ॥ १ ॥

पितृवंशे मृता ये च मातृवंशे तथैव च ।
गुरुश्वशुरबन्धूनां ये चान्ये बान्धवाः स्मृताः ॥
ये मे कुले लुप्तपिण्डाः पुत्रदारविवर्जिताः ।
क्रियालोपगताश्चैव जात्यन्धाः पङ्क्वस्तथा ॥
विरूपा आमगर्भाश्च ज्ञाताज्ञाताः कुले मम ।
धर्मपिण्डो मया दत्तो ह्यक्षय्यमुपतिष्ठतु ॥ २ ॥
उच्छिन्नकुलवंशानां येषां दाता कुले न हि ।
धर्मपिण्डो मया दत्तो ह्यक्षय्यमुपतिष्ठतु ॥ ३ ॥

अंसिपत्रवने घोरे कुम्भीपाके च ये गताः ।

तेषामुद्धरणार्थाय इमं पिण्डं ददाम्यहम् ॥ ४ ॥

ततः, अत्र पितरो मादयध्वमित्यादि दर्शश्राद्धवत् । पत्न्या वर्गचतु-
ष्टयमध्यपिण्डप्राशनमिति विशेषः । परेद्युः सर्वाङ्घ्रिपतृसितलोदकेन तर्पयेत् ।
सकृन्महालये श्वः स्यादिति वचनात् । इति सकृन्महालयश्राद्धप्रयोगः ।

अथ नित्यश्राद्धम् । तदाह हेमाद्रौ व्यासः—

अहन्यहनि यच्छ्राद्धं तन्नित्यमिति कीर्तितम् ।

मार्कण्डेयपुराणे—कुर्यादहरहः श्राद्धमन्नाद्येनोदकेन वा ।

पितृनुद्दिश्य विप्रांश्च भोजयेद्विप्रमेव वा ॥

इदं पद्मदेवत्यं देवहीनं च ।

नित्यश्राद्धं देवहीनं नियमादिविर्जितम् ।

दक्षिणारहितं चैव दातृमोक्तृयतोऽज्ज्ञितम् ॥

इति काशीखण्डात् ।

उपवेश्याऽऽसनं दत्त्वा संपूज्य कुसुमादिभिः ॥

निर्दिश्य भोजयित्वा तु किञ्चिद्दत्त्वा विसर्जयेत् ॥

इति प्रचेतस उक्तेर्दक्षिणायां विकल्पः । शक्ताशक्तत्वेन वा व्यवस्था
बोध्या । अस्मिन्श्राद्धे देशकालान्ननियमा न सन्ति । उत्तमान्नसद्भावे
तु जघन्यं न दद्यादिति चन्द्रिकायाम् । न कर्तृभोक्तृनियमाः । इदं
दिवाऽसंभवे रात्र्यावपि प्रहरपर्यन्तं कार्यमिति तत्रैव । दिवाऽसंभवे लोप
एवेति पृथ्वीचन्द्रः । इदं पद्मदेवते श्राद्धान्तरे प्राप्ते सति प्रसङ्गसिद्धे-
नित्यश्राद्धं पृथङ् न कार्यम् । भिन्नदेवताके वार्षिकादौ तु तच्छ्राद्धान्न-
शेषेणैव कार्यम् । अत्रेतिकर्तव्यतामाह प्रचेताः—

नाऽऽमन्त्रणं न होमं च नाऽऽह्वानं न विसर्जनम् ।

न पिण्डदानं विकिरं न दद्यादत्र दक्षिणाम् ॥

अत्र शक्तश्चेत्प्रतिदेवतमेकैकं विप्रमेयं पद्मविप्रान्भोजयेत् । प्रतिपार्ष-
णमेकैकमेव द्वौ वा । अशक्तश्चेदेकं वा । एकमप्याशयेद्विप्रं पणामप्य-
न्वहं गृहीति ध्यासोक्तेः । विप्रालाभे त्वाह कात्यायनः—

उत्कृष्टं नास्ति चेदन्नं भोक्ता भोज्यमथापि वा ।

अभ्युद्धृत्य यथाशक्ति किञ्चिदन्नं यथाविधि ॥

पितृभ्य इदमित्युक्त्वा स्वधाकारमुदाहरेत् । इति ।

तत्प्रतिपत्तिमाह विष्णुः-तदन्नं भिक्षवे दद्यात्तदलाभे गोभ्यो दद्या-
दग्नौ वा क्षिपेदिति ।

अथ नित्यश्राद्धप्रयोगः । आचम्य पवित्रपाणिः प्राणानायभ्य देश-
कालौ स्मृत्वा प्राचीनावीती, अस्मत्पितृपितामहप्रपितामहानाममुकश-
र्मणाममुकगोत्राणां वसुरुद्रादित्यस्वरूपाणां सपत्नीकानाम् । अस्म-
न्मातामहमातुःपितामहमातुःप्रपितामहानां शर्मणां गोत्राणां० पाणां
सपत्नीकानामेतेषां तृप्त्यर्थं नित्यश्राद्धं करिष्ये इति संकल्प्योदङ्गमुखं
विप्रमुपवेश्य, अस्मत्पितृ०णां सपत्नीकानाम् । अस्मन्मातामह०णां सप-
त्नीकानामिदमासनम् । अस्मत्पितृपितामहप्रपितामहाः शर्माणः० गोत्रा
व०रूपाः सपत्नीकाः । अस्मन्मातामह०हाः । शर्माणः०गोत्राः०रूपाः सप-
त्नीका एष वो गन्धः स्वधा नमो न मम । एवं पुष्पाणि धूपदीपावा-
च्छादनं च समर्प्यार्चनविधेः संपूर्णतां वाचायित्वा वर्तुलमण्डले भोज-
नपात्रमासाद्यान्नं परिविष्य गायत्र्याऽभ्युक्ष्य, अस्मत्पितृपितामहप्रपि-
तामहेभ्यः शर्मभ्यो वसु०भ्यः सपत्नीकेभ्यः, अस्मन्मातामह०भ्यः, अ०
श० अ० गो० वसु० सपत्नीकेभ्य इदमन्नममृतरूपं परिविष्टं परिवेक्ष्य-
माणं चाऽऽ तृप्तेः स्वधा कव्यं नमो न मम । ब्रह्मार्पणं० । प्राचीना०
एको विष्णु० अनेन नित्यश्राद्धेन भगवान्पितृस्वरूपी जनार्दनवासुदेवः
प्रीयतामित्युक्त्वा ब्राह्मणान्भोजयित्वा नमस्कारेण तान्विसर्जयेत् । सति
विभवे दक्षिणां दद्यात् । नात्र तर्पणम् । इति नित्यश्राद्धप्रयोगः ।

इति श्रीमच्चित्तपावनकेळकरोपाभिधमहादेवात्मजवापूभट्टेन विरचि-
तायां श्राद्धमञ्जर्यामनुकल्पादिनित्यश्राद्धान्तप्रयोगाः ।

अथ पण्णवतिश्राद्धानि । तान्युक्तानि निर्णयसिन्धी-

अमायुगमनुक्रान्तिधृतिपातमहालयाः ।

अन्यद्वयं च पूर्वद्युः पण्णवत्यः(तिः) प्रकीर्तिताः (ता) ॥

चकारादष्टकाग्रहणम् । अमा द्वादश १२ युगादयश्चतस्रः ४ मन्वा-
दयश्चतुर्दश १४ संक्रान्तयो द्वादश १२ वैधृतयस्त्रयोदश १३ व्यती-
पातास्त्रयोदश १३ महालयाः षोडश १६ पूर्वद्युः श्राद्धानि चत्वारि ४
अष्टकाश्राद्धानि ४ अन्वष्टकाश्राद्धानि ४ एवं संवत्सरेण पण्णवतिः ९६
श्राद्धानि भवन्ति नित्यानीति कमलाकरः । एषु श्राद्धेषु सर्वत्रानुक्ता-

वपराहः कालः । पुरुरवार्वसंज्ञका विश्वे देवाः । देवतास्तु पित्राद-
यस्त्रयः सपत्नीका मातामहादयस्त्रयः सपत्नीकाः । एवं पद् । श्राद्धा-
त्पूर्वं दर्शवत्तर्पणम् । प्रयोगस्तु पिण्डसहितः पार्वणवत् । विशेषस्तु तत्त-
त्प्रकरणे वक्ष्यते । एतेषु दर्शश्राद्धं तूक्तमेव । विवाहाद्यनन्तरं दर्शश्राद्धं
पिण्डरहितमेव ।

अथ युगादिश्राद्धम् । युगादयश्चोक्ता रत्नमालायाम्—

माघे पञ्चदशी कृष्णा नभस्ये च त्रयोदशी ।

तृतीया माघे शुक्ला नवम्यूर्जे युगादयः ॥

माघमास्यमाघास्या । भाद्रकृष्णत्रयोदशी । वैशाखशुक्लतृतीया ।
कार्तिकशुक्लनवमी । एताश्चतस्रस्तिथयो युगादय इत्यर्थः । नारदः—
शुक्ले पौर्वाहिकी ग्राह्ये (ह्या) कृष्णे चैवाऽऽपराहिकी । अत्र शुक्लपक्षयुगा-
दिश्राद्धं पूर्वाह्णे कार्यमिति शूलपाणिः । निर्णयामृतादयस्तु श्राद्ध आपरा-
हिक्येव ग्राह्येत्याहुः । वचनात्पूर्वाह्न्यापिन्यामेवापराह्णे श्राद्धं कार्य-
मिति कमलाकरसिद्धान्तः । अत्र पिण्डनिषेधात्सांक्रातिकविधिः ।
इति युगादिश्राद्धम् ।

अथ मन्वादिश्राद्धम् । मन्वादय उक्ता दीपिकायाम्—

तिथ्यग्नी न तिथिस्तिथ्याशे कृष्णेभोऽनलो ग्रहः ।

तिथ्यर्कौ न शिवोऽश्वोऽमातिथी मन्वादयो मधोः ॥

अस्यार्थः । तिथिः पूर्णिमा । अग्निस्तृतीया । चैत्रे मास एते तृतीया
पौर्णमासी (च) शुक्लपक्षस्थे मन्वादी ज्ञेये । वैशाखे मन्वादिर्नास्ति । ज्येष्ठे
पौ(पू)र्णिमा । आशा दश, आपाठे शुक्लदशमी पौर्णमासी चेति द्वे ।
कृष्णेमः श्रावणे कृष्णाष्टमी । भाद्रे शुक्लतृतीया । आश्विने शुक्लन-
वमी । कार्तिके शुक्लद्वादशी पौर्णमासी चेति द्वे । मार्गशीर्षे नास्ति ।
पौषे शुक्लैकादशी । माघे शुक्लसप्तमी । फाल्गुने पौर्णमास्यमाघास्या चेति
द्वे । एवमेताश्चतुर्दश मन्वादयः । एताः शुक्लपक्षस्थाः पौर्वाहिक्यः
कृष्णपक्षस्था अपराहिक्य इत्यादिकालनिर्णयस्तु युगादिवत् । सांक्र-
ल्पिकविधिश्च । इति मन्वादिश्राद्धम् ॥

अथ संक्रान्तिश्राद्धम् । अत्र तत्तत्संक्रान्तिपर्वकाले श्राद्धम् । सामा-
न्यतः सर्वेषां संक्रमणानां संक्रमात्पूर्वं षोडश संक्रमोत्तरं षोडशेत्येवं

द्वात्रिंशद्घटिकाः पुण्यकालः सर्वग्रन्थकारैरुक्तः । विशेषस्त्वाह कम-
लाकरः—

प्रागूर्ध्वा दश पूर्वतः पडवनिस्तद्वत्पराः पूर्वत-
त्रिंशत्पोडश पूर्वतोऽप्यपरतः पूर्वाः पराः स्युर्दश ।
पूर्वाः षोडश चोत्तरा ऋतुभुवः पश्चात्स्ववेदाः पुनः
पूर्वाः षोडश चोत्तराः पुनरथो पुण्यास्तु मेपादितः ॥

अस्यार्थः । मेघे प्रागूर्ध्वं च दश घटिकाः पुण्यकालः । वृषे पूर्वाः
षोडश । मिथुने पराः षोडश । कर्के पूर्वात्रिंशत् । सिंहे पूर्वाः षोडश ।
कन्यायां पराः षोडश । तुलायां प्रागूर्ध्वा दश । वृश्चिके पूर्वाः षोडश ।
धनुषि पराः षोडश । मकरे चत्वारिंशत्पराः । इदं च हेमाद्रिमतेनो-
क्तम् । माघयमते त्वत्र परा विंशतिः । कुम्भे पूर्वाः षोडश । मीने पराः
षोडशेति ।

याप्युत्तरा पुण्यतमा मयोक्ता
सायं भवेत्सा यदि साऽपि पूर्वा ।
पूर्वा तु योक्ता यदि सा विभाते
साऽप्युत्तरा रात्रिनिषेधतः स्यात् ॥
अर्वाङ्गः निशीथाद्यदि संक्रमः स्या-
त्पूर्वेऽह्नि पुण्यं परतः परेऽह्नि ।
आसन्नयामद्वयमेव पुण्यं
निशीथमध्ये तु दिनद्वयं स्यात् ॥
कर्के झपेऽप्येधमिति ह्युवाच
हेमाद्रिसूरिश्च तथाऽपरार्कः ।
झपः प्रदोषे यदि वाऽर्धरात्रे
परेऽह्नि पुण्यं त्वथ कर्कटश्चेत् ॥
प्रभातकाले यदि वा निशीथे
पूर्वेऽह्नि पुण्यं त्विति माधवार्यः । इति...

एवमुक्ते पुण्यकालेऽपराह्वयोगे श्राद्धं कार्यम् । अपराह्वयोगाभावे
तत्तत्पूर्वकालानुरोधेन दिवैव कार्यम् । गौणकालोऽप्यपराह्वे चेत्स एव
शाह्यः । अत्र कन्यासंक्रान्तिश्राद्धे धूरिलोचनसंज्ञका विश्वे देवाः ।
अन्येषु पुरुरवार्द्रवाः । सांकल्पिकविधिरिति विशेषः । इति संक्रान्ति-
श्राद्धम् ।

अथ वैधृतिव्यतीपातश्राद्धम् । वैधृतिव्यतीपातौ कुतपध्यापिनौ दिन-
द्वये सत्त्वेऽसत्त्वे च परदिनव्यापिनौ ग्राह्यौ । अत्र पिण्डा न सन्ति ।
विधिस्तु सांकाल्पिकः । अत्र ब्रह्मचर्यादिनियमा न सन्तीत्युक्तं प्राक् ।
इति वैधृतिव्यतीपातश्राद्धम् ।

अथ महालयश्राद्धानि । तानि च भाद्रपदकृष्णप्रतिपदमारभ्याऽऽश्वि-
नशुक्लप्रतिपत्पर्यन्तं प्रत्यहमेकैकमेवं षोडश भवन्ति । तिथिवृद्ध्या
पक्षस्य षोडशदिनत्वेऽमावास्यापर्यन्तमेव । भाद्रपदपौर्णमासीमारभ्यामा-
वास्यापर्यन्तं वा षोडशेति हेमाद्रिमतं तत्सर्वग्रन्थकारासंमतत्वादुपेक्ष्यम् ।
अत्र पितृपार्वणं मातृपार्वणं सपत्नीकमातामहपार्वणमिति नवदेवत्यम् ।
अथ वा मातामह्यादीनां पृथक्पार्वणमेवं द्वादशदेवत्यम् । अपि वा
सकृन्महालयवत्पार्वणैकोद्दिष्टदेवतासमुच्चयात्मकम् । अत्राऽऽचाराच्छ-
क्त्या वा व्यवस्था बोध्या । इमानि श्राद्धानि अन्नेनैव कर्तव्यानि
नाऽऽमान्नादिना । नात्र नन्दादिदिने पिण्डनिषेधः । तदुक्तं पराश-
रमाधवीये काष्णार्जिनिना—

नभस्यस्यापरे पक्षे श्राद्धं कार्यं दिने दिने ।

नैव नन्दादि वर्ज्यं स्यान्नैव निन्द्या चतुर्दशी ॥ इति ।

गुर्विणीपतिना तु सांकाल्पिकं कार्यम् । मुण्डनं पिण्डदानं चेति
दक्षोक्तेः । केचिद्गर्भिणीपतिनाऽपि सपिण्डकमेव कार्यमित्याहुः । गर्भि-
णीपतेः पिण्डनिषेधस्तु सप्तममासादूर्ध्वं भवति । तदुक्तं कौस्तुभे—

वपनं मैथुनं तीर्थं वर्जयेद्गर्भिणीपतिः ।

श्राद्धं च सप्तमान्मासादूर्ध्वमित्याश्वलायनः ॥

श्राद्धं सपिण्डम् । आद्धिकाद्यावश्यकं तु कर्तव्यमेव । विवाहाद्यन-
न्तरमपि महालयश्राद्धानि सपिण्डानि । देवास्त्वत्र पुखरवार्द्रवसंज्ञका
इति बहवः । धूरिलोचनाविति केचित् । तर्पणं तु प्रतिदिनं प्रयोगान्ते ।
पक्षश्राद्धे हिस्वये च अनुव्रज्य तिलोदकमिति वचनात् । इति महा-
लयश्राद्धानि ।

अटकाश्राद्धानां पक्षान्तरसत्त्वेऽपि आश्वलायनैर्मागशीर्षादिचतुर्षु
मासेषु कृष्णपक्षे सप्तम्यां पूर्वद्युः श्राद्धमष्टम्यामष्टमीश्राद्धं नवम्यामन्व-
दक्यश्राद्धमेवं द्वादश श्राद्धानि कार्याणि । हेमन्तशिशिरयोश्चतुर्णा-
मपरपक्षाणामष्टमीष्वटका इत्याद्याश्वलायनोक्तेः । एतत्प्रयोगविषये श्रीम-

न्नारायणभट्टकृतं प्रयोगरत्नमेव जागर्ति । विवाहाद्यनन्तरमष्टमीश्राद्धं
पिण्डरहितमेव । पूर्वेषुः श्राद्धमन्वष्टकाश्राद्धं च सपिण्डमेवेति चातुर्थ-
रीयपणवतिश्राद्धनिर्णये । तत्राष्टमीश्राद्धे व्यतिपङ्गभावात्पिण्डनिर्वपणं
केचिन्नेच्छन्त्यस्मिंश्चतुष्टय इति कारिकोक्तेश्च पिण्डरहितं कर्तुं शक्यते ।
पूर्वेषु मन्वष्टकययोर्व्यतिपङ्गत्सपिण्डत्वमिति तदाशयः । मलमासेऽप्यमा-
युगमनुवैधृतिव्यतीपातश्राद्धानि कार्याणि । महालयाष्टकादीनि न कार्या-
णीत्यन्यत्र विस्तर इति दिक् ।

इति श्रीमच्चित्तपावनके० श्राद्धमञ्जरीं पणवतिश्राद्धानि ।

अथ विविधानि विकृतिश्राद्धानि । तत्र भाद्रपदपौर्णमास्यां प्रोष्ठपदी-
श्राद्धमुक्तं हेमाद्रौ ब्रह्माण्डपुराणे—

नान्दीमुखानां प्रत्यब्दं कन्याराशिगते रवौ ।

पौर्णमास्यां तु कर्तव्यं वराहवचनं यथा ॥

पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः ।

त्रयो ह्यश्रुमुखा ह्येते पितरः संप्रकीर्तिताः ॥

तेभ्यः पूर्वं त्रयो ये तु ते तु नान्दीमुखाः स्मृताः ॥ इति ।

अत्रापि कन्यागत इत्युपलक्षणम् । अतो धूरिलोचनौ देवौ । पित-
रस्तु प्रपितामहस्य पितृपितामहप्रपितामहाः । अत्र मातामहा अपि
कार्या इति कमलाकरः । बृद्धप्रपितामहादित्रय एव नात्र मातामहा
इति चन्द्रिकाकारेण सिद्धान्तितम् । तत्रत्यदचनम्—तस्मात्प्रोष्ठपदी-
श्राद्धे नेज्या मातामहादय इति । मयूखकारस्याप्येवमेव सिद्धान्तः ।
एतच्छ्राद्धं प्रतिसंवत्सरमायश्यकतया कार्यमिति सिन्धौ । पौर्णमास्यां
पिण्डनिर्वेधेऽप्यास्मिन्श्राद्धे पिण्डदानं भवत्येवेति तत्रैव । एतच्चापुत्र-
विधवयाऽपि कार्यमिति चन्द्रिकाकारः । श्राद्धाङ्गत्पणं तु परेषुः कार्य-
मिति स एव । गोपीनाथदीक्षितप्रयोगे तु दर्शवदादावेवोक्तम् । अत्रा-
स्मन्नान्दीमुखानाममुकशर्मणामित्यादिप्रयोगक्रमो ज्ञेय इति चन्द्रिका-
कारः । नात्र नान्दीमुखत्वं पितृविशंपणमिति कमलाकरसिद्धान्तः ।
कौस्तुभकारस्याप्येवमेव ।

अथ प्रयोगः । भाद्रपदपौर्णमास्यामपराह्णे देशकालौ संकीर्त्यास्मत्प्र-
पितामहपितृपितामहप्रपितामहानाममुकशर्मणाममुकगोत्राणां वसुरुद्रा-

दित्यस्वरूपाणामेतेषां तृप्त्यर्थं प्रोष्ठपदीश्राद्धं सदैवं सपिण्डं पार्वणेन विधिनाऽन्नेन हविषा सद्यः करिष्य इति संकल्प्य तत्तद्विभक्त्युल्लेखपूर्वकं प्रयोगः । अस्मत्प्रपितामहस्य पितरं शर्माणं गोत्रं वसुरूपमावाहयामि । अस्मत्प्रपितामहस्य पितामहं० । अस्मत्प्रपितामहस्य प्रपितामहं० इत्यादि । शुन्धन्तां प्रपितामहपितरः । शुन्धन्तां प्रपिताहपितामहाः । शुन्धन्तां प्रपितमहप्रपितामहाः । एतत्तेऽस्मत्प्रपितामहपितरमुकशर्मन्न-मुकगोत्र वसुरूप ये च त्वामत्रानु तेभ्यश्च । एतत्तेऽस्मत्प्रपितामहपि-तामह० भ्यश्च । एतत्तेऽस्मत्प्रपितामहप्रपितामह० भ्यश्चेत्यादि यथायथ-मूहः । शेषं दर्शश्राद्धवत् । इति प्रोष्ठपदीश्राद्धप्रयोगः ।

अथ भरणीश्राद्धम् । भाद्रपदकृष्णपक्षे यस्मिन्दिने भरणीनक्षत्रं भवति तस्मिन्दिने प्रतिसंवत्सरं दर्शवत्पङ्कदैवत्यं पिण्डरहितं सांकल्प-विधिना श्राद्धं कुर्यात् । देवौ पुरुरवार्वौ । काम्यत्वे धूरिलोचनौ । इति भरणीश्राद्धम् ।

तृतीयायां कृत्तिकानक्षत्रं चेत्त्रापि श्राद्धमेव कार्यम् । तदुक्तं पृथ्वी-चन्द्रोदये—

नमस्यापरपक्षस्य द्वितीया यदि याम्यमे ।

तृतीया चाग्नितासभिः सहिता प्रीतिदा पितुः ॥ इति ।

एतत्पक्षे पृष्ठी योगविशेषेण कपिलासंज्ञा । तदुक्तं वाराहे—

नमस्यकृष्णपक्षे तु रोहिणीपातभूसुतेः ।

युक्ता पृष्ठी पुराणज्ञैः कपिला परिकीर्तिता ॥

हस्तगतेऽर्के सति फलातिशयः । तदुक्तं पुराणसमुच्चये—

भाद्रे मास्यसिते पक्षे भानो चैव करे स्थिते ।

पाते कुजे च रोहिण्यां सा पृष्ठी कपिला स्मृता ॥ इति ।

अत्रापि ग्रहणादिवत्पूर्वनिमित्तं श्राद्धं कार्यम् । अष्टम्यां माध्यावर्ष(?)—संज्ञकं श्राद्धमुक्तमाश्वलायनेन—एतेन माध्यावर्ष(?) प्रोष्ठपद्या अपरपक्ष इति । इदं सप्तम्यादित्रिष्वहःसु कार्यमिति वृत्तिकृत् । प्रयोगस्त्वष्टका-श्राद्धवत् । अशक्तावेकस्यां घाऽष्टम्यामेव ।

आपाह्याः पञ्चमे पक्षे गया मध्याष्टमी स्मृताः ।

त्रयोदशी गजच्छाया गयातुल्या तु पैतृकं ॥

इति ब्राह्म्यात् । अत्र कामकाली देवौ । अष्टम्यां कामकालाविति वचनात् । भाद्रपदकृष्णनवम्यामन्वष्टकाश्राद्धं नवदैवत्यात्मकं कात्यायनादिभिरुक्तम् । तच्चाऽऽश्वलायनानां माघ्यावर्ष(?)श्राद्धत्रयकरणपक्षे नवम्यामन्वष्टक्यं भवत्येव । एकस्यामेवाष्टम्यां करणपक्ष इदमपि पृथक्त्वेन कार्यम् । अस्यां मातृश्राद्धमत्यावश्यकम् । तदुक्तं चन्द्रिकायां स्मृतौ—

सर्वासामेव मातृणां श्राद्धं कन्यागते रवौ ।

नवम्यां हि प्रदातव्यं ब्रह्मलब्धवरा यतः ॥ इति ।

अत्र सर्वासामित्युक्तत्वात्सापत्नमातृणामपि कार्यम् । स्वमातरि जीवन्त्यामपि सापत्नमातृभ्यो दद्यादिति कमलाकरः । इदमनुपनीतेन गर्भिणीपतिनाऽपि सपिण्डकं कार्यमिति स एव । तथा जीवत्पितृकेणापि कार्यम् ।

अन्वष्टक्यां गयाप्राप्तौ सत्यां यच्च मृतेऽहनि ।

मातुः श्राद्धं सुतः कुर्यात्पितर्यपि च जीवति ॥

इति मैत्रायणीयपरिशिष्टात् । इदं श्राद्धं मर्तुमरणोत्तरं पूर्वमृतमातुर्न कार्यमिति केचिदाहुस्तन्निर्मूलमिति कमलाकरः । विधवाया अपीति चन्द्रिकाकारः । सिन्धौ ब्राह्मे—

पितृमातृकुलोत्पन्ना याः काश्चित्तु मृताः स्त्रियः ।

श्राद्धार्हास्तास्तु विज्ञेयाः श्राद्धं तासां प्रदीयते ॥ इति ।

अत्राऽऽचाराद्यवस्था । अत्र सुवासिनीभोजनमावश्यकम् ।

मातुः श्राद्धे तु संप्राप्ते ब्राह्मणैः सह भोजनम् ॥

सुवासिन्यै प्रदातव्यमिति शातातपोऽब्रवीत् ।

इति मार्कण्डेयपुराणात् । विप्रालाभे सुवासिनीमपि भोजयेदिति प्रागेवोक्तम् । अत्र मातृबहुत्वेऽप्येको ब्राह्मणः पिण्डश्च । तद्विधिस्तु वृत्त्यनुसारेण प्रयोगे वक्ष्यते । अस्य श्राद्धस्यातितरावमाश्यकत्वात्संकटे पूर्वोक्तानुकल्पानामन्यतमेन कार्यम् ।

अथ प्रयोगः । उक्तापराह्णे जीवत्पिताऽऽप्रकोष्ठात्प्राचीनावीतं कृत्वा, अस्मन्मातृपितामहीप्रपितामहीनाममुकदानाममुकगोत्राणां वसु०पाणा-मेतासां तृप्त्यर्थं कन्यागते सवितरि भाद्रपदापरपक्षनवम्यन्वष्टक्य-

श्राद्धं सदैवं सपिण्डं पार्वणेन विधिनाऽग्नेन हविषा सद्यः करिष्य इति संकल्प्य पूर्वोक्तमातृश्राद्धप्रयोगवत्सर्वं कुर्यात् । नित्यत्वात्पुनरुवाद्वावेवात्र देवौ श्राद्धोत्तरं तदहरेव शुक्लतिलैस्तर्पणं विधाय बन्धुभिः सह भुञ्जीतेति । सापत्नमात्रेकत्वे द्वित्वे बहुत्वे वा संकल्पे मातृपार्वणोत्कीर्तनानन्तरं सर्वासां क्रमेण पञ्चान्तमुत्कीर्तनं कृत्वा पार्वणैकोद्दिष्टविधिना श्राद्धं करिष्य इति संकल्प्य विप्रनिमन्त्रणकाले वैश्वदेवार्थं द्वावेकं वा विप्रं निमन्त्र्य मातृवर्गार्थं त्रीनेकं वा निमन्त्र्य सापत्नमात्रार्थं प्रत्येकमेकैकमेकं वा मात्रादिसर्वार्थमेकं वा निमन्त्र्य सकृन्महालयोक्तप्रकारेण प्रयोगं कुर्यात् । प्रत्येकमेकैकां सर्वार्थमेकां वा सुवासिनीं मोजयेदित्येकः पक्षः । अपरस्तु मात्रा सहैव सापत्नमातृणामुत्कीर्तनेन पार्वणे संनिवेशः । विधिस्तु पार्वणवत् । विप्रनिमन्त्रणकाले सर्वासां मातृणां स्थान एकं पितामह्यादीनामेकैकं निमन्त्रयेत् । तत्रैवं विशेषः— सापत्नमात्रेकत्वेऽस्मन्मात्रोर्गङ्गायमुनादयोः काश्यपगोत्रयोर्वसुरूपयोः । पितामह्याः०दायाः०गोत्राया रुद्ररूपायाः प्रपितामह्याः०दाया०गोत्राया आदित्यरूपाया एवमुल्लेखः । अपि वाऽस्मन्मातृतत्सपत्नीपितामहीप्रपितामहीनां गङ्गायमुनासरस्वतीकृष्णादानामिति सापत्नमातृद्वित्वे बहुत्वे वाऽस्मन्मातृणां गङ्गायमुनासरस्वतीदानां० गोत्राणां वसुरूपाणाम् । अस्मत्पितामह्या अ०दाया०इत्यादि । एवं निमन्त्रणादिष्वप्यहः । अस्मन्मातरौ गङ्गायमुनादे काश्यपगोत्रे वसुरूपे । अस्मत्पितामही(हि)अमुकदे अ० गोत्रे रुद्ररूपे । अस्मत्प्रपितामही(हि) अमुक दे० इति पाद्यादिषूहः । बहुत्वे तु अस्मन्मातरः० दाः० गोत्राः वसुरूपा इत्यादि । अर्घ्यदाने मात्रार्थमेकं पात्रं सापत्नमात्रार्थं प्रत्येकमेकैकं पितामह्यार्थमेकं प्रपितामह्यार्थमेकमित्यासाद्य मातृपात्रे संपन्ने मातृपात्राणि संपन्नानीति वोक्त्वा पितामहीपात्रं संपन्नं प्रपितामहीपात्रं संपन्नमित्यभिमृशेत् । आवाहनेऽस्मन्मातरौ० दे गोत्रे० रूपे भवत्स्यावाहंयिष्यामि द्वित्वे बहुत्वे वाऽस्मन्मातृः० दाः० गोत्राः० रूपाः । अस्मत्पितामही० दां० अस्मत्प्रपितामही० दां० गो० अस्मन्मातरिदं तेऽर्घ्यम् । अस्मत्सापत्नमातरिदं तेऽर्घ्यमित्यादि पृथक्पृथगर्घ्यदानम् । अर्घ्यदानं पृथक्कुर्यात्पिण्डमेकं तु निर्वपेदिति वचनात् । प्रतिविप्रं पाणिहोमः । अन्ननिवेदने पृथिवी ते पात्रमिन्यादि मातरौ गङ्गायमुनादे अमुकगोत्रे वसुरूपे देवते इदमन्नं० । अस्मन्मातृभ्यां गङ्गायमुनादाभ्यां गोत्राभ्यां

वसुरुपाभ्यामिदमन्नममृतरूपं० । द्वित्वे बहुत्वे तु मातरः० दाः० गोत्रा वसुरुपा देवता इदमन्नं हवि० । अस्मन्मातृभ्यो० दाभ्यो गोत्राभ्यो वसुरुपाभ्य इदमन्नममृतरूपं० । एवं सुवासिन्या अन्ननिवेदने च । उदकनिनयने शुन्धन्तां मातरः । शुन्धन्तां पितामह्यः । शुन्धन्तां प्रपितामह्य इत्येवं, पिण्डप्रदान एतद्वामस्मन्मातरौ गङ्गायमुनादे गोत्रे वसुरूपे ये च युवामन्नानु तेभ्यश्चेत्यूहः । सापत्नमातृद्वित्वे बहुत्वे वा—एतद्वोऽस्मन्मातरः० दाः० गोत्रा० वसुरुपा ये च युष्मानन्नानु इत्यूहः । अत्र पितर इत्यत्र नोहः । अमीमदन्तेत्यत्र च नोहः । अभ्यञ्जनदाने—अस्मन्मातरौ० दे० गोत्रे वसुरूपे अभ्यञ्जाथाम् । अञ्जनदाने—अस्मन्मातरौ० वसुरूपे अञ्जाथामित्यूहो द्वित्वे बहुत्वे तु अस्मन्मातरः० दाः० गोत्रा वसुरुपा अभ्यङ्गध्वम् । इत्यभ्यञ्जने । अङ्गध्वमित्यञ्जने । एतद्वः पितरो वास इत्यादिषु नोह इति विशेषः । अन्यत्सर्वं पूर्ववत् । मृतपितृकर्तृकेऽप्येवमेव प्रयोगः । कौस्तुभे तु मृतपितृकेण पितुर्भहालय एव मातृतृप्तेः संपादितत्वान्नैतत्कार्यमित्युक्तम् । इति नवमीश्राद्धप्रयोगः ।

अथ भाद्रकृष्णद्वादश्यां सन्यस्तपितुः श्राद्धप्रयोगः । उक्तापराह्णे क्षेपकालौ संकीर्त्यास्मद्ब्रह्मीभूतपितृपितामहप्रपितामहानाममुकशर्मणां० गोत्राणां वसु० पाणामित्यादिपार्वणैकोद्दिष्टोत्कीर्तनेन संकल्पप्रमृति सकृन्महालयवत्सर्वं कुर्यात् । मन्त्रव्यतिरिक्तस्थले सर्वत्र ब्रह्मीभूतपदोच्चारणमधिकम् । मन्त्रेषु त्वमिध्यानमात्रम् । तिथ्यन्तरे मृतस्यापि संन्यासिनो द्वादश्यामेव सकृन्महालयश्राद्धं कार्यम् । पक्षश्राद्धादिकरणे तु सर्वास्वपि तिथिषु श्राद्धानि भवन्ति । इति सन्यस्तपितुः श्राद्धप्रयोगः ।

अथ भाद्रकृष्णपक्षे मघात्रयोदशीश्राद्धम् । तच्च केवलत्रयोदश्यां केवलमघानक्षत्रे वा कार्यम् । द्वयोर्योगे फलाधिक्यम् । त्रयोदशीश्राद्धं नित्यम् । मघाश्राद्धं तु काम्यम् । नित्यत्वात्त्रयोदश्यां पुरुरवार्द्रवी देवौ । मघासु काम्यत्वाद्धूरिलोचनौ । उभयोर्योगे धूरिलोचनौ । उभयत्रापि पिण्डदाननिषेधात्सांकल्पिकविधिः । मघाश्राद्धमविभक्तैरपि पृथक्पृथक्कार्यम् । तदुक्तं हेमाद्रौ—

विभक्ता वाऽविभक्ता वा कुर्युः श्राद्धं पृथक्सुताः ।

मघासु तु ततोऽन्यत्र नाधिकारः पृथक्पृथक् ॥ इति ।

अत्र तुशब्दस्य ततोऽन्यत्रेत्यनन्तरमन्वयः । अविभक्तानां मघा-
श्राद्धव्यतिरिक्तश्राद्धेषु पृथगाधिकारो नास्तीत्यर्थः । त्रयोदशीश्राद्धं
पुत्रवता नैव कार्यम् । अपुत्रवताऽपि पिण्डरहितं कार्यमिति कौस्तुभे ।
मघात्रयोदशीश्राद्धे मधुपायसमतिप्रशस्तम् । कलौ मधुनिपेधात्तत्स्थाने
गुडो घृतं वा देयम् । एतन्मूलवाक्यानि निर्णयसिन्धौ द्रष्टव्यानि ।
मघात्रयोदशीयोगे श्राद्धमधिमासेऽपि कर्तव्यमिति चन्द्रिकायाम् । अत्र
मघात्रयोदशीयुगादिश्राद्धानां तन्त्रता । महालयश्राद्धकरणपक्षे तु
तेनैवैषां प्रसङ्गसिद्धिः । महालयश्राद्धस्यापि तन्त्रत्वोक्तिस्तु कस्याचि-
न्मूर्खप्रलापत्वादुपेक्ष्येति मयूरकारः ।

अथ प्रयोगः । पितृवर्गस्य सपत्नीकस्य मातामहवर्गस्य सपत्नीक-
स्योत्कीर्तनं कृत्वैतेषां तृप्त्यर्थं त्रयोदशीश्राद्धं सदैवं सांकल्पविधिनाऽ-
न्नेन हविषा सद्यः करिष्ये मघाश्राद्धमिति मघाश्राद्धे मघात्रयोदशी-
श्राद्धमिति योगे संकल्पं कृत्वा पूर्वोक्तसांकल्पविधानेन सर्वं
कुर्यात् । ततः श्राद्धान्ते वर्गद्वयस्य तर्पणम् । इति मघात्रयोदशी-
श्राद्धप्रयोगः ।

अथ गजच्छाया । सा चोक्ता ग्रन्थान्तरे—

प्रेतपक्षे त्रयोदश्यां मघास्विन्दुः करे रवौ ।

यदा तदा गजच्छाया सूर्यपवंशताधिका ॥ इति ।

यदा भाद्रपदकृष्णत्रयोदश्यां हस्तनक्षत्रे सूर्यो मघानक्षत्रे चन्द्रो
भवति तदा गजच्छायासंज्ञको योगविशेष इत्यर्थः । अत्रापि पूर्ववत्पि-
ण्डरहितं षड्देवत्यं श्राद्धं कुर्यात् । नैमित्तिकत्वात्कामकालौ देवाविति
विशेषः । भाद्रकृष्णामायामपि हस्तनक्षत्रे चन्द्रसूर्यौ स्यातां तदाऽपि
गजच्छाया । तदुक्तं सिन्धौ यमेन—

हंसे करे स्थिते या तु अमावास्या करान्विता ।

सा ज्ञेया कुञ्जरच्छाया इति बौधायनोऽब्रवीत् ॥

अस्यामपि पिण्डरहितं षड्देवत्यं श्राद्धं कुर्यात् । इदं च श्राद्धं गज-
च्छायायां कर्तव्यम् । गजच्छायासु कुर्वीत कर्णव्यजनवीजिते, इति
भारतोक्तेः । सिन्धौ च—

पायसं मधुसर्पिभ्यां प्राकृष्टाय कुञ्जरस्य च ।

श्राद्धं दद्यादिति शेषः । इति गजच्छायाश्राद्धम् ॥

अथ भाद्रकृष्णचतुर्दश्यां शस्त्रहतश्राद्धम् । तच्च पित्रादेः शस्त्रहतस्यैको-
द्विष्टविधिना कार्यम् । एकोद्विष्टे दैवनिषेधेऽपि वचनादेतच्छ्राद्धं सदैवं
कार्यम् । पित्रादिद्वयोः शस्त्रमृतावेकोद्विष्टद्वयं कार्यम् । त्रयाणामपि तथात्व
एकोद्विष्टत्रयं कार्यम् । पित्रादित्रयाणां शस्त्रमृतौ पार्वणमेव कार्यमित्यन्ये ।
एतच्छ्राद्धमन्यैरपि विपजलाग्निशृङ्गदंष्ट्रिसर्पेश्वापदपशुव्याघ्रादिदुर्मरणमृ-
तानामात्मत्यागिनामुपसर्गमृतानामुद्बन्धनादिमृतानां चैकोद्विष्टं कार्यम् ।
यूपमृतानामपि कार्यम् । असाध्यव्याध्यभिभूतानां विधिपूर्वकमृग्वग्न्य-
म्युमृतानां नैवात्र श्राद्धम् । एतस्त्रीणामपि शस्त्रादिहतानां दुर्मरणमृ-
तानां चैकोद्विष्टं कार्यम् । सहगमने तु वैधत्वान्न भवति । अत्र पुरुरवा-
र्द्रवौ देवौ । कामकालाविति मयूखे । एकोद्विष्टं तु यच्छ्राद्धं तन्नैमि-
त्तिकमुच्यत इति वचनात् ।

अथ प्रयोगः । मध्याह्ने देशकालौ स्मृत्वाऽस्मत्पितुः० शर्मणो गोत्रस्य
वसुरूपस्य शस्त्रहतस्य तृप्त्यर्थं भाद्रपदापरपक्षचतुर्दशीश्राद्धं सदैवं
सपिण्डमेकोद्विष्टविधिनाऽन्नेन हविषा सद्यः करिष्य इति संकल्प्य पुरुर-
स्वार्द्रवसंज्ञकवैश्वदेवार्थमेकं विप्रं निमन्त्र्य पित्रर्थमेकं निमन्त्र्य पूर्वोक्तै-
कोद्विष्टप्रयोगवत्सर्वं कृत्वा तदहरेव तर्पणं कुर्यात् । पित्रादित्रयाणां
शस्त्रहतानां पार्वणपक्षे पार्वणविधिनाऽपराह्णे कार्यम् । सकृन्महालयस्तु
सर्वपितृतृप्त्यर्थममावास्यायामन्यस्मिन्वा दिने कर्तव्य एव । इति चतु-
र्दशीश्राद्धप्रयोगः ।

आश्विनशुक्लप्रतिपदि मातामहश्राद्धम् । तदुक्तं सिन्धौ—

जातमात्रोऽपि दौहित्रो विद्यमानेऽपि मातुले ।

कुर्यान्मातामहश्राद्धं प्रतिपद्याश्विने सिते ॥

इदं श्राद्धमनुपनीतोऽपि कुर्यादिति बहवः । इदं सपिण्डकमेव कार्य-
मिति चन्द्रिकायाम् । पिण्डरहितमिति कमलाकरः । इदमेव युक्तमिति
प्रतिभाति । प्रतिपत्प्रयुक्तश्राद्धे पिण्डदाननिषेधात् । जीवत्पितृकस्यापि
पिण्डदाननिषेधाच्च । इदं च जीवत्पितृकेणैव कार्यमिति शिष्टाः । उक्तं
च ग्रन्थान्तरे—

गर्भाच्च्युतो हि दौहित्रः कुर्यात्पितरि जीवति ।

श्राद्धं मातामहानां च पक्षान्तादपरेऽहनि ॥ इति ।

अत्र मातामह्यादीनां नोल्लेखः ।

प्रतिपद्याश्विने शुक्ले दौहित्रस्त्वेकपार्वणम् ।

श्राद्धं मातामहं कुर्यात्सपिता संगवे सदा ॥

इति वचनात् । केचित्तपस्तीकोल्लेखस्त्वेकपार्वणभङ्गभावात्कर्तव्य एवेत्याहुः । इदं जीवत्पितृकेण पञ्चधा विभक्तस्य दिनस्य द्वितीयभागे संगवकाले कार्यम् । सपिता संगव इत्युक्तत्वात् । मृतपितृकेण त्वपराह्णे कार्यमिति केचित् । पार्वणविधानाज्जीवत्पितृकेणाप्यपराह्णे कार्यमिति कौस्तुभे ।

अथ प्रयोगः । देशकालौ स्मृत्वाऽस्मन्मातामहमातुःपितामहमातुःप्र-
पितामहानां शर्मणां गोत्राणां वसुरुद्रादित्यस्वरूपाणां सपत्नीकाना-
मेतेषां तृप्त्यर्थमाश्विनशुक्लप्रतिपच्छ्राद्धं सदेवं सांकल्पविधिनाऽन्नेन
हविषा सद्यः करिष्य इति संकल्प्य पुरूरवारद्रवयैश्वदेवसहितं पूर्वोक्तसां-
कल्पविधानेन सर्वं कृत्वा तद्वर्गमात्रस्य सपत्नीकस्य तदहरेव श्राद्धान्ते
शुक्लतिलस्तर्पणं कृत्वा शेषमिष्टैः सह भुञ्जीतेति । इति दौहित्रप्रतिप-
च्छ्राद्धप्रयोगः ।

अथ ग्रहणश्राद्धम् । तच्च चन्द्रसूर्ययोर्ग्रहणे स्पर्शकाले रात्रावप्याशौच-
मध्येऽपि पद्भ्योऽपि पद्भ्योऽपि पद्भ्योऽपि पद्भ्योऽपि पद्भ्योऽपि पद्भ्योऽपि पद्भ्योऽपि पद्भ्योऽपि पद्भ्योऽपि
नैमित्तिकत्वात्कामकालौ देवौ । अकरणे प्रत्यवायश्रवणान्नित्यत्वम् ।
अतः पुरूरवारद्रवावित्यन्ये । ग्रहणनिमित्तं श्राद्धं करिष्य इति संकल्पः ।
अत्र भोक्तृसंभवे त्वन्नेनापि कार्यमित्यपरार्कः । घृतेन भोजयेद्विप्रान्घृतं
भूर्मा समुत्सृजेदिति वायवीयोक्तेः । विज्ञानेश्वरस्तु ग्रहणश्राद्धे भोक्तु-
र्दोषो दातुस्त्वभ्युदय इत्याह । इति ग्रहणश्राद्धम् ।

अथार्धोदयः । सिन्धौ महाभारते—

अमार्कपातश्रवणैर्युक्ता चेत्पौषमाघयोः ।

अर्धोदयः स विज्ञेयः कोटिसूर्यग्रहैः समः ॥

पौषकृष्णामावास्या सूर्यवासरश्रवणनक्षत्रव्यतीपातयोगैर्युक्ता चेदर्धो-
दयसंज्ञको योगविशेषो ज्ञेय इत्यर्थः । माघामायां व्यतीपात इत्यादि-
वाक्यानि तानि पौर्णमास्यन्तमासपराणि । दिवैव योगः शस्तोऽयं न
तु रात्रौ कदाचनेति तत्रैव । इत्यर्धोदयः ।

अथ पद्मकयोगः । तदाह शङ्खः-

यदा विष्टिर्व्यतीपातो भानुवारस्तथैव च ।

पद्मकं नाम तत्प्रोक्तमयनाच्च चतुर्गुणम् ॥ इति ।

सिन्धौ व्यासः-सिनीवाली कुहूर्वाऽपि यदि सोमदिने भवेत् ।

गोसहस्रफलं दद्यात्स्नानं वै मौनिना कृतम् ॥ इति ।

निर्णयामृते विष्णुपुराणे-

अमावास्या यदा मैत्रविशाखास्वातिभोगिनी ।

श्राद्धे पितृगणस्तृप्तिं तदाऽऽप्तोत्यष्टवार्षिकीम् ॥

अमावास्या यदा पुष्ये रौद्रक्षे वा पुनर्वसौ ।

द्वादशाब्दीं तदा तृप्तिं प्रयान्ति पितरोऽर्चिताः ॥ इति ।

मैत्रमनूराधानक्षत्रम् । रौद्रमार्द्रा । हेमाद्रौ शङ्खः-

अमावास्या तु सोमेन सप्तमी भानुना सह ।

चतुर्थी भूमिपुत्रेण सोमपुत्रेण चाष्टमी ॥

चतस्रस्तिथयस्त्वेताः सूर्यग्रहणसंनिभाः ।

स्नानं दानं तथा श्राद्धं सर्वं तत्राक्षयं भवेत् ॥

अथ महाव्यतीपातसंज्ञको योगविशेषः । हेमाद्रौ बृहन्मनुः-

श्रवणाश्विधनिष्ठार्द्रानागदैवतमस्तके ।

यद्यमा रविवारेण व्यतीपातः स उच्यते ॥

नागदैवतमाश्लेया । मस्तको मृगशिरः । प्रथमपाद् इत्यन्ये । स च सर्वेषामिति कमलाकरः । इति महाव्यतीपातः ।

चैत्रकृष्णत्रयोदश्यां महावारुणीसंज्ञो योगविशेषः । तदुक्तं निर्णय-
सिन्धौ स्कान्दे-

वारुणेन समायुक्ता मर्धौ कृष्णा त्रयोदशी ।

गङ्गायां यदि लभ्येत कोटिसूर्यग्रहैः समा ॥

शुभयोगसमायुक्ता शनौ शतभिषा यदि ।

महामहेति विख्याता त्रिकोटिकुलमुद्धरेत् ॥

वारुणं शततारका । तत्रैव ब्राह्मे-

मर्धौ कृष्णत्रयोदश्यां शनौ शतभिषा युता ।

वारुणीति समाख्याता शुभेऽति महती स्मृता ।

तत्रैव ज्योतिषे-

चैत्रासिते वारुणक्रक्षयुक्ता त्रयोदशी सूर्यसुतस्य वासरे ।
योगे शुभे सा महती महात्मा गङ्गाजलेऽर्कग्रहकोटितुल्या ॥
इति वारुणीयोगः ।

वैशाखशुक्लद्वादश्यां व्यतीपातसंज्ञको योगविशेषः । हेमाद्रौ ज्योतिः-
शास्त्रे—

पञ्चाननस्थौ गुरुभूमिपुत्रौ मेपे रविः स्याद्यदि शुक्लपक्षे ।
पाशाभिधाना करमेण युक्ता तिथिर्व्यतीपातइतीह योगः ॥

पञ्चाननः सिंहः । पाशाभिधाना तिथिर्द्वादशी । करमं हस्तः । एते-
ष्वर्धोदयादियोगविशेषेषु अर्धोदयनिमित्तं श्राद्धं करिष्ये पद्मकयोग-
निमित्तं श्राद्धं करिष्ये इति यथायथं संकल्पं कृत्वा दर्शवत्पद्मद्वैवत्यं
सांकल्पविधिना श्राद्धं कुर्यात् । नैमित्तिकत्वात्कामकालौ देवौ । दर्शव-
च्छ्राद्धात्पूर्वं तर्पणम् । इत्यर्धोदयादिश्राद्धानि ।

अथ माघशुक्लाष्टमी भीष्माष्टमी । तस्यां भीष्मोद्देशेन तर्पणं श्राद्धं
च कुर्यात् । तदुक्तं हेमाद्रौ पाद्मे—

माघे मासि सिताष्टम्यां सतिलं भीष्मतर्पणम् ।
श्राद्धं च ये नराः कुर्युस्ते स्युः संततिभागिनः ॥ इति ।

भारतेऽपि—शुक्लाष्टम्यां तु माघस्य दद्यान्भीष्माय यो जलम् ।
संवत्सरकृतं पापं तत्क्षणादेव नश्यति ॥ इति ।

अत्र श्राद्धं काम्यं फलश्रवणात् । तर्पणं तु नित्यम् ।
ब्राह्मणाद्याश्च ये वर्णा दद्यान्भीष्माय नो जलम् ।
संवत्सरकृतं तेषां पुण्यं नश्यति सत्तम ।

इति वचनात् । एतज्जीवत्पितृकस्यापि भवति । जीवत्पिताऽपि
कुर्वति तर्पणं यमभीष्मयोरिति वचनात् । एतच्चापसव्येन कार्यमिति
दिवोदासीये । श्राद्धं त्वेकोद्दिष्टमेव ।

अपुत्रा ये मृताः केचित्त्रियो वा पुरुषोऽपि वा ।
तेषामपि च देयं स्यादेकोद्दिष्टं न पार्वणम् ॥

इति सिन्धौ वचनात् ।

अथ प्रयोगः । माघशुक्लाष्टम्यां कृतनित्यक्रियो देशकालौ संकीर्त्य मम
संवत्सरकृतपापनिरासपूर्वकाविच्छिन्नसंतत्यभिवृद्धिद्वारा श्रीपरमेश्वर-

प्रीत्यर्थं माघशुक्लभीष्माष्टम्यां भीष्मतर्पणं करिष्य इति संकल्प्य प्राची-
नावीती तिलोदकेन मन्त्रैस्तर्पयेत् । ते च मन्त्राः—

भीष्मः शांतनवो वीरः सत्यवादी जितेन्द्रियः ।
आभिरद्भिरवामोतु पुत्रपौत्रोचितां क्रियाम् ॥
वैयाघ्रपद्यगोत्राय सांकृत्यप्रवराय च ।
अपुत्राय ददाम्येतज्जलं भीष्माय वर्मणे ॥ २ ॥
वसूनामवताराय शंतनोरात्मजाय च ।
अर्घ्यं ददामि भीष्माय आवालवह्नचारिणे ॥ ३ ॥

इति त्रिभिर्मन्त्रैस्तर्पयित्वाऽनेन तर्पणेन भीष्मस्वरूपी भगवान्परमे-
श्वरः प्रीयतामिति कर्मेश्वरायार्पयेत् । इति तर्पणप्रयोगः ।

अथ श्राद्धप्रयोगः । मध्याह्ने देशकालौ संकीर्त्याविच्छिन्नसंतानाभि-
वृद्धिकामोऽपुत्रस्य भीष्मवर्मणो वैयाघ्रपद्यगोत्रस्य वसुरूपस्य तृप्त्यर्थं
भीष्माष्टमीप्रयुक्तं श्राद्धं सपिण्डमेकोद्दिष्टेन विधिनाऽन्नेन हविषा सद्यः
करिष्य इति संकल्प्य पूर्ववदेकोद्दिष्टेन विधिना श्राद्धं कृत्वाऽपरेद्युः
प्रातर्भीष्मवर्मणं वैयाघ्रपद्यगोत्रं वसुरूपं स्वधा नमस्तर्पयामीति तर्प-
येत् । इति भीष्माष्टमीश्राद्धम् ।

अथ नैमित्तिकतिथिश्राद्धानि । पराशरमाधवीये देवलः—

तृतीया रोहिणीयुक्ता वैशाखस्य सिता तु या ।
मघामिः सहिता कृष्णा नभस्ये तु त्रयोदशी ॥
तथा शतभिषग्युक्ता कार्तिके नवमी तथा ।

अत्र श्राद्धं कुर्यादित्यन्वयः । अत्र वैशाखशुक्लतृतीयायां रोहिणी-
योगे श्राद्धं युगादिश्राद्धवत् । नैमित्तिकत्वात्कामकालौ देवौ । भाद्रपद-
कृष्णत्रयोदश्यां मघायोगे श्राद्धमुक्तमेव । कार्तिकशुक्लनवम्यां शततारका-
योगे [श्राद्धं] युगादिश्राद्धवत् । अत्रापि नैमित्तिकत्वात्कामकालौ देवौ ।

अथ पौर्णमासीश्राद्धानि । तत्रैव यमः—

आपाढ्यामथ कार्तिक्यां माघ्यां त्रिन्पञ्च वा द्विजान् ।
तर्पयेत्पितृपूर्वं तु तदस्याक्षय्यमुच्यते ॥

अत्र पौर्णमासीषु पिण्डदाननिषेधात्सांकेतिकविधिना पद्भुदैवतं
श्राद्धं कुर्यात् । पुरुर्वार्द्रवौ देवौ ।

अतः कृष्णपक्षे नेति गौडाः । इदं च श्राद्धमाग्रयणान्तरमेव कर्तव्यम् । तत्पूर्वं नवान्नप्राशनेऽनधिकारात् । श्राद्धेऽकृताग्रयणधान्यनिषेधाच्च । अत्र कामकालौ देवौ । नवान्नलम्बने देवौ कामकालौ सदैव हीति वचनात् । अन्यत्सर्वं दर्शश्राद्धवत् ।

इति नवान्नश्राद्धम् । अथ तीर्थादियात्रागमनकाले घृतश्राद्धम् । तदुक्तं विष्णुपुराणे—

गच्छन्देशान्तरं यस्तु श्राद्धं कुर्यात्स सर्पिषा ।

यात्रार्थमिति तत्प्रोक्तं प्रवेशे च न संशयः ॥ इति ।

देशान्तरगमनं तीर्थादियात्रारूपम् । प्रवेशश्च तत्समाप्त्यनन्तरं गृहप्रवेशः । स्कन्दपुराणेऽपि—

उपोष्य रजनीमिकां प्रातःश्राद्धं विधाय च ।

गणेशं ब्राह्मणात्तत्त्वा भुक्त्वा प्रस्थितवान्मुधीः ॥

पूर्वादिन उपोष्य द्वितीयेऽह्नि श्राद्धं कृत्वा भुक्त्वा गणेशादीन्नत्वा प्रस्थानं कुर्वीतेति चन्द्रिकाकारः । हेमाद्विस्तु श्राद्धोत्तरदिने प्रस्थानमित्याह । उपवासात्प्राग्मुण्डनं च कार्यमिति कमलाकरः । प्रायश्चित्तार्थयात्रायागेतदित्यन्ये । कार्पाटिकवेधेण तीर्थगमन एतदित्यपरे । इदं च श्राद्धं वक्ष्यमाणतीर्थश्राद्धवत्पद्मदेवतं नवदेवतं द्वादशदेवतं वैकोद्विष्टसहितं सर्वदेवतं वा कार्यम् । अत्र घृतं प्रधानम् । भक्ष्यभोज्यादिकं तु व्यञ्जनत्वेन दातव्यम् । विधिस्त्वर्घ्यावाहनविप्राङ्गुष्ठनिवेशनतृप्तिप्रश्रविकिरविसर्जनधर्जनादितीर्थश्राद्धवत् ।

अथ प्रयोगः । यात्रां चिकीर्षुर्ज्योतिःशास्त्रोक्तप्रकारेण प्रस्थानदिनं निश्चित्य तत्पूर्वेद्युरुपोष्य श्वोभूतेऽपराह्णे देशकालौ संकीर्त्य महालयवत्सर्वान्पितृनुद्दिश्यामुकयात्रां कर्तुमादौ तदङ्गत्वेन विहितं समस्तपितृनुद्दिश्य घृतश्राद्धं करिष्य इति संकल्प्य पुरुरवार्षवसंज्ञकवैश्वदेवार्थं द्वावेकं वा ब्राह्मणं निमन्त्र्य पित्राद्यर्थं सकृन्महालयवन्निमन्त्र्यार्घ्यावाहनधर्जपरिवेषणान्तं कुर्यात् । अग्नौकरणं कृताकृतम् । करणपक्षे घृतेनैव पाणिहोमः । तस्यैव मुरव्यत्वात् । अन्ननिवेदनकाल इदमन्नमित्यत्रेदं घृतं हविरित्यादिप्रयोगः । अन्यत्सर्वं वक्ष्यमाणतीर्थश्राद्धवत् । तर्पणं तु श्राद्धात्पूर्वं दर्शवत् । एवं घृतश्राद्धं समाप्य वैश्वदेवादिकं कृत्वा श्राद्धशेषमिष्टैः सह

शरीरोपचये शरीरोपचयहेतुभूतशान्त्यादिप्रयोगवदिति चन्द्रिकाकारः।
उपचयो वृद्धिः । अत्रापि दर्शश्राद्धवत्प्रयोगः । काम्यत्वाद् धूरिलोचनौ ।
अथ सद्यःश्राद्धम् । तदाह चन्द्रिकायां हारीतः—

तीर्थे द्रव्योपपत्तौ च न कालमवधारयेत् ।

पात्रं च ब्राह्मणं प्राप्य सद्यः श्राद्धं विधीयते ॥

तीर्थे गङ्गादौ । द्रव्योपपत्तावलम्ब्यश्राद्धीयद्रव्यप्राप्तौ चामावास्याप-
राह्लादिखपः कालो न प्रतीक्षितव्य इत्यर्थः । सिन्धौ मार्कण्डेयः—

यदा च श्रोत्रियोऽभ्येति गृहं वेदविदग्निचित् ।

तेनैकेनापि कर्तव्यं श्राद्धं च विधिवच्छुभम् ॥

इदं चापिण्डकं कार्यमिति हेमाद्रिः । एतज्जीवत्पितृकोऽपि कुर्यात् ।

उद्गाहे पुत्रजनने पित्र्येष्ट्यां सौमिके मन्त्रे ।

तीर्थे ब्राह्मण आयाते पडेते जीवतः पितुः ॥

इति भैत्रायणीयपरिशिष्टोक्तेः ।

अथैच्छिकश्राद्धम् । तदुक्तं मार्कण्डेयपुराणे—

श्राद्धार्हद्रव्यसंपत्तौ तथा दुःस्वप्नदर्शने ।

जन्मर्क्षे ग्रहपीडासु श्राद्धं कुर्वीत स्वेच्छया ॥ इति ।

अनयोर्दर्शवत्प्रयोगः ।

अथ नवान्नश्राद्धम् । तदा च चन्द्रिकायां शातातपः—

नवोदके नवान्ने च नवच्छन्ने तथा गृहे ।

पितरः स्पृहयन्त्यन्नमष्टकासु मघासु च ॥ इति ।

नवैक्षवेपु चेहन्ते पितरो हि मघासु चेति वृद्धपराशरपाठः । नवोदके
घर्षोपक्रम इति शूलपाणिः । आर्द्राप्रवेश इति गौडाः । नवकूपवाप्यादा-
वित्यपरे । वस्तुतस्तु नवतीर्थोदक इति युक्तमिति चन्द्रिकाकारः । नव-
च्छन्ने नवागारसंपादन इति स एव । पुराणेऽपि गृहे नवाच्छादने कृत
इति केचित् । नवान्नप्राशनकाल उक्तो ज्योतिःशास्त्रे—

ज्येष्ठाश्लेषार्धगे सूर्ये मृगमैत्रानिलात्मके ।

नवान्नैर्भोजनं श्राद्धं जन्मचन्द्रतिथौ न च ॥

आश्लेषाकृत्तिकाज्येष्ठामूलाजपदभेषु च ।

भृगुभौमदिने रिक्ते तिथौ नाद्यान्नवोदनम् ॥

वृश्चिके शुक्लपक्षे तु नवान्नं शस्यते बुधेः ।

प्राप्नोति । हययाने प्रतिग्रहकरणे च निष्फलमेव । गोयानं तु सर्वथा निषिद्धमेव । गोयाने गोवधः प्रोक्त इति मात्स्यात् । इदं शक्तस्य । अशक्तस्योक्तं कौर्मै—

नरयानं चाश्वतरीहयादिसहितो रथः ।

तीर्थयात्रास्वशक्तानां यानं दोषकरं न हि ॥ इति ।

एतत्सर्वं यानेन सकलमार्गातिवाहने ज्ञेयम् । किञ्चिद्यानगमने तु क्रोशयोजनादिगणनया फलतारतम्यमूह्यम् । नावा गमनं च निषिद्धम् । यत्र च मार्गप्रदेशे नद्यातिक्रमे पद्भ्यां गमनं न संभवति यत्र वा शङ्खोद्धारगङ्गासागरादी च तत्र नौकागमने न दोषः । अनेकदिननौकायानमात्रसाध्यानि यानि तीर्थानि समुद्रद्वीपनिष्ठानि तत्र द्विजैर्न गन्तव्यम् । यदा तु मार्गं कर्मनाशा नद्युपस्थिता तदा तज्जलस्पर्शो यथा न भवति तथा गन्तव्यम् ।

कर्मनाशाजलस्पर्शास्करतोयाविलङ्घनात् ।

गण्डकीवाहुतरणात्पुनः संस्कारमर्हति ॥

इति स्मरणात् । तथा चाङ्गवङ्गादिदेशगमनं निषिद्धं तत्रापि यात्रोद्देशेन गमने न दोषः ।

अङ्गवङ्गकलिङ्गेषु सौराष्ट्रमगधेषु च ।

तीर्थयात्रां विना यातः पुनः संस्कारमर्हति ॥

इति स्मृतेः । यात्रायाम् ब्रह्मचर्यत्वेऽप्यृतौ भार्यागमने न दोषः । गृहस्थस्य सपत्नीकस्यैव तीर्थयात्राधिकारः । न तु भार्यारहितस्य । पत्नीस्ताहित्वं च तस्या गुणवत्त्वे वेदितव्यम् । प्रायश्चित्तार्थयात्रायाम् भार्यारहितस्याप्यधिकारः । विधवायास्तु पुत्रज्ञात्याद्यनुमतेनैवाधिकारः । न स्वातन्त्र्येण । सधवायास्तु भर्तृविना नैवाधिकारः । भर्ता सहैवाधिकारः । ब्रह्मचारिणस्तु गुरुनिश्चुक्तस्यैवाधिकारः । न तद्रहितस्य । विधुरवानप्रस्थयतिक्षत्रियवैश्यशूद्राणामप्यधिकारः । तत्रापि क्षत्रियस्य वैश्यस्य ब्राह्मणपुरःसरस्यैवाधिकारः । शूद्रस्य तु विप्रसेवादिना । नात्राद्यस्थि प्रक्षेत्रुकामस्य सर्वथैवाधिकारः । अस्थिनयनमपि मातृपितृकुलजानाम् । उक्तं च—

भुञ्जीत । ततो देशकालौ संकीर्त्य श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थममुककामनयाऽमु-
कप्रायश्चित्तार्थं वाऽमुकयात्रां करिष्ये इति संकल्प्य गणेशं कुलदेवता-
दीन्ब्राह्मणान्घृद्धान्साधुंश्च संपूज्य नत्वा पितृंश्च नमस्कृत्य विभ्राजया
सुमुहूर्ते सुमुखश्चैकदन्तश्चेत्यादिमङ्गलमन्त्रान्पठन्मङ्गलशकुनदर्शनपूर्वकं
प्रस्थाय ग्रामं प्रदक्षिणीकुर्वन्गच्छेत् । तद्दिने क्रोशादवांग्रामान्तरं गत्वा
तत्रैव वसेत् । घृतश्राद्धदिने श्राद्धानन्तरं सुमुहूर्तालाभे श्राद्धोत्तरदिने
प्रस्थानं कुर्यात् ।

अथ प्रसङ्गात्संक्षेपेण तीर्थयात्राविधिरुच्यते । तत्र गमनकाले कार्पटी-
वेषं विधाय गच्छेत् । गयायामेवैष कार्पटीवेषः कार्य इति चन्द्रिका-
याम् । सर्वतीर्थयात्रायामपीति त्रिस्थलीसेतौ भट्टाः । कार्पटीवेषस्तु
कापायवस्त्रकञ्चुकादिनिर्मितः काश्यां वीवधग्राहकेषु प्रसिद्धः । वीवधः
कावडीति भाषया प्रसिद्धः । गन्धमाल्यशस्त्रकञ्चुकादिपरिहारः कार्प-
टीवेष इति त्रिस्थलीसेतौ । ततो मार्गं प्रतिदिनं प्रातः स्नात्वा प्रातःसं-
ध्यावन्दनं नित्यक्रियां च कृत्वोपोषितः शुचिब्रह्मचर्यादिनियमवान्प्रति-
ग्रहविवर्जितश्चाण्डालस्पर्शादिरहितः सन्निवासस्थलं गत्वा तत्र माध्या-
ह्निकस्नानसंध्यामोजनादिकं विधाय काले सायंसंध्यावन्दनं कृत्वा तत्रैव
वसेत् । तीर्थे गच्छंश्चरेत्संध्यास्तिष्ठ एकत्र मानव इति मारतात् । एवं
प्रतिदिनं गच्छेत् । मार्गं मूत्रपुरीषोत्सर्गं यथोक्तं शौचं कृत्वा गच्छेत् ।
चाण्डालरजस्वलादिस्पर्शं स्नायात् । यत्रानेनाहं स्पृष्ट इति ज्ञानं नास्ति
तत्र न स्पर्शदोषः ।

देवयात्राविवाहेषु यज्ञेषु प्राकृतेषु च ।

उत्सवेषु च सर्वेषु स्पृष्टास्पृष्टिर्न दुष्यति ॥

इति षट्त्रिंशन्मतात् । तदाऽप्यनिवार्यस्पर्शं देवदर्शनपूजायात्रादि
कार्यमेव । मोजनादौ तु स्नानमेवेति त्रिस्थलीसेतुसारे भट्टोजीदीक्षिताः ।
मार्गं त्वाशौचप्राप्तौ तत्रैव स्थित्वा शुद्धौ सत्यां गच्छेत् । मार्गवैषम्या-
दिना गत्यन्तराभावे सति तीर्थयात्रायामाशौचं नास्तीति पैठीनसिः ।
एवमेव रजस्वला स्त्री चत्वारि दिनानि स्थित्वा पञ्चमेऽहनि व्रजेत् ।
यानच्छत्रोपानत्पुनर्भोजनरहितस्तीर्थयात्रां गच्छन्पूर्णं फलं प्राप्नोति ।
छत्रोपानशुक्तस्तु त्रिपादं फलं प्राप्नुयात् । नखानसहितोऽर्धं फलं

प्राप्नोति । हययाने प्रतिग्रहकरणे च निष्फलमेव । गोयानं तु सर्वथा निषिद्धमेव । गोयाने गोवधः प्रोक्त इति मात्स्यात् । इदं शक्तस्य । अशक्तस्योक्तं कीर्त्तं—

नखानं चाश्वतरीहयादिसहितो रथः ।

तीर्थयात्रास्वशक्तानां यानं दोषकरं न हि ॥ इति ।

एतत्सर्वं यानेन सकलमार्गातिवाहने ज्ञेयम् । किञ्चिद्यानगमने तु क्रोशयोजनादिगणनया फलतारतम्यमूह्यम् । नावा गमनं च निषिद्धम् । यत्र च मार्गप्रदेशे नद्यातिक्रमे पद्भ्यां गमनं न संभवति यत्र वा शङ्खोद्धारगङ्गासागरादौ च तत्र नौकागमने न दोषः । अनेकदिननौकायानमात्रसाध्यानि यानि तीर्थानि समुद्रद्वीपनिष्ठानि तत्र द्विजैर्न गन्तव्यम् । यदा तु मार्गं कर्मनाशा नद्युपस्थिता तदा तज्जलस्पर्शो यथा न भवति तथा गन्तव्यम् ।

कर्मनाशाजलस्पर्शात्करतोयाविलङ्घनात् ।

गण्डकीचाहुतरणात्पुनः संस्कारमर्हति ॥

इति स्मरणात् । तथा चाङ्गवङ्गादिदेशगमनं निषिद्धं तत्रापि यात्रोद्देशेन गमने न दोषः ।

अङ्गवङ्गकलिङ्गेषु सौराष्ट्रमगधेषु च ।

तीर्थयात्रां विना यातः पुनः संस्कारमर्हति ॥

इति स्मृतेः । यात्रायां ब्रह्मचर्यत्वेऽप्यृतौ भार्यागमने न दोषः । गृहस्थस्य सपत्नीकस्यैव तीर्थयात्राधिकारः । न तु भार्यारहितस्य । पत्नीसाहित्यं च तस्या गुणवत्त्वे वेदितव्यम् । प्रायश्चित्तार्थयात्रायां भार्यारहितस्याप्यधिकारः । विधवायास्तु पुत्रज्ञात्याद्यनुमतेनैवाधिकारः । न स्वातन्त्र्येण । सधवायास्तु भर्तृविना नैवाधिकारः । भर्त्रा सहैवाधिकारः । ब्रह्मचारिणस्तु गुरुनियुक्तस्यैवाधिकारः । न तद्रहितस्य । विधुरवानप्रस्थयतिक्षत्रियवैश्यशूद्राणामप्यधिकारः । तत्रापि क्षत्रियस्य वैश्यस्य ब्राह्मणपुरःसरस्यैवाधिकारः । शूद्रस्य तु विप्रसेवादिना । मात्राद्यस्थि प्रक्षेप्तुकामस्य सर्वथैवाधिकारः । अस्थिनयनमपि मातृपितृकुलजानाम् । उक्तं च—

मातुः कुलं पितुः कुलं वर्जयित्वा नराधमः ।
अस्थीन्यन्यकुलोत्थानि नीत्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥

इदं च द्रव्यादिलोभविषयि(य)कम् । तदाह सिन्धावाश्वलायनः—

जीवनार्थं परास्थीनि धृत्वा तीर्थं प्रयाति यः ।

मातापित्रोर्विना सोऽपि पतितः परिकीर्तितः ॥ इति ।

दयादिना परास्थिनयने न दोषः । नयने फलश्रवणात् । मात्राद्युद्देशेन स्नानमुक्तं मार्कण्डेयपुराणे—

मातरं पितरं जायां भ्रातरं सुहृदं गुरुम् ।

यमुद्दिश्य निमज्जेत अटमांशं लभेत सः ॥

पैठीनसिरपि—

प्रतिकृतिं कुशमयीं तीर्थवारिणि मज्जयेत् ।

मज्जयेच्च यमुद्दिश्य सोऽष्टभागं फलं लभेत् ॥

कुशप्रतिकृतिः कुशप्रतिमैव कार्येत्येके । वक्ष्यमाणमन्त्रलिङ्गात्तन्नाम्ना
ग्रन्थिवन्धनमात्रं प्रतिकृतिरित्यपरे । कुशप्रतिमज्जने मन्त्रः—

कुशोऽसि कुशपुत्रोऽसि ब्रह्मणा निर्मितः स्वयम् ।

त्वयि स्नाते स च स्नातो यस्येदं ग्रन्थिवन्धनम् ॥ इति ।

इदं परार्थस्नानं प्रतिकृतिस्रपनं च जीवतामेवोद्देशेन कार्यम् । मृतानां तु तर्पणश्राद्धादिकमेव । यदि वाणिज्यराजसेवादिप्रसङ्गेन तीर्थं प्राप्नोति तदाऽपि स्नानं कार्यम् । तेन स्नानजं फलं प्राप्नोति । न तु तीर्थयात्रोद्भवम् । परवेतनं गृहीत्वा गच्छति चेत्पोडशांशं फलं प्राप्नोति । पराक्षमुञ्जानोऽपि तथैव । तीर्थान्तरप्रसङ्गेन गच्छतो मध्ये तीर्थं प्राप्तं चेदर्धं फलं भवति । प्रमासखण्डे—

यश्चान्यं कारयेच्छक्त्या तीर्थयात्रां तथेश्वरः ।

स्वकीयद्रव्ययानाभ्यां तस्य पुण्यं चतुर्गुणम् ॥ इति ।

तीर्थादि गच्छन् यदि देवात्परावृत्तस्तदा विशेषो गारुडे—

तीर्थं चलित्वा यः कोऽपि पुनरायाति वै गृहे ।

अनुज्ञातस्तु तैर्विप्रैः प्रायश्चित्तं समाचरेत् ॥ इति ।

भरणे तु तत्रैव—यस्तीर्थं संमुखो भूत्वा वज्रन्नशने कृते ।

चेन्निषेदन्तराले तु क्षपीणां मण्डलं व्रजेत् ॥

यस्तीर्थं व्रजन्नन्तराले मृतो यश्च मासोपवासादिरूपोपवासव्रताम्त-
राले मृतस्तयोरुभयोरप्यृपिलोकस्य प्राप्तिर्भवतीत्यर्थः । मार्गे पुण्यनदी-
प्राप्तौ विशेषश्चन्द्रिकायाम्—

मार्गेऽन्तरा नदीप्राप्तौ स्नानादिपरपारतः ।

अर्वांगेव सरस्वत्या एष मार्गगतो विधिः ॥ इति ।

अत्रापि स्नानोपवासमुण्डनश्राद्धादि कार्यमेवेति कमलाकरः । अर्धं
तीर्थफलं तस्येति वचनात् । वाणिज्यार्थं गते मुण्डनोपवासादि न
कार्यमिति त्रिस्थलीसेतौ भट्टाः । तत्कार्यमेवेति कमलाकरः । तीर्थ-
प्राप्तौ विधिः प्रभासखण्डे—

यानानि तु परित्यज्य भाव्यं पादचरेनरैः ।

लुठित्वा लोठनीं तत्र कृत्वा कार्पटिकाकृतिम् ॥ इति ।

यदि यानारूढः सोपानत्को वा गच्छेत्तदा तीर्थप्राप्तिदिने यावन्मार्गः
पादचारेण गन्तुं शक्यस्तावति मार्गे यानोपानदादि परित्यज्य पादचा-
रेण गत्वा यदा तीर्थं पश्येत्तदा लोठनीं लुठित्वा साष्टाङ्गं प्रणम्येत्यर्थः ।
कृत्वा कार्पटिकाकृतिमिति गृहान्निर्गमनसमये तदकरणेऽत्र प्रवेशदिने
कर्तव्येत्यर्थः । काशीखण्डे—

यदह्नि तीर्थप्राप्तिः स्यात्तदह्नः पूर्ववासरे ।

उपवासः प्रकर्तव्यः प्राप्तेऽह्नि श्राद्धदो भवेत् ॥ इति ।

उपवासं ततः कुर्यात्तस्मिन्नहनि सुमत ।

इति पुराणान्तराच्च प्राप्तिदिनात्पूर्वदिनं प्राप्तिदिने चोपवासोक्तेर्धि-
कल्प इति कमलाकरः । उपवासासमर्थस्तूपवासप्रतिनिधिं नक्त हवि-
प्यान्नमित्यादिकं शक्यनुसारेण कुर्यात् । चन्द्रिकायां स्मृतिः—

पूर्वमापुवनं तीर्थे मुण्डनं तदनन्तरम् ।

ततः स्नानादिकं कुर्यात्पश्चाच्छ्राद्धं समाचरेत् ॥ इति ।

आपुवनं मुसलस्नानम् । मन्त्रस्नानं तु मुण्डनोत्तरमेव ।

प्रथमं चालयेत्तीर्थं प्रणवेन जलं शुचि ।

अवगाह्य ततः स्नायाद्यथावन्मन्त्रयोगतः ॥

चालयेत्स्पृशेत् । प्रार्थनामन्त्रस्तु—

तीक्ष्णदंष्ट्र महाकाय कल्पान्तद्हनोपम ।

भैरवाय नमस्तुभ्यमनुज्ञां दानुमर्हसि ॥

इमं मन्त्रं समुच्चार्य तीर्थे स्नानं समाचरेत् ।

अन्यथा तत्फलस्यांधं तीर्थेशो हरति ध्रुवम् ॥ इति ।

प्रभासखण्डे—३० नमो देवदेवाय शितिकण्ठाय दण्डिने ।

रुद्राय चापहस्ताय चक्रिणे वेधसे नमः ॥

सरस्वती च गायत्री वेदमाता गरीयसी ।

संनिधात्री भवत्यत्र तीर्थे पापप्रणाशिनी ॥

सर्वेषामेव तीर्थानां मन्त्र एष उदाहृतः ।

इत्युच्चार्य नमस्कृत्वा(त्य) स्नानं कुर्याद्यथाविधि ॥

जाबालिः—प्रवाहाभिमुखो मज्जेद्यत्राऽऽपः प्रवहन्ति वै ।

स्थावरेषु च सर्वेषु आदित्याभिमुखस्तथा ॥ इति ।

मुण्डने तु विशेषः स्कान्दे—

मुण्डनं चोपवासश्च सर्वतीर्थेष्वयं विधिः ।

वर्जयित्वा कुरुक्षेत्रं विशालं विरजं गयाम् ॥ इति ।

सर्वतीर्थशब्दो महातीर्थपरः । विरजं लोणारं क्षेत्रं दक्षिणदेशस्थमिति कमलाकरः । उत्कलप्रदेशे यत्र धर्मराजेन गयासुरनाभौ विरजाद्विः स्थापितः स विरज इति त्रिस्थलीसेतुसारे । नैमिषं पुष्कलं गयामिति च क्वचित्पाठः । विशालं पुष्करं गयामिति च क्वचित् । इदं च वपनं श्मश्रुपूर्वकं केशलोमनखानां भवति । तत्राप्युदकसंस्थतायै दक्षिणश्मश्रुवपनमादौ । उदङ्मुखः प्राङ्मुखो वोपविश्य शिरसाकक्षोपस्थवर्जं कारयेत् । तीर्थे निषिद्धदिनेऽपि पत्न्यां गर्भिण्यां विवाहाद्यनन्तरमपि मुण्डनं कार्यम् । जीवत्पितृकेणापि कार्यम् । तच्च प्रयागे प्रतियात्रमन्यतीर्थे त्वाद्ययात्रायामेवेति कमलाकरः । अकृतचूडस्यापि प्रयागे मुण्डनं कार्यं नान्यत्रेति स एव । यतिभिस्तीर्थेऽपि ऋतुसंधिं विना नैव कार्यम् । आहिताग्निना तु पर्वव्यतिरिक्तकालेऽपि तीर्थनिमित्तकं मुण्डनं कार्यम् । विधवया च कार्यम् । प्रयागे तु सधवानामपि समूलं भवतीति भट्टाः । कमलाकरस्तु—

सर्वान्केशान्समुद्धृत्य च्छेदयेद्भ्रूलद्वयम् ।

एवमेव हि नारीणां शस्यते वपनक्रिया ॥

इति वचनादिदमेव युक्तमित्याहं । इदं च मुण्डनं दशमासानन्तरं पुनस्तीर्थप्राप्तौ कर्तव्यम् ।

संवत्सरे द्विमासोने पुनस्तीर्थं व्रजेद्यदि ।
मुण्डनं चोपवासं च ततो यत्नेन कारयेत् ॥

इति स्मरणात् । दशमासोत्तरं प्राप्तवावश्यकं कार्यं यत्नेनेत्युक्तत्वात् ।
अन्तराले तु फलेच्छया भवति न तु नियमत इति । एतत्प्रयागातिरि-
क्तसर्वतीर्थेषु । प्रयागे तु दशमासात्भागपि प्रतियात्रं मुण्डनं नियतमेव ।
तच्च योजनत्रयाधिकदेशागतेन कार्यम् । न तद्भूयनदेशागतेन ।

प्रयागे प्रतियात्रं तु योजनत्रय इष्यते ।
क्षीरं कृत्वा तु विधिवत्ततः स्नायात्सितासिते ॥

इति वचनात् । छिन्नानि केशलोमनसादीनि तीर्थतीरे गतं कृत्वा
तत्र निक्षिपेत् । गङ्गायां तु यथा स्वयमेव केशादीनि गङ्गाजले पतन्ति
तथा वापयेत् । अपि वा वायुनेरितानि जले यथा पतन्ति तत्र देश
उपविष्टो वापयेत् ।

केशानां यावती संख्या छिन्नानां जाह्नवीजले ।
तावद्वर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते ॥

इति वचनात् । स्नानोत्तरं तर्पणं ततस्तीर्थश्राद्धमिति चन्द्रिकायाम् ।
त्रिस्थलीसेतो वचनम्—

प्रत्यावृन्दोदकस्नानं नद्यां वर्ज्यं द्विजातिभिः ॥ इति ।

यत्र स्थलविशेषे नद्यां विपरीतप्रवाहादि तत्र स्नानं न कार्यमित्यर्थः ।
निषेधान्तरमपि तत्रैव—

शाल्मलीतिन्तिणीनिम्बकरञ्जाश्च हरीतकी ।
कोविदारकपित्थार्कवदर्यैरण्डशिग्रवः ॥
शेलुश्च सदिरश्वैषां स्नानं छायासु वर्जयेत् ।

बदरी च विभीतका, इति पाठान्तरम् । सिन्धी ब्रह्मपुराणम्—

अकालेऽप्यथवा काले तीर्थे श्राद्धं च तर्पणम् ।
अविलम्बेन कर्तव्यं नैव विघ्नं समाचरेत् ॥
यदैव दृश्यते तीर्थं तदा पर्वसहस्रकम् ॥ इति ।

एतच्च तीर्थस्नानतर्पणश्राद्धादि मलमासेऽपि कार्यम् । तथाऽऽशौचे
रात्रावपि कृतमोजनोऽपि कुर्यात् । मुण्डनं तु परेऽहुरेव पितृमृतिवत् ।

श्राद्धं त्वामेन हेम्ना वा न त्वन्नेन । अन्नश्राद्धं तु रात्रौ भोजनोत्तरं च तीर्थप्राप्तौ द्वितीयदिने । आशौचे तु तदपगम एव । इदं चाऽऽकस्मिक-तीर्थप्राप्तौ । न तु बुद्धिपूर्वकमाशौचादौ तीर्थप्राप्तिः कार्या । अत्र तर्पणं विवाहांद्यनन्तरे काले निपिद्धदिनेऽपि सतिलं कार्यम् । इदं च तर्पण-मार्द्रवासा एव जले कुर्यात् । आर्द्रवासा जले कुर्यात्तर्पणाचमनं जप-मिति वचनात् । तच्चाऽऽदौ स्नानाद्गतर्पणं कृत्वा पश्चात्तथैव देवर्षितर्पणं कृत्वा पितॄणामपि कार्यम् । संन्यासिना तु तीर्थेऽपि तर्पणश्राद्धादिकं न कार्यम् । स्नानादिकं तु कार्यमेव ।

अथ तीर्थश्राद्धम् । तच्च रात्रिसंध्ययोर्भुक्तवतश्च तीर्थप्राप्तौ द्वितीय-दिने । आशौचे तीर्थप्राप्तावाशौचान्ते । मलमासे तीर्थप्राप्तौ तदा श्राद्धं कृत्वा शुद्धमासे पुनः कार्यमिति भट्टोजीदीक्षिताः । चन्द्रिकायां पद्म-पुराणम्—

तीर्थश्राद्धं प्रकुर्वीत पक्वान्नेन विशेषतः ।

आमान्नेन हिरण्येन कन्दमूलफलैरपि ॥

एतत्तीर्थजलसमीपे चेदामेन हेम्ना वा गृहे त्वन्नेनैवेति केचिद्व्यव-स्थामाहुः ।

स्कन्दपुराणे—ब्राह्मणान्न परीक्षेत तीर्थक्षेत्रनिवासिनः ।

एतच्च श्राद्धार्हब्राह्मणालाभे वेदितव्यमिति त्रिस्थलीसेतुसारे । पाति-त्याद्यत्यन्तदोषयुक्तस्तु परिहर्तव्य एवेति स्मृतिरत्नावह्वयाम् ।

देवीपुराणे—श्राद्धं च तत्र कर्तव्यमर्घ्यावाहनवर्जितम् ।

तथा—अर्घ्यमावाहनं चैव द्विजाङ्गुष्ठानिवेशनम् ।

तृप्तिप्रश्नं च विकिरं तीर्थश्राद्धे विवर्जयेत् ॥

तथा—आवाहनं न दिग्बन्धो न दोषो ह्यदिसंभवः ।

सकारुण्यं च कर्तव्यं तीर्थश्राद्धं विचक्षणैः ॥

भविष्ये—आवाहनं विसृष्टिश्च तत्र तेषां न विद्यते ॥ इति ।

अग्नौकरणं नेति स्मृतिरत्नावह्वयाम् । कर्तव्यमिति बहवः । तच्च विप्रभोजने पाणावेव । यदा विप्राभावे तीर्थसमीपे कुशबहुषु श्राद्धं क्रियते तदा तीर्थजल एव होम इति गोपीनाथभट्ट्याम् । तत्रैव देवलः—

न पात्रं श्येनकाकादीन्पक्षिणः प्रतिषेधयेत् ।
तद्रूपाः पितरस्तत्र समायान्तीति वै श्रुतिः ॥

विष्णुधर्मोत्तरे-तीर्थश्राद्धे सदा पिण्डान्क्षिपेत्तीर्थे समाहितः ।

दक्षिणाभिमुखो भूत्वा पिड्या दिक्सा प्रकीर्तिता ॥ इति ।

तीर्थश्राद्धमन्यद्वा सपुत्रविधवा नैव कुर्यात् ।

सपुत्रया न कर्तव्यं भर्तुः श्राद्धं कदाचनेति निषेधात् । केचित्पुत्रव-
त्याऽपि पुत्रासंनिधाने ब्राह्मणद्वारा श्राद्धं करणीयमित्याहुः । अपुत्र-
विधवया तु कार्यमेव । यतिरपि न कुर्वीत । न कुर्यात्सूतकं भिक्षुः
श्राद्धं पिण्डोदकक्रियामिति वचनात् । एतच्चानुपनीतिनापि कार्यमिति
कमलाकरः । जीवात्पितृकेणापि कार्यम् ।

वृद्धौ तीर्थे च संन्यस्ते ताते च पतिते सति ।

येभ्य एव पिता दद्यात्तेभ्यो दद्यात्स्वयं सुतः ॥

इति स्मरणात् । अत्र तर्पणे श्राद्धे च पितरः पूर्वोक्तसकृन्महा-
लयश्राद्धवज्जेयाः । अत्र पिण्डप्रदाने सर्वपिण्डान्ते सामान्यपिण्डं
दद्यात् ।

ततः पिण्डमुपादाय हविषः संस्कृतस्य च ।

ज्ञातिवर्गस्य सर्वस्य सामान्यं पिण्डमुत्सृजेत् ॥

इति पृथ्वीचन्द्रोदयोदाहृतवचनात् । तर्पणेऽपि सामान्याञ्जलिमाब्रह्म-
स्तम्बेत्यादिषायवीषोक्तश्लोकद्वयेन दद्यादिति त्रिस्थलीसेतुसारे । अत्र
तर्पणश्राद्धयोः समानोपादानाच्छ्राद्धाङ्गतर्पणं पृथक्कार्यमिति केचित् ।
अपि वा कालेक्यात्प्रसङ्गसिद्धिरित्यन्ये । तीर्थश्राद्धे काम्यत्वे धूरि-
लोचनौ । नित्यत्वे पुरुरघार्द्रवावेव । केचिद्धनुर्धराविति वदन्ति ।
पठन्ति च-तीर्थे चैव धनुर्धराविति । तच्चिन्त्यम् । तीर्थश्राद्धं यथोक्त-
विधिना श्राद्धकरणाशक्तौ पूर्वोक्तानुकल्पेनैकब्राह्मणदर्भबद्धामहिरण्य-
पिण्डदानमात्रादिविधिना कुर्यात् । अशक्तौ तर्पणमात्रम् । अविभक्ता
भ्रातरो युगपत्तीर्थे गताश्चेज्ज्येष्ठेनैव कार्यम् । विभक्तास्तु पृथगेव ।
नदीनां रजोदोषकाले तत्र स्नानादि न कुर्यात् । तदुक्तं सिन्धौ-

सिंहकर्कटयोर्मध्ये सर्वा नद्यो रजस्वलाः ।

तासु स्नानं न कुर्वीत वर्जयित्वा समुद्रगाः ॥ इति ।

एकयोजनादिपद्मयोजनगान्ताः स्रवन्त्यः कुल्याः । ततो दशयोजन-
गान्ता अल्पनद्यः । ततश्चतुर्विंशतियोजनगान्ता नद्यः । तदधिकयोजन-
गान्ताः समुद्रगाश्च महानद्यः । यत्र च पुराणादिषु महानदीव्यपदेशस्ता
अपि महानद्यः । महानदीनामपि रजोदोष उक्तो भविष्योत्तरपुराणे—

आदौ तु कर्कटे देवि महानद्यो रजस्वलाः ।

त्रिदिनं तु चतुर्थेऽह्नि शुद्धाः स्युर्जाह्नवी यथा ॥

महानद्यश्च ब्रह्मपुराणे—

गोदावरी भीमरथी तुङ्गभद्रा च वेणिका ।

तापी पयोष्णी विन्ध्यस्य दक्षिणस्थाः प्रकीर्तिताः ॥

भागीरथी नर्मदा च यमुना च सरस्वती ।

विशोका च वितस्ता च विन्ध्यस्योत्तरतः स्थिताः ॥

द्वादशैता महानद्यो देवर्षिक्षेत्रसंभवाः । इति ।

गङ्गादिविषये तु देवलः—

गङ्गा च यमुना चैव पृथक्जाता सरस्वती ।

रजसा नाभिभूयन्ते ये चान्ये नदसंज्ञकाः ॥

नदाश्च—शोणसिन्धुहिरण्याख्याः कोकिलाहितघर्घराः ।

शतद्रुश्च नदाः सप्त पावनाः परिकीर्तिताः ॥ इति ।

अन्यत्र रजोदुष्टमपि जलं गङ्गाजलसंयुतं सददुष्टं भवति । अयं च
रजोदोषस्तीरवासिनां नास्तीति योगयाज्ञवल्क्यः । वायुपुराणे—

अधिमासे जन्मदिने अस्ते च गुरुशुक्रयोः ।

तीर्थयात्रा न कर्तव्या गयां गोदावरीं विना ॥

पुराणान्तरे च—

गोदावर्यां गयायां च श्रीशैले ग्रहणद्वये ।

सुरासुरगुरुणां च मौढ्यदोषो न विद्यते ॥

वायवीये—गयायां सर्वकालेषु पिण्डं दद्याद्विधानतः ।

अधिमासे जन्मदिने अस्ते च गुरुशुक्रयोः ॥

न त्यक्तव्यं गयाश्राद्धं सिंहस्थे च बृहस्पतौ ।

पद्मपुराणे—काशीमुद्दिश्य यातानां सर्वः स्यात्समयः शुभः ।

मङ्गलं सकलं वस्तु न किञ्चिद्धि विचारयेत् ॥ इति ।

तीर्थं संक्षेपतः सर्वप्रायश्चित्तमपि कुर्वन्ति शिष्टाः ।

अथ संक्षेपतस्तीर्थविधिप्रयोगः । तीर्थप्राप्तिदिनात्पूर्वादिने प्राप्तिदिने वोषोष्य कार्पटीवेपं विधाय पादुकायानादि परित्यज्य पादचारी तीर्थं दृष्ट्वा साष्टाङ्गं प्रणम्य तीर्थसमीपमेत्याक्षतगन्धपुष्पफलताम्बूलहिरण्यादियुक्तमञ्जलिमुकतीर्थाय नम इति दत्त्वा तत्रस्थान्द्विजांश्च साष्टाङ्गेन प्रणम्य तदनुज्ञया शरीरमलापकर्षस्नानं तूष्णीं कृत्वाऽऽर्द्रवासा ब्रह्मदण्डार्थं यथाशक्ति हिरण्यं ब्राह्मणानामग्रे निधाय समस्तसंपादिति श्लोकचतुष्टयं पठन्ब्राह्मणान्प्रदक्षिणीकृत्य साष्टाङ्गं प्रणम्य प्रार्थयेत् ।

सर्वे धर्मविवेकतारो गोप्तारः सकला द्विजाः ।
मम देहस्य संशुद्धिं कुर्वन्तु द्विजसत्तमाः ॥
मया कृतं महाघोरं ज्ञातमज्ञातकिल्बिषम् ।
प्रसादः क्रियतां मह्यं शुमानुज्ञां प्रयच्छथ ॥
पूज्यैः कृतपवित्रोऽहं भवेयं द्विजसत्तमैः ।

मामनुगृह्णन्तु भवन्त इत्युक्त्वा विप्रानुमत्या यथाशक्ति प्रायश्चित्तं निश्चित्य देशकालौ स्मृत्वाऽमुकगोत्रस्यामुकशर्मणो मम जन्मान्तराभ्यासाज्जन्मप्रभृत्यद्ययावज्ज्ञानाज्ञानकामाकामसकृदसकृत्कृतकायिकवाचिकमानसिकसांसर्गिकस्पृष्टास्पृष्टमुक्तामुक्तपीतापीतसकलपातकातिपातकोपपातकलघुपातकसंकराकरणमलिनीकरणापात्रीकरणजातिभ्रंशकरप्रकीर्णकपातकानां मध्ये संभावितपातकानां निरासार्थं युष्मदनुज्ञयाऽमुकप्राजापत्यात्मकप्रायश्चित्तप्रत्याज्ञायभूतं गोनिष्क्रयद्वयं ब्राह्मणेभ्यो दातुमहमुत्सृज्य इति संकल्प्य तद्वयं ब्राह्मणेभ्यो दत्त्वाऽनेन प्रायश्चित्ताचरणेन सकलपापापहमहाविष्णुः प्रीयताम् । इति प्रायश्चित्तं कृत्वा पुनर्देशकालौ स्मृत्वा मम समस्तपापक्षयार्थमस्मिन्नमुकतीर्थे वपनं करिष्ये इति संकल्प्य

आत्मनः शुद्धिकामश्च पितॄणां वृत्तिहेतवे ।
वपनं कारयाम्यद्य हे गङ्गे तव संनिधौ ॥
यानि कानि च पापानि ब्रह्महत्यासमानि च ।
केशानाश्रित्य तिष्ठन्ति तस्मात्केशान्वपाम्यहम् ॥

इति मन्त्रमुक्त्वा प्राङ्मुख उदङ्मुखो वा कक्षोपस्थवर्जं श्मश्रुकेशलोमनखानि वापयेत् । तीर्थान्तरे तु हे तीर्थं तव संनिधौ । समुद्रे हे सिन्धो तव संनिधाविति यथार्थमूहः । इदं केशवापनं शिखामारभ्या-

धस्तात्कार्यम् । एवं वापनं विधाय शुद्धयर्थं तूष्णीं स्नात्वा द्वादशाङ्गु-
लमपामार्गादिदन्तधावनकाष्ठम्,

आयुर्बलं यशो वर्चः प्रजाः पशुवसूनि च ।
ब्रह्मप्रज्ञां च मेघां च त्वं नो देहि वनस्पते ॥

इति मन्त्रेणाऽऽदाय—

मुखदुर्गन्धिनाशाय रदानां च विशुद्धये ।
धीवनाय च गात्राणां कुर्वेऽहं दन्तधावनम् ॥

इति मन्त्रेण दन्तान्संशोध्य द्वादश गण्डूपान्कृत्वाऽऽचम्य प्राणा-
नायम्य देशकालस्मरणपूर्वकं हेमाद्याद्युक्तप्रकारेण स्नानसंकल्पं कुर्यात् ।
स यथा—अस्य श्रीमन्महामगवतः सच्चिदानन्दरूपस्य श्रीमदादिना-
रायणस्याचिन्त्यापरिमितशक्त्या प्रियमाणानां महाजलीधमध्ये परि-
भ्रममाणानामनेककोटिब्रह्माण्डानामेकतमेऽध्यक्तमहदहंकारपृथिव्यप्तेजो-
वाय्वाकाशाद्यावरणैरावृतेऽस्मिन्महति ब्रह्माण्डकटाहकरण्डे सकलज-
गदाधारशक्तिकूर्मवराहानन्तैरावतपुण्डरीकवामनकुमुदाञ्जनपुष्पदन्तसा-
र्वभौमसुप्रतीकाष्टदिग्गजांपरिप्रतिष्ठितातलवितलसुतलतलातलरसातलम-
हातलपातालाख्यसप्तलोकोपरिभागे भूर्लोकं भुवर्लोकस्वर्लोकमहर्लोकं
जनोलोकतपोलोकसत्यलोकख्यलोकपट्टकस्याधोभागे महाकालायमा-
नफणिराजशेषसहस्रफणामण्डलविधृते दिग्दन्तिशुण्डादण्डस्तम्भिते
बहिरन्धतमसाऽऽवृतेनान्तःसूर्यप्रकाशितेन लोकालोकाचलेन बलयिते
लवणेशुसुरासर्पिर्दधिक्षीरस्वाददृक्कारव्यमहार्णवपरिवेष्टिते जम्बुपृथ्वकुश-
क्रौञ्चशालमलशाकपुष्कराख्यसप्तद्वीपविराजिते स्वर्णप्रस्थचन्द्रकश्वेताव-
र्तमणसिंहलमहारमणपारसीकपाञ्चजन्यलङ्काद्युपद्वीपविराजिते एवं-
विधसरोरुहाकारपञ्चाशत्कोटियोजनविस्तीर्णभूमण्डले तुहिनाचलहेमकू-
टनिषधर्नालश्वेतशृङ्गिगन्धमादनपारियात्राख्याष्टसीमाचलैर्विभक्ते तन्म-
ध्यवर्तिभारतकिंपुरुपहारिवर्षेलावृतरम्यकहिरण्मयकुरुभद्राश्वकेतुमाला-
ख्यनववर्षशोभिते जम्बुद्वीपे नानावर्णकेसराचलशिसररत्नबीजाञ्चित-
भूसरोरुहकर्णिकायमानस्य मेरोर्दक्षिणदिग्भागे दक्षिणोदधिहिमाचल-
योर्मध्यप्रदेशे नवसहस्रयोजनविभक्त इन्द्रद्वीपकशेरुताम्रपर्णीगमस्तिना-
गसौम्यगन्धर्ववारुणभारताख्यनवसण्डवत्यास्मिन्भारते वर्षे दक्षिणोदधि-

प्रभृतिसहस्रयोजनवति भरतखण्डे स्वाभ्यवन्तिकुरुक्षेत्रादिसमभूमध्यरे-
 साया अमुकदिग्भागेऽयोध्यामथुरामायाकाशीकाञ्चप्रवन्तिद्वारवत्पादि-
 मुक्तिक्षेत्रवत्यामस्यां कर्मभूमौ भागीरथीविन्ध्याचलगोदावरीणां दक्षि-
 णदिग्भागे कावेरीमलयाचलरामसेतूनामुत्तरदिग्भागे श्रीशैलहेमकूट-
 किष्किन्धागरुडाचलवेङ्कटाचलारुणागिरिहस्तिगिरिप्रभृतिपुण्यशैलवति
 दण्डकारण्ये नानापुण्यतीर्थवत्यस्मिन्देशविशेषेऽमुकतीर्थे श्रीमदनेकको-
 टिव्रह्माण्डघटनायासरोमविवरस्य विराड्छापिणो भगवतो महापुरुषस्य
 शेषपर्यङ्कशायिनः श्रीविष्णोराज्ञया प्रवर्तमानस्य तन्नाभिस्थानसरोरुहा-
 दुत्पन्नस्य सकलवेदानिधेः सकलजगत्त्रष्टुः परार्धद्वयजीविनो ब्रह्मणः
 प्रथमपरार्धपञ्चाशत्यामतीतायां द्वितीयपरार्धे श्वेतवराहकल्पे प्रथमवर्षे
 प्रथममासे प्रथमपक्षे प्रथमदिवसेऽहनि उदयादित्रयोदशघटिकास्वती-
 तासु स्वायंभुवस्वारोचिपोत्तमतामसरैवतचाक्षुपाख्येषु पटसु मनुषु
 ध्यतीतेषूपरितनघटिकायां सप्तमे वैवस्वतमन्वन्तरे सप्तविंशतिमहायुगेषु
 गतेषु अष्टाविंशतितमे महायुगे पुरुहूतनामेन्द्रसमये कृतत्रेताद्वापरेषु
 गतेषु वर्तमाने कलियुगे प्रथमपादे बौद्धावतारे शालिवाहनशके सौर-
 चान्द्रमाने प्रमवादिषष्टिसंवत्सरान्तर्गतप्रथमविंशत्यां वर्तमाने ध्यावहा-
 रिके प्रमोदनामसंवत्सरे दक्षिणायने वर्षतीर्त्तौ भाद्रपदे मासे शुक्लपक्षे
 दशम्यां पुष्यतिथौ मन्दवासरे पूर्वाषाढानक्षत्र आयुष्मद्योगे तैतिलक-
 रणे सिंहस्थे सूर्ये धनुस्थे चन्द्रे सिंहस्थे भौमे कन्यास्थे बुधे धृषभस्थे
 देवगुरौ तूलास्थे शुके वृश्चिकस्थे शनैश्चरे कन्यास्थे राहौ मीनस्थे केता-
 वेवंगुणविशिष्टपुष्यकालेऽमुकगोत्रस्यामुकनक्षत्रेऽमुकराशौ जातस्यामुक-
 नामधेयस्य ममेह जन्मनि जन्मान्तरे च नानायोनिषु ज्ञानतोऽज्ञा-
 नतश्च चात्यकौमारयौवनवार्धकेषु जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्यवस्थासु मनोवाक्काय-
 कर्मभिः कामक्रोधलोभमोहमदमात्सर्यैस्त्वक्चक्षुःश्रोत्रजिह्वाघ्राणवाक्पा-
 णिपादपायूपस्थैः संभावितानां प्रकाशकृतब्रह्महत्यासुरापानसुवर्णस्तेय-
 गुरुतल्पगार्यानां महापातकानां तत्संसर्गाद्यतिपातकानां रहस्यकृतब्रह्म-
 हत्यासुरापानसुवर्णस्तेयगुरुतल्पगार्यानां महापातकानां तत्संसर्गित्वानु-
 ग्राहकत्वप्रयोजकत्वमित्रभावोपदेष्टृत्वानुमन्तृत्वप्रोत्साहकत्वादिमहापात-
 कप्रतिदिष्टातिपातकानां गुर्वधिकेषवेदनिन्दासुहृद्ब्रधाधीतनाशनादिब्रह्म-
 हत्यासमरूपपातकानामुत्कर्षानृतभाषणामक्षयभक्षणरजस्वलासुरास्थाद-
 नादिमुरापानसमपातकानामश्वरत्नमनुष्यहरणानिक्षेपहरणदेवब्राह्मणद्वय-
 भूमिहरणधेनुहरणादिसुवर्णस्तेयसमरूपपातकानां पितृष्वसृमातृष्वसृमातृ-

लभार्याज्येष्ठभ्रातृपत्नीमातुःसपत्नीपितृव्यपत्नीपितृव्यपत्नीभगिनीदुहितृ-
 सखिभार्याकुमार्यज्ञातरूपन्तजस्त्रीस्नुपानृपपत्नीश्रोत्रियर्त्विगुपाध्याया-
 चार्यमित्रपत्नीरजस्वलाशरणागताहीनवर्णासियोनिजासगोत्रास्त्रीगमना-
 दिगुरुतल्पसमरूपपातकानां सोमयागस्थक्षत्रियवैश्यवधाविज्ञातगर्भारज-
 स्वलात्रिगोत्रादीक्षितस्त्रीगुर्विणीवधादिमहापातकसमरूपपातकानामुक्क-
 र्पणानृतभाषणकलञ्जादिनिपिन्द्रमक्षणरजस्वलामुखास्वादन(?)कूटसा-
 क्ष्यसुहृद्बन्धनादिपरिवेदनमृतकाध्ययनाध्यापनपारदार्यपारिवित्त्यवार्धुष्य-
 लवणविक्रयस्त्रीशूद्रविद्रक्षात्रियवधनिन्दितार्थोपजीवननास्तिक्यव्रतलोप-
 करणसुतविक्रयधान्यपशुस्तेयायाज्ययाजनापितृमातृसुतादित्यागतदाका-
 रामविक्रयकन्यादूषणपरनिन्दकयाजनपरिवित्तिकन्याप्रदानकौटिल्यव्रत-
 लोपात्तमार्थक्रिषारम्भमद्यपस्त्रीनिषेवणस्वाध्यायाग्निपरित्यागेन्धनार्थदुम-
 च्छेदनस्त्रीहिंसनयन्त्रविधानव्यसनात्मविक्रयशूद्रद्रव्यहीनसख्यहीनयोनि-
 निषेवणानाश्रमवासपरान्नपुष्टयसञ्छास्त्राभिगमनाकराधिकारिताभार्या-
 विक्रयाद्युपपातकानामजाविषरोद्गमगेभमीनाहिमहिषाश्ववधादिसंकरी-
 करणानां कृमिकीटवयोवधमद्यानुगतद्रव्यभोजनफलेक्षुकुसुमस्तेयादिम-
 लिनीकरणानां निन्दितधनधान्यकरीपजीवनासत्यभाषणशूद्रसेवाद्यपा-
 त्रीकरणानां मद्यगन्धाघ्राणब्राह्मणपीडनसामान्यस्त्रीभैथुनादिजातिभ्रंश-
 करणानां विहितकर्मत्यागनिपिन्द्राचरणेन्द्रियानिग्रहपरमर्माद्वाटनसूच-
 कत्वाशौचस्नानसंध्यावन्दनजपहोमपञ्चमहायज्ञरहितभोजनदिवाद्विवार-
 भोजनसस्यच्छेदनतरुगुल्मलतादिच्छेदनक्लैव्यस्त्रीवश्यश्वपतिक्लीबन्नात्यप-
 रिवेत्तृपरिवित्तिशूद्रसेवकवार्धुषिकनिजकर्मविहीनान्नभोजनयत्यन्नभोज-
 नयतिप्रेरितान्नयतिपक्वान्नयतिपात्रस्थान्नयतिस्पृष्टयतिदापितान्नभोजन-
 शूद्रस्पृष्टशूद्रदृष्टशूद्रानुमतशूद्राधिकृतशूद्रयाचितान्नभोजनग्रहणभोजन-
 ग्रहणकालपक्वान्नभोजनपर्वकालरात्रिभोजनानिवेदितान्नभोजनहस्तद-
 स्तान्नहस्तपरिविष्टान्नादिभोजनप्रेतपिशाचोद्देश्यभोजनबलिदत्तान्ननीरा-
 जितान्नभोजनवटाश्वत्थादिनिपिन्द्रपात्रभोजनग्रामयाजकदेवलकवृपली-
 पातिमाहिषिकशिवद्विजशाक्तपापण्डपाशुपतचिह्निताङ्गचिकित्सकज्यौ-
 तिषिकाशौचिपतितान्नभोजनभिन्नकांस्यपात्रभोजनताम्रालावुदारुपाया-
 णमृत्पात्रभोजनरजस्वलाचाण्डालादिवाक्यश्रवणभोजनदग्धपुरीषपूतिग-
 न्धिभुक्तोच्छिष्टभोजनगणान्नदीक्षितान्नशूद्रपुरोहितान्नपर्यायान्नशूद्रपात्र-
 स्थान्नभोजनमहापुरुषोद्दिष्टान्नभोजनानुचितान्नभोजनशूद्रभुक्तशेषान्नग्रा-

मान्त्यजदत्तशेषान्नभोजनसदाभिक्षान्नदंपतीभुक्तशेषान्नभोजनजैनबौद्ध-
 चार्वाकिसखाह्यणान्नभोजनकारागृहपानभोजनसरोप्राजाविमहिपीक्षी-
 रादिपानविवत्साविगतगर्भानिर्दशगोक्षीरादिपानस्तन्यपानवामहस्तैकह-
 स्तवर्षधारापरदत्तजलपानपिण्याककृसरसंयावपायसापूपमांसपुरोडाशा-
 दिवृथाभक्षणरेतोविष्णुत्रकेशकीटकादिमिश्रितान्नभोजनताहृजलपान-
 च्छर्दितान्नभोजनवार्ताककलिङ्गगृञ्जनरक्तमूलकादिनिषिद्धभक्षणनिषि-
 द्धशिवनिर्माल्यादिभक्षणारनालंयवतण्डुलान्नभक्षणगोमुखजलपानयोनि
 भक्षणयोन्यास्वादनदिवास्वापनदिवामैथुनदासीविश्याकुलटावितन्तुपरा-
 वरुद्धगर्भिणीसाधारणीभूतपरस्त्रीगमनतिर्यग्योनिगमनमुखमैथुनरथपारा-
 जमार्गवृक्षच्छायावृक्षदेवालयगृहाङ्गणगोष्ठवृन्दावनजलाशयादिस्थलरे-
 तोविष्णुत्रकरणापितृमात्राचार्यादिशुश्रूषाराहित्यदर्शमहालयसंक्रान्तिव्य-
 तीपाताष्टकालभ्ययोगगजच्छायादिश्राद्धविस्मरणग्रहणपुण्यकालादिघ्रा-
 नदानादिराहित्यसंध्यात्रयवस्त्रपरिवर्तनौपासनादिराहित्यसंध्याकालसं-
 लापताम्बूलचर्वणभोजनमैथुननिद्राद्येकादश्यहोरात्रभोजनाशुद्धजलस्ना-
 ननग्नस्नानामन्त्रकस्नाननिषिद्धदिनाभ्यङ्गस्नानसंनिहिततीर्थोल्लङ्घनती-
 र्थास्नानकच्छराहित्यद्विकच्छकौपीनपुच्छादिकृतकच्छकत्वस्वग्रामदेवो-
 त्सयादर्शनतदुत्सवजनपद्ग्रामकुलाचारोल्लङ्घनगुर्वाचार्याविप्रश्रोत्रिया-
 हिताग्निनृपकार्योल्लङ्घनविप्रत्वंकारहुंकारतिरस्कारवाद्पराजयप्रापणास-
 हायारण्यमार्गगमनब्राह्मणदण्डनभर्त्सनताडनशोणितघ्रावणमलिनामे-
 ध्यनीलादिवस्त्रधारणहरिहरगुर्वाचार्यानिन्दाश्रवणब्रह्मदूषणक्षोभकरणस-
 द्बृत्तिपरित्यागक्षत्रियादिवृत्तिधनार्जनगानिरोधनस्वयंघृतहलकर्षणकू-
 पिजीवनोत्क्रोचजीवनपीतावाशिष्टोदकस्नानचाण्डालकारितकृपिजीवन-
 चाण्डालकारितकृपिधान्यशलाहृपुष्पफलभोगचाण्डालकृतथापीकूपत-
 टाकोदकपानान्यकारितप्रपाजलपानकरमर्दिततक्रपानादिशिरोभ्यक्ताव-
 शिष्टतैलपानसाभिलाषविषयदर्शनदुर्मरणसंकल्पकरणशस्त्रधारणसाभि-
 लाषपरस्त्रीनिरीक्षणमिथुनीभूतस्त्रीनिरीक्षणनग्नस्त्रीनिरीक्षणहीनवर्णाभि-
 वादनचार्वाकपापण्डपूजितदेवाभिवादनपरोपतापकरणपरोपकारनाशतृ-
 णगुल्मलतादिनाशगोमांसगन्धाघ्राणचाण्डालस्पर्शनदर्शनसंभाषणपाक-
 भेदपङ्क्तिभेदकरणम्लेच्छमध्यनिवासम्लेच्छद्रव्योपभोगयाचमानदीनान्ध-
 कृपणक्षेपणतिलादिनानाप्रकारदुष्प्रतिग्रहनियमरहितवेदपुराणशास्त्राध्य-

यनाध्यापनध्यवहारपक्षपातसाधारणब्राह्मणगृहसीमाकुल्यातटाकूपारा-
माद्यपहरणपशुपक्षिवन्धनशीतवातातपवर्षचौराद्यापद्रुतदुःखानिवारणान-
र्हासनशयनप्रदानविषमभाषणवाक्पारुष्यदण्डपारुष्याविहितकालेऽवि-
हिताचरणमित्रस्वामिसुहृदाचार्यैर्दभार्यादेवतावञ्चनपरमात्मस्मरणराहि-
त्यादीनां प्रकीर्णकानां सकृत्कृतानामभ्यस्तानामत्यन्तचिरकालनिरन्तरा-
भ्यस्तानां महापातकादीनां प्रकीर्णकान्तानां नवविधानां बहुविधानां
सर्वेषां पापानामपनोदार्थमेतत्तीर्थस्नानादिकल्पोक्तफलावाप्त्यर्थं श्रीपरमे-
श्वरप्रीत्यर्थं चास्मिन्नमुक्ततीर्थे स्नानमहं करिष्ये । एवं यथादेशं यथा-
कालं यथाकामं देशकालोल्लेखनपूर्वकं संकल्पं कृत्वा दशविधस्नानानि
कुर्यात् । तत्र भस्मगोमयमृत्तिकास्नानानि सर्वप्रायश्चित्तोक्तप्रकारेण
कुर्यात् । यद्वा मा नस्तोक इति मन्त्रेण भस्मना प्रथमम् । गन्धद्वारा-
मिति मन्त्रेण गोमयेन द्वितीयम् । स्योना पृथिवीति मृत्तिकया तृती-
यम् । आपो हि षेति मन्त्रेणोदकेन चतुर्थम् । गायत्र्या गोमूत्रेण पञ्च-
मम् । गन्धद्वारामिति गोमयेन षष्ठम् । आप्यायस्वेति क्षीरेण सप्तमम् ।
दधिक्लाव्ण इति दध्नाऽष्टमम् । घृतं मिमिक्ष इति घृतेन नवमम् । देवस्य
त्वेति कुशोदकेन दशमम् । अत्र कुशोदकेन स्यामीति मन्त्रशेषः । ततः—

ॐ नमामि गङ्गे तव पादपङ्कजं सुरासुरैर्वन्दितदिव्यरूपम् ।

भुक्तिं च मुक्तिं च ददासि नित्यं भावानुसारेण सदा नराणाम् ॥

ॐ सागरस्वननिर्घोष दण्डहस्त सुरान्तक ।

अगत्प्रवृत्तगन्मर्दिन्नमामि त्वां सुरेश्वर ॥

तीक्ष्णदंष्ट्र महाकाय कल्पान्तदहनोपम ।

भैरवाय नमस्तुभ्यगनुज्ञां दातुमर्हसि ॥

इत्युक्त्वा नाभिमात्रे जले नद्यां प्रवाहाभिमुखः स्थादरे तटाके च
सूर्याभिमुखः स्थित्वा

ॐ नमो देवदेवाय शितिकण्ठाय दण्डिने ।

रुद्राय चापहस्ताय चक्रिणे वेधसे नमः ॥

सरस्वती च सावित्री षेदमाता गरीयसी ।

संनिधात्री भवत्यत्र तीर्थे पापप्रणाशिनी ॥

ॐ प्रपद्ये धरुणं देवमम्भसां पतिमूर्जितम् ।

याचितं देहि मे तीर्थं सर्वपापापनुत्तये ॥

ॐ हिरण्यशृङ्गं वरुणं प्रपद्ये तीर्थं मे देहि याचितः ।
यन्मया मुक्तमसाधूनां पापेभ्यश्च प्रतिग्रहः ॥
यन्मे मनसा वाचा कर्मणा वा दुष्कृतं कृतम् ।

तन्न इन्द्रो वरुणो बृहस्पतिः सविता च पुनन्तु पुनः पुनः ॥
नमोऽग्नयेऽप्सुमते नम इन्द्राय नमो वरुणाय नमो वारुण्यै नमोऽग्ध्यः ।
यदपां क्रूरं यदमेध्यं यदशान्तं तदपगच्छतात् ।
अत्याशनादतीपानाद्यच्च उग्रात्प्रतिग्रहात् ॥
तन्नो वरुणो राजा पाणिना ह्यवमर्शतु ।
सोऽहमपापो विरजो निर्मुक्तो मुक्तकिल्बिषः ॥
नाकस्य पृष्ठमारुह्य गच्छेद्ब्रह्मसलोकताम् ।
यश्चाप्सु वरुणः स पुनात्वघमर्पणः ॥

इति मन्त्रानुष्ठवा बद्धशिखां पुरतः कृत्वा त्रिवारमवगाह्य शरीरं
प्रक्षाल्याऽऽपो हि षेति नवैर्चसूक्तेन मार्जनं विधायाद्बुधमूलेन जलं प्रद-
क्षिणमालोडयेत् । तत्र मन्त्रः—इमं मे गङ्गा इत्यस्य मेघः(धाः)सिन्धुर्नद्यो
जगती । जलालोडने वि० । ॐ इमं मे गङ्गे०मया । इत्यालोड्य याः
प्रवत इत्यस्य वसिष्ठो नद्यो जगती० । तीर्थाभिमर्शने वि० । ॐ याः
प्रवतो निवत०भवन्तु । इति तीर्थमभिसृज्य यथाशक्ति पवित्राब्जिङ्गम-
न्त्रान्पठित्वा तत्तत्तीर्थमाहात्म्योक्तमन्त्रैरर्घ्याणि दद्यात् । सामान्यार्घ्य-
दानमन्त्रास्तु—

नमः कमलनाभाय नमस्ते जलशायिने ।
नमस्तेऽस्तु हृषीकेश गृहाणार्घ्यं नमोऽस्तु ते ॥ १ ॥
एहि सूर्य सहस्रांशो तेजोराशे जगत्पते ।
अनुकम्पय मां भक्त्या गृहा० ॥ २ ॥
विष्णुपादाब्जसंभूते गङ्गे त्रिपथगामिनी(नि) ।
भागीरथीति विख्याते गृहा० ॥

इत्यर्घ्याणि दत्त्वा, कर्तं चेत्यघमर्पणं कृत्वाऽऽचम्य, ॐ नमो नारा-
यणायेत्यष्टाक्षरमन्त्रम्, ॐ वृषदादिवेन्मुमुक्षानः स्थिन्नः स्नात्वी मला-
दिव । पूतं पवित्रेणेवाऽऽज्यमापः शुन्धन्तु मेनसः । ॐ तद्विष्णोः परमं०
ततम् । इति जपित्वा विष्णुं च स्मृत्वा केशवादिदामोदरान्तैर्द्वादशनाम-
भिर्द्वादशकृत्व आप्णुत्य गायत्र्या शरीरे जलमभिपिच्य

नन्दिनी नलिनी सीता मालती च महापगा ।
 विष्णुपादाब्जसंभूता गङ्गा त्रिपथगामिनी ।
 भार्गीरथी भोगवती जाह्नवी त्रिदशेश्वरी ॥
 द्वादशैतानि नामानि यत्र यत्र जलाशये ।
 स्नानयुक्तः सदा ब्रूयात्तत्र तत्र वसाम्यहम् ॥

इति गङ्गावाक्यं पठित्वा नाभिमात्रजले तिष्ठन्स्नानाङ्गतर्पणं कुर्यात् ।
 तच्चेत्थम्—यज्ञोपवीती प्राङ्मुखः साक्षताभिरङ्घ्रिः, ब्रह्मादयो ये देवा-
 स्तान्देवांस्तर्पयामि । भूर्देवांस्तर्पयामि । भुवर्देवांस्तर्पयामि । स्वर्देवां-
 स्तर्प० । भूर्भुवः स्वर्देवांस्तर्पयामीति पञ्चमन्त्रैरेकैकमञ्जलिं देवतीर्थेन
 दत्त्वा, उदङ्मुखो निवीती सयवाभिरङ्घ्रिः प्राजापत्यतीर्थेन कृष्णद्वैपा-
 यनादयो य ऋषयस्तानृषींस्तर्प० । भूर्ऋषींस्तर्प० । भुवर्ऋषींस्तर्प० ।
 स्वर्ऋषींस्तर्प० । भूर्भुवःस्वर्ऋषींस्तर्प० । इति पञ्चभिर्द्वौ द्वावञ्जली
 दत्त्वा दक्षिणामुखः प्राचीनावीती पितृतीर्थेन सतिलाभिरङ्घ्रिः सोमः
 पितृमान्यमोऽङ्घ्रिस्वानग्निष्वात्ता अग्निः कव्यवाहनादयो ये पितरस्ता-
 न्पितृंस्तर्प० । भूःपितृंस्तर्प० । भुवःपितृंस्तर्प० । स्वःपितृंस्तर्प० । भूर्भुवः-
 स्वःपितृंस्तर्पयामीति त्रिस्त्रिस्तर्पयित्वा तीरमेत्य

अग्निदग्धाश्च ये जीवा येऽप्यदग्धाः कुले मम ।

भूमौ दत्तेन तोयेन तृप्ता यान्तु परां गतिम् ॥

इति मन्त्रेणाञ्जलिं तटे निक्षिप्य

ये केचास्मत्कुले जाता अपुत्रा गोत्रिणो मृताः ।

ते गृह्णन्तु मया दत्तं वस्त्रनिष्पीडनोदकम् ।

इति वस्त्रं तीरे निष्पीड्योपवीती

यन्मया दूषितं तोयं शारीरमलसंभवात् ।

तद्दोषपरिहारार्थं यक्षमाणं तर्पयाम्यहम् ॥

इति यक्षतर्पणं कृत्वा

ज्ञानतोऽज्ञानतो वाऽपि यन्मया दुष्कृतं कृतम् ।

तरक्षमस्वासिलं देवि जगन्मातर्नमोऽस्तु ते ॥

इति नदीं क्षमापयेत् । इति स्नानविधिः ।

अथ तर्पणम् । तच्च जले करणपक्ष आर्द्रवासा एव जानुमात्राधिक-
 जले स्थित्वाऽऽचम्य प्राणानायम्य देशकालौ संकीर्त्य देवर्षिपितृवृत्ति-

द्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थममुकतीर्थे देवर्षिपितृतर्पणं करिष्यमाणतीर्थ-
श्राद्धाङ्गन्तर्पणं च तन्त्रेण करिष्य इति संकल्प्य देवर्षितर्पणं प्रजापति-
स्तृप्यत्मित्यादि कृत्वा प्राचीनावीती दक्षिणामुसः सतिलजलेन नित्यतर्प-
णवत्पितृतर्पणं कृत्वा सर्वोद्देशेन तिलाञ्जलिं दद्यात् । तत्र मन्त्रः—

देवासुरास्तथा नागा यक्षगन्धर्वराक्षसाः ।

पिशाचा गुह्यकाः सिद्धाः कूष्माण्डास्तरवः सगाः ॥

जलेचरा भूनिलया वाय्वाधाराश्च जन्तवः ।

तृप्तिमेतेन यान्वाशु महत्तेनाम्बुनाऽसिलाः ॥

नरकेषु समस्तेषु यातनासु च ये स्थिताः ।

तेषामाप्यायनायैतर्हीयते सलिलं मया ॥

ये बान्धवाबान्धवा यः येऽन्यजन्मनि बान्धवाः ।

ते तृप्तिमखिलां यान्तु ये चास्मत्तोऽभिकाङ्क्षिणः ॥

यत्र क्वचनसंस्थानां क्षुत्तृष्णोपहृतात्मनाम् ।

इदमक्षय्यमेवास्तु मया दत्तं तिलोदकम् ॥

आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं० अतीतकुलको० तिलोदकम् । इति मन्त्रैस्तर्पणं
कुर्यात् । तीरे तर्पणपक्षे शुष्के वाससी परिधाय बहिरास्तीर्य तस्मिंस्तर्प-
येदिति तर्पणविधिः ।

अथ तीर्थश्राद्धप्रयोगः । देशकालोत्कीर्तनान्ते प्राचीनावीती पित्राद्या-
त्तान्तान्पितृन्सकृन्महालयवदुच्चार्यतेषां तृप्त्यर्थं तीर्थश्राद्धं सदैवं सपिण्डं
पार्वणैकोद्दिष्टविधिनाऽन्नेन हविषा सद्यः करिष्य इति संकल्प्य क्षेत्रवासि-
नोऽन्यानपि च ब्राह्मणान्महालयवन्निमन्त्र्याभ्यावाहनविप्राङ्गुष्ठनिवेशन-
तृप्तिप्रश्नविकिरविसर्जनवर्जं सकृन्महालयवत्प्रयोगः । महालयपदस्थाने
तीर्थपदोच्चारणम् । इदं विष्णुरित्यादि विष्णो हृद्यं रक्षस्वेत्यन्तस्यान्न-
निवेदनैकदेशस्य लोपः । अत्र धूरिलोचनौ पुरुवरार्द्रवौ वा देवौ ।
पिण्डदान आप्तपिण्डस्य पुरस्तादाब्रह्मणो ये पितृवंशजाता इत्यादि-
मन्त्रैः पिण्डान्तरदानं महालयवत् । पिण्डांस्तु तीर्थजल एव क्षिपेत् ।
इति तीर्थश्राद्धप्रयोगः ।

अथ तीर्थश्राद्धानुकल्पाः । पाकाभाव आमश्राद्धं हिरण्यश्राद्धं
वा कुर्यात् । तत्राप्यर्घ्यावाहनादीनां लोप एव । अत्राप्यशक्तो पूर्वोक्तानु-
कल्पानामन्यतमेन कार्यम् । केवलैकपिण्डात्मकमप्युक्तमत्यशक्तं प्रति
त्रिस्थलीसितुसारे । तद्यथा—पूर्वोक्तपिण्डद्रव्याणां सक्त्वादीनामन्यत-
मेनैकं पिण्डं कृत्वा संक्षेपतीर्थश्राद्धं करिष्य इति संकल्प्य

पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः ।

मातामहस्तापिता च प्रमातामहकादयः ॥

तेषां पिण्डो मया दत्तो ह्यक्षय्यमुपतिष्ठताम् ।

इति मन्त्रेणैकं पिण्डं दद्यादिति । तर्पणाशक्तौ तु आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तमिति मन्त्रद्वयेनैव तर्पणम् । तीर्थश्राद्धानन्तरं यथाविभवं तीर्थपूजां कृत्वा तदुद्देशेन ब्राह्मणान्सुवासिनीश्च यथाशक्ति भोजयित्वा दीनानाथादीन्परितोष्य स्वयं सुहृद्युक्तः श्राद्धशेषं भुञ्जीत । तद्दिन उपवासपक्षे श्राद्धशेषमवजिघ्रेदिति । इति तीर्थप्राप्तिदिनकृत्यम् ।

द्वितीयादिदिने नित्यं वत् स्नानतर्पणतीर्थपूजनब्राह्मणभोजनादि यथाशक्ति कुर्यात् । विशेषं तु तृतीर्थमाहाख्योक्तप्रकारेण कुर्यात् । एवं यात्रां कृत्वा प्रत्यागत्य शोमने मुहूर्ते गृहप्रवेशं कृत्वा पूर्वोक्तघृतश्राद्धघट्टघृतश्राद्धं कुर्यात् । तत्र सर्वान्पितृनुच्चार्यतेषां तृप्त्यर्थममुकतीर्थात्प्रत्यागमननिमित्तं घृतश्राद्धं करिष्य इति संकल्पवाक्ये विशेषः । अन्यत्समानम् । केचिदधिश्राद्धं कार्यमित्याहुः । तत्पक्षे दधिश्राद्धं करिष्य इति संकल्पः । अत्र दध्नः प्राधान्यम् । अन्यत्तु व्यञ्जनत्वेन देयमिति । इति यात्रोत्तरश्राद्धम् ।

इति श्रीमच्चित्तपावनकेळकर० श्राद्धमञ्जर्यां सामान्यसर्व-
तीर्थापयोगी तीर्थविधिः ।

अथ प्रयागयात्रायां विशेषः । प्रयागयात्रां करिष्य इति संकल्पः । आन्तरालिकतीर्थानां प्रासङ्गिकत्वान्नैव संकल्पोल्लेखः । मुण्डननिर्णयस्तूक्तः प्राक् । समर्तृकाणां स्त्रीणां सर्वकेशसमुदायस्य द्यद्बुलमात्रं छेदनमुक्तं तद्विधिग्रन्थान्तरे । समर्तृका स्त्री शरीरमलापकर्षणस्नानं कृत्वा भर्तृनुज्ञां गृहीत्वा देशकालौ स्मृत्वा मम जन्मभृत्यद्ययावन्मनोवाक्कायकर्माभिज्ञानितोऽज्ञानतश्च संभावितानां महापातकादीनां प्रकीर्णकान्तानां नवविधानां बहुविधानां सर्वेषां पापानां रहस्यकृतानां प्रकाशकृतानां सकृत्कृतानामभ्यस्तानां च तथा सामिलापपरपुरुषनिरीक्षणसंभाषणसंभोगादिजनितपापानां रजस्वलावस्थाजनितसंपर्कादिपातकानां भर्तृमनोभङ्गाश्लेषादिविविधपातकानां चापनोदार्थमस्मिन्प्र-

यागे गङ्गायमुनासरस्वतीत्रिवेणीसंगमे स्नानमहं करिष्ये । तत्राऽऽदौ भर्तु-
र्दीर्घायुरारोग्यतासिद्ध्यर्थमखण्डितसौभाग्यावाप्त्यर्थं च त्रिवेण्यां वेणी-
प्रदानं करिष्ये इति संकल्प्य गङ्गादिपूजां कृत्वा, अग्रतो द्यङ्गुलमात्रां
वेणीं कर्त्र्यां कर्त्रितां कुङ्कुमादिचर्चितां रत्नसुवर्णाद्यलंकृतां वेणवपात्रे
निधाय तत्पात्रमञ्जलौ गृहीत्वा भर्तारमवेक्षमाणा तं प्रार्थयेत् ।

अपराधसहस्राणि जातानि मम मोहतः ।

तत्सर्वं मे प्रसन्नेन मनसा क्षन्तुमर्हसि ॥

त्वत्प्रसादान्मया भोगाः सर्वे भुक्ताः सहस्रशः ।

आनीताऽस्मिन्प्रयागाख्ये तीर्थे कामफलप्रदे ॥

गङ्गायमुनयोर्यत्र सरस्वत्याश्च संगमः ।

वेणीतिप्रथिता लोके भाग्यसौभाग्यवर्धिनी ॥

तत्र वेणीं प्रयच्छामि यद्याज्ञा स्वामिनो भवेत् ।

इत्युक्त्वा तथैव कुर्विति भर्तुराज्ञां गृहीत्वा

वेण्यां वेणीप्रदानेन सर्वं पापं प्रणश्यतु ।

जन्मान्तरेष्वपि सदा सौभाग्यं मम वर्धताम् ॥

इति मन्त्रेण त्रिवेणीसंगमे वेणीं निक्षिपेत् । भर्ता च—

सुमङ्गलीरियं वधूरिमां समेत पश्यत ।

सौभाग्यमस्यै दत्त्वायाथास्तं विपरेतन ॥

इति मन्त्रं पठेत् । इमं मन्त्रं विप्राः पठेपुरिति कौस्तुभे । ततः स्त्री

स्नात्वा त्रिवेणीं पूजयित्वा तत्प्रीतये नानासौभाग्यद्रव्यवस्त्रकञ्चुकाभ-
रणादियुतं वंशपात्रं दद्यात् । तत्र मन्त्रः—

वंशपात्रमिदं श्रेष्ठं वंशसौभाग्यवर्धनम् ।

दानानागुत्तमं दानमतः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥

ततो वेणीदानपूर्णतासिद्ध्यर्थं ब्राह्मणान्दक्षिणया सुवासिनीः सौभा-
ग्यद्रव्यकञ्चुक्यादिभिस्तोषयेत् । इति वेणीदानविधिः ।

अथ प्रत्यहं गङ्गाप्रार्थनामन्त्राः—

महापापादिपापं च नानायोनिषु यत्कृतम् ।

ज्ञानतोऽज्ञानतो वाऽपि द्रव्यलोभेन यत्कृतम् ॥

* ख. पुस्तके समाधे—सिन्दूरं कंदमूलं चैव ताम्बूलं च सपूजकम् । कण्ठमूत्रं ताटपत्रं हरिद्रां
धैव कंचुकीम् । सौभाग्याष्टकयुक्तानि दद्याच्छर्पाणि पोटश ।

परद्रोहादिकं पापं सर्वदा यन्मया कृतम् ।
मृतं भावि वर्तमानमाद्रं शुष्कं च यत्कृतम् ॥
एते वै सर्वपापीया नश्यन्तु मम जाह्नवि ।

अर्घ्यमन्त्रस्तु—ब्रह्मकमण्डलूद्भूते गङ्गे त्रिपथगामिनि ।
त्रैलोक्यवन्दिते देवि गृहाणार्घ्यं नमोऽस्तु ते ॥

यमुनाप्रार्थनामन्त्रः—

आदित्यदुहिते दे(तर्दे)वि यमज्येष्ठे यशस्विनि ।
त्रैलोक्यवन्दिते पुण्ये पापं मे यमुने हर ॥
गतं पापं गतं दुःखं गतो मे पापसंचयः ।
निष्पापो यमुने देवि प्रसादात्तव नान्यथा ॥

यमुनार्घ्यमन्त्रः—आदित्यदुहिते दे(तर्दे)वि यमज्येष्ठे यशस्विनि ।
त्रैलोक्यवन्दिते देवि गृहा ० ॥

अत्र स्नानकाले नाभिमात्रजले तिष्ठन्यमं तर्पयामीत्यादिचतुर्दशम-
न्त्रैर्यमतर्पणं कुर्यादिति विशेषः । स्वरस्वतीप्रार्थनामन्त्रः—

गङ्गायमुनयोर्मध्ये स्थिताऽसि त्वं सरस्वति ।
उद्धारार्थं तु लोकानां मामुद्धर भवार्णवात् ॥

सरस्वत्यर्घ्यमन्त्रः—

गङ्गायमुनयोर्मध्ये या च गुप्ता सरस्वती ।
त्रैलोक्यवन्दिते देवि गृहा ० ॥ इति ।

अथ प्रसङ्गादस्थिप्रक्षेपविधिः ।

यावदास्थि मनुष्याणां गङ्गातोये^१ च तिष्ठति ।
तावत्स देही स्वर्गस्थः कुरुतेऽमृतभोजनम् ॥
नरकस्थो दिवं याति स्वर्गस्थो मोक्षमाप्नुयात् ।
अन्तर्दशाहे यस्यास्थि गङ्गातोये निमज्जति ॥
न तस्य पुनरावृत्तिर्ब्रह्मलोकात्कथंचन ।

इति पुराणोक्त्या गङ्गायामेवासौ विधिः । ब्रह्माण्डे तु तीर्थ-
सामान्ये विहितः ।

ग्रन्थान्तरे—अस्तंगते गुरौ शुके तथा मासे मलिम्लुचे ।

गङ्गायामस्थिनिक्षेपं न कुर्यादिति गौतमः ॥ इति ।

तथा—पुत्रो वाऽप्यथवा भ्राता सपिण्डः शिष्य एव वा ।
 तीर्थप्रक्षेपणार्थाय अस्थिशुद्धिं समाचरेत् ॥
 सुमुहूर्ते शुभे वारे सुलग्ने विष्टिवर्जिते ।
 त्रिपादं भुवनक्षत्रं धनिष्ठापञ्चकं तथा ॥
 गुरुभौमार्कवारांश्च त्यक्त्वा बाह्य(ब्राह्म)र्क्षसंयुते ।
 अस्थ्युद्धारं प्रकुर्वीत यथोक्तविधिना द्विजः ॥ इति ।

अथास्थिशुद्धिप्रयोगः । देशकालौ संकीर्त्यामुकगोत्रस्यामुकशर्मणोऽ-
 स्क्षाममुकतीर्थे नयनाधिकारार्थमास्थिशुद्धिं करिष्य इति संकल्प्य सचैलं
 स्नात्वा यत्र तानि निखातानि भवेयुस्तां भुवं पञ्चगव्यैः प्रोक्षयेत् । तत्र
 मन्त्राः । गायत्र्या गोमूत्रेण । गन्धद्वारामिति गोमयेन । आप्यायस्वेति
 पयसा । वधिक्रावण इति वृध्ना । शुक्रमसीत्याज्येन । देवस्य त्वा० हस्ताभ्यां
 प्रोक्षामीति कुशोदकेन । तत उपसर्पेति चतसृणां शङ्खः पितरस्त्रिद्विपू ।
 भूपार्थनखननमृदुद्धरणस्थिग्रहणेपुं क्रमेण वि० । उपसर्प मातरमिति
 मन्त्रेण भूमिं प्रार्थ्य, उच्छ्वस्वेति स्नात्वा, उच्छ्वस्मानेति मृदमुच्छृत्य,
 उक्ते स्तभ्नामीत्यस्थिग्रहणं कृत्वा जलाशयमेत्य तानि प्रक्षाल्यास्थीनि
 स्पृष्ट्वा विधिना स्नायात् । ग्रन्थान्तरे त्वस्थीनि पुनः पुनः स्पृष्ट्वैवाष्टोत्तर-
 शतवारं स्नायादित्युक्तम् । ततः स्पृष्ट्वैव पूर्वोक्तैः पञ्चगव्यमन्त्रैरस्थीनि
 पञ्चगव्यैः स्नापयेत् । तत एतोन्विन्द्रं स्तवामेति वृचेन शुद्धोदकेन प्रक्षाल्य
 सास्थिर्दशविधस्थानानि कुर्यात् । तत्र भस्मगोमयमृत्तिकास्नानानि
 यथोक्तविधिना कुर्यात् । अपि वा मा नस्तोक इति भस्मना गन्धद्वारा-
 मिति गोमयेन । स्योना पृथिवीति मृत्तिकया । ततः पञ्चगव्यमन्त्रैः
 पञ्चगव्यस्नानानि देवस्य त्वा० हस्ताभ्यां स्नामीति कुशोदकेन । आपो
 हि षेति वृचेन शुद्धोदकस्नानमिति । ततो वक्ष्यमाणमन्त्रैरस्थनां कुशै-
 मार्जनं कुर्यात् । ते च मन्त्राः—अतो देवेति ऋक् । एतोन्विन्द्रमिति तृचम् ।
 शुची वो हव्या इति तृचम् । अथ सूक्तानि । नतमंहो न० । इति वा
 इति मे म० । स्वादिष्ठया० वर्ग २ । ममाग्ने वर्चो० । कद्रुद्राय० ।
 इति शौनकीयादौ । ग्रन्थान्तरेऽन्येऽपि मन्त्रा उक्ताः । ते च—यदन्ति
 यच्चेति द्वादशचं सूक्तम् । पवमानः सुवर्जन इत्यनुवाकः । इमा रुद्राय
 तवसे० वर्ग २ । आ ते पितर्मरुतां० वर्ग ३ । इमा रुद्राय स्थिरधन्वने०
 वर्ग १ । इति रुद्रसूक्तानि । तमु दृहि यः० । आवो राजानं० । भुवनस्य

पितरं० । त्र्यम्बकं० । इति रुद्रमन्त्रा इति । ततोऽस्थीन्यष्टगन्धेन यक्ष-
कर्दमेन चानुलेपयेत् । अष्टगन्धं तु—

चन्दनागरुकर्पूरकस्तूरीरोचनं तथा ।

उशीरं केशरं चैव देवदार्वित्यनुक्रमात् ॥

रोचनं गोरोचनम् । उशीरं वालकम् । यक्षकर्दमश्च—

कर्पूरमगरुश्चैव कस्तूरी चन्दनं तथा ।

कक्कोलं च भवेदेभिः पञ्चभिर्यक्षकर्दमः ॥ इति ।

ततो गृहे देवतागारे जलाशये वाऽस्थीनि संपूज्य धूपैरुद्धूप्य नीरा-
ज्योपहारादि निवेदयेत् ।

ततो हिरण्यश्राद्धं कुर्यात् । तद्यथा—देशकालौ स्मृत्वाऽस्मत्पितुरमु-
कशर्मणोऽमुकगोत्रस्यास्थ्युद्धारशुद्धिनिमित्तमस्मत्पितृपितामहप्रपिताम-
हानाममुकशर्मणाममुकगोत्राणां वसुरुद्रादित्यस्वरूपाणां पार्वणेन
विधिना हिरण्यश्राद्धं करिष्य इति संकल्प्य पूर्वोक्तहिरण्यश्राद्धविधिना
श्राद्धं कुर्यात् । पुरुरवार्ववौ देवौ । अन्नेनाऽऽमान्नेन सक्तुमिर्वा पिण्ड-
दानं श्राद्धान्ते तिलतर्पणं च कुर्यात् । अकृतसपिण्डीकरणस्य तु पूर्वो-
क्तप्रकारेणैकोद्दिष्टविधिना पित्रुद्देशेनैव श्राद्धं कुर्यादिति । तत आपो हि
धेत्यादिभिरब्रह्मिर्भ्रमन्त्रैर्वारुणसूक्तैः पवमानसूक्तैः पुरुषसूक्तेन चास्थीनि
मार्जयित्वा देशकालौ संकीर्त्यास्थिशुद्धयङ्गं हवनं करिष्य इति संकल्प्य
स्थण्डिलेऽग्निं प्रतिष्ठाप्योदीरतामित्यष्टर्चनं सूक्तेनाष्टोत्तरशतं घृताक्तति-
लाहुतीर्जुहुयात् । उदीरतां शङ्खः पितरस्त्रिष्टुप् । अस्थिशुद्धयङ्गहवने
विनि० । तत्र त्रयोदशावृत्तिभिः प्रतिमन्त्रं हवनेन चतुरधिकशतमाहु-
तयो भवन्ति । अयशिष्टाश्चतस्र आहुतीरन्तिमेन मन्त्रेण मन्त्रावृत्त्या
जुहुयात् । अपि वा सूक्तान्ते स्वाहाकारं कृत्वा सूक्तावृत्त्याऽष्टोत्तरशत-
माहुतीर्जुहुयादिति । सर्वत्र पितृभ्य इदं न ममेति त्यागः । एवं होमं
समाप्यास्थीनि ताम्रमये संपुटे निक्षिपेत् । उक्तं च—

सुवर्णं मौक्तिकं रौप्यं प्रवालं नीलकं तथा ।

एतानि पञ्च रत्नानि अस्थिमध्ये विनिक्षिपेत् ॥

कुशैरावृत्य सूत्रेण क्षौमेण परिवेष्टयेत् ।

अजिनं कम्बलं दर्भां गोकेशा भूर्जपत्रकम् ॥

शाणसूत्रं ताडपत्रं ताम्रपात्रं च वेष्टनम् । इति ।

ग्रन्थान्तरे तु पट्टवस्त्रकौशेयमास्त्रिष्वेतवस्त्रनेपालशाणपट्टशुद्धमृ-
द्धिश्च वेष्टनमुक्तम् ।

एतन्मध्यस्थितास्थीनि न दुष्यन्त्यपवित्रकैः ।

रजस्वलादिकाकादिस्पर्शानोपहतानि वा ॥

मार्गे वाहकदोषैश्च नोपहन्युः कदाचन । इति ।

एवमुक्तप्रकारेण ताम्रसंपुटे प्रक्षिप्य तं वेष्टनास्थिगर्भं ताम्रसंपुटमादाय
तीर्थं गच्छेत् । मार्गे विशेषः—

मार्गे संपुटमुत्तार्य शौचमाचमनं चरेत् ।

स्नात्वा पाकादिकं कृत्वा भोजनादि समाचरेत् ॥

देवान्पितॄन्समभ्यर्च्य गच्छेत्तीर्थं यथाविधि । इति ।

काशीखण्डे च—

अस्पृष्टहीनजातिः सञ्जुचिष्मान्स्थण्डिलेशयः । इति ।

अथ तीर्थं समासाद्य पार्वणं श्राद्धमाचरेत् ।

पञ्चगव्यं समादाय वेष्टनान्यपहाय च ।

क्षालयित्वा पञ्चगव्यैः प्रागुक्तैर्मन्त्रविस्तारैः ॥

शुद्धवस्त्रे तीर्थजलैरस्थीनि क्षालयेत्पुनः ।

अष्टोत्तरशतावृत्त्या मन्त्रैः केशवनामभिः ॥

लेपयित्वा ततोऽस्थीनि गन्धैः पुष्पैः प्रपूजयेत् ।

धूपैरुद्धूप्य नीराज्य नैवेद्यं घृतशर्कराम् ॥

दत्त्वा हिरण्यवस्त्रादि गामेकां च पयस्विनीम् ।

दक्षिणां स्वानुसारेण पुण्यलोकसमृद्धये ॥

स्मृतिकौस्तुभादौ तु श्राद्धगोदानादेरनुक्तत्वाद्विकल्पः । देशकालौ
स्मृत्वा मम पित्रादेरमुकशर्मणोऽमुकगोत्रस्य समस्तपापक्षयपूर्वकब्रह्मलो-
कावाप्तये प्रयागे त्रिवेणीतीर्थेऽमुकतीर्थे वाऽस्थिप्रक्षेपमहं करिष्य इति
संकल्प्य श्राद्धपक्षे पूर्ववद्धिरण्यश्राद्धमास्थिप्रक्षेपनिमित्तं कृत्वा यथा-
शक्ति हिरण्यादि विप्रेभ्यो दत्त्वाऽस्थीनि शुद्धवस्त्रे पलाशपत्रपुटे
वा संस्थाप्य पञ्चगव्यैः क्षालयित्वा गन्धादिभिरभ्यर्च्य हिरण्यश-
कलमाल्यघृतमधुतिलैः सह मृत्पिण्डे निधाय दक्षिणां दिशमवेक्षमाणो
नमोऽस्तु धर्मराजायेति वदन् । तीर्थे प्रविश्य नाभिमात्रे जले स्थित्वाऽ-

मुकशर्मणोऽमुकगोत्रस्यास्थीन्यस्मिन्नमुकतीर्थे प्रक्षिपामि स मे प्रीतो मधतु इत्युक्त्वा नम्रो भूत्वा द्वादशाक्षरेण मन्त्रेण जलेऽस्थीनि निक्षिप्योत्थाय भास्वन्तं सूर्यमवेक्ष्य तीरमागत्य ब्राह्मणाय यथाशक्ति रजतं दक्षिणां दद्यात् । अमुकगोत्रस्येत्याद्यन्ते कृतस्यास्थिप्रक्षेपस्य साङ्गतासिद्ध्यर्थमिदं रजतं चन्द्रदैवत्यं तुभ्यमहं संपददे । इति । दशाहाम्यन्तरे तु संचयनानन्तरमेव पूर्वोक्तवेष्टनैरावेष्ट्य ताम्रपुटादौ निक्षिप्य तीर्थं गत्वा तत्र स्नानादिविधिना पूर्वोक्तप्रकारेण प्रक्षिपेदिति विशेषः । अस्थिप्रक्षेपे फलमुक्तं पुराणान्तरे—

एवमस्थीनि निक्षिप्य वंश्यस्य जनकस्य वा ।

पुत्रारोग्यधनैश्वर्ययुक्तो भवति नान्यथा ॥

दत्त्वा द्रव्यं बाहकाय पितृणामनुणो भवेत् ॥ इति ।

स्मृतिकौस्तुभे तु पुराणवचनम्—

अस्थीनि मातापितृवंशजानि नयन्ति गङ्गामपि ये कदाचित् ।

सद्बान्धवस्यापि द्यामिभूतास्तेषां च तीर्थानि फलप्रदानि ॥ इति ।

इत्यस्थिप्रक्षेपविधिः ।

अथ प्रयागे वेण्यां देहत्यागेच्छायां देहत्यागविधिः । तत्र माघमासे देहत्यागान्मुक्तिः । तदुक्तं ब्राह्मे—

ध्यात्वा विष्णुपदाम्भोजं प्रयागे विष्णुतत्परः ।

तनुं त्यजति वै माघे तस्य मुक्तिर्न संशयः ॥ इति ।

कालान्तरे देहत्यागात्स्वर्गप्राप्तिरिति पञ्चपुराणे । तत्र यथाशक्ति सर्वप्रायश्चित्तं कृत्वा स्वीयश्राद्धाधिकार्यभावे स्मृतिकौस्तुभादावुक्तप्रकारेण जीवच्छान्दं सपिण्डनान्तं विधाय यथाशक्ति ब्राह्मणेभ्यो गवादिदानानि दत्त्वा दीनानाथांश्च परितोष्य कृतोपवासः परेऽह्नि ब्राह्मणानुज्ञां गृहीत्वा देशकालौ स्मृत्वा यथाकामं फलमुल्लिरय मोक्षो मे भूयादितिच्छा चेन्ममानेकजन्मार्जिताशेषपापक्षयपूर्वकमोक्षप्राप्तिद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थमस्मिन्प्रयागे त्रिवेणीसंज्ञके गङ्गायमुनासरस्वतीसंगमे देहत्यागं करिष्य इति संकल्प्य विप्रादीन्नमस्कृत्य पुण्यस्तोत्राणि नानानं वेत्यादिपुण्यसूक्तानि द्वादशाक्षरादिमन्त्रान्, इमं मे गङ्गे यमुने सरस्वति० सितासिते० इत्यादिमन्त्रांश्च पठित्वा मनोनिग्रहेण चित्तैकाग्र्यतया

जीवपरमेश्वरयोरैक्यं भावयन्स्थूलसूक्ष्मकारणशरीरत्रयातीतो ब्रह्मैवाहं
सच्चिदानन्दस्वरूपः सर्वान्तर्यामी प्रकाशरूपोऽस्मीति वृढं भावयन्परमे-
श्वरस्य महाविष्णोः सच्चिदानन्दस्वरूपस्य विराड् रूपस्य सर्वलोकहृदया-
म्बुजमध्यगतस्य परमहंसस्य पादाम्बुजं ध्यायन्नारायणेति नामोच्चारय-
ञ्जलं प्रविशेत् । एवं भावयितुमशक्तश्चेन्मन्त्रमात्रं जपेत् । उक्तं च धाम-
नपुराणे मानसिकज्ञाने—

अच्युतोऽहमनन्तोऽहं गोविन्दोऽहमहं हरिः ।
आनन्दोऽहमशेषोऽहमजोऽहममृतोऽस्म्यहम् ॥
नित्योऽहं निर्विकल्पोऽहं निर्विकारोऽहमव्ययः ।
सच्चिदानन्दरूपोऽहं परिपूर्णोऽस्मि सर्वदा ॥
ब्रह्मैवाहं न संसारी मुक्तोऽहमिति भावयेत् ।
अशक्नुवन्भावयितुं वाक्यमेतत्सदाऽभ्यसेत् ॥

ततस्तस्य पुत्रादिरौर्ध्वदेहिकं कुर्यादिति संक्षेपः ।

इति वेण्यां देहत्यागाविधिः ।

तीर्थे पुण्यक्षेत्रे च प्रतिग्रहनिषेधः पाप्मे—

न तीर्थे प्रतिगृह्णीयात्प्राणैः कण्ठगतैरपि ।
अपि कामातुरो जन्तुरेकां रक्षति मातरम् ॥
तथैव सर्वदा विप्रस्त्यजेत्तीर्थे प्रतिग्रहम् ।
तीर्थे प्रतिग्रहो यस्तु तीर्थविक्रय एव सः ॥
विक्रीतायां तु गङ्गायां विक्रीतः स्याज्जनार्दनः ।
जनार्दने तु विक्रीते विक्रीतं भुवनत्रयम् ॥
यस्तु लौल्याद्विजः क्षेत्रे प्रतिग्रहरुचिर्भवेत् ।
नैव तस्य परो लोको नायं लोको दुरात्मनः ॥

ब्रह्मपुराणे—प्रवाहमवधिं कृत्वा यावद्धस्तचतुष्टयम् ।

तत्र नारायणः स्वामी नान्यः स्वामी कदाचन ॥

न तत्र प्रतिगृह्णीयात्प्राणैः कण्ठगतैरपि ।

अत्र प्रवाहमिति जलावध्युपलक्षणम् । अत्र प्रसिद्धनदीषु गर्भे प्रति-
ग्रहनिषेधः । प्रसिद्धतरगण्डक्यादिनदीषु तीरेऽपि प्रतिग्रहनिषेधः ।
गङ्गायां तु क्षेत्रेऽपि । गर्मादिलक्षणमुक्तं दानधर्मे—

माद्रशुकुचतुर्दश्यां यावदाप्लवते जलम् ।
तावद्गर्भं विजानीयात्तदूर्ध्वं तीरमुच्यते ॥
सार्धं हस्तशतं यावद्गर्भतस्तीरमुच्यते ।
तीराद्गव्यूतिमात्रं तु परितः क्षेत्रमुच्यते ॥

गव्यूतिः क्रोशद्वयम् । गङ्गाक्षेत्रं तु योजनमात्रम् । एकयोजनवि-
स्तीर्णं दिक्षु सीमा तदद्वयमिति भविष्यपुराणात् । अतिसंकटे प्रतिग्रहे
निष्कृतिरुक्ता पादौ—

अथ चेत्प्रतिगृह्णीयाद्वाह्यणो वृत्तिकर्पितः ।
दशांशमर्जितं दद्यादेवं धर्मो न हीयते ॥ इति ।

अन्यत्र विस्तरः । प्रयागयात्रासमाप्तौ काशीयात्रां करिष्य इति
संकल्पः । काश्यां गयायात्रां करिष्य इति संकल्पः । त्रिस्थलीयात्रां करिष्य
इति सामान्यतः प्रयागादियात्राः करिष्य इति विशेषतो वा युगपत्संक-
ल्पस्त्वेकप्रयोगविधेरभावाच्च संघटत इति महोजिदीक्षिताः । गयां गन्तु-
कामो घृतश्राद्धं कृत्वा यात्रासंकल्पं विधाय गणेशादीन्नत्वा श्राद्धशेषं
घृतमावाय कार्पटीवेपं धृत्वा प्रस्थाय क्रोशादवांग्रामान्तरं गत्वा
श्राद्धशेषं भुक्त्वा तत्रैव वसेदिति विशेषः । तदुक्तं विष्णुपुराणे—

उद्यतस्तु गयां गन्तुं श्राद्धं कृत्वा विधानतः ।
विधाय कार्पटीवेपं कृत्वा ग्रामं प्रदक्षिणम् ॥
ततो ग्रामान्तरं गत्वा श्राद्धशेषस्य भोजनम् ।
ततः प्रतिदिनं गच्छेत्प्रतिग्रहविदर्जितः ॥ इति ।

कार्पटीवेपधारणं च गमनकाल एव न तु संध्याभोजनादाविति बहवः ।
सदैव वेपधारणमिति केचित् । गयाश्राद्धमाहात्म्यं त्रिस्थलीसेतौ—

आत्मजो ह्यन्यजो वाऽपि गयाकूपे यदा तदा ।
यन्नाम्ना पातयेत्पिण्डं तं नयेद्ब्रह्म शाश्वतम् ॥

अत एव कौर्मै—गयाभिगमनं कर्तुं यः शक्तोऽपि न गच्छति ।

शोचन्ति पितरस्तस्य वृथा चास्य परिश्रमः ॥ इति ।

तस्माद्गयाकृत्यं पुत्रस्य नित्यम् । अतो यथाशक्त्यप्यनुष्ठेयम् ।
तत्रापि सकृत्करणमेव नित्यम् । तावदेव शास्त्रार्थसिद्धेः । आवृत्तिबो-
धकवीप्साद्यभावाच्च । चातुर्मास्यवत्पुनः करणे तु फलाधिक्यमिति
त्रिस्थलीसेतुसारे ।

महालये गयाश्राद्धे मातापित्रोर्मृतेऽहनि ।
कृतोद्वाहोऽपि कुर्वीत पिण्डनिर्वपणं सुतः ॥

अभिश्रवणनिषेधस्तु हेमाद्रौ—

वृद्धिश्राद्धे गयाश्राद्धे प्रीतिश्राद्धे तथैव च ।
सपिण्डीकरणश्राद्धे न जपेत्पितृसूक्तकम् ॥

वृद्धिश्राद्धे तु पितृसूक्तस्यैव निषेधः । तत्रान्यसूक्ताभिश्रवणविधा-
नात् । संन्यासिना तु श्राद्धस्थलेषु दण्डस्य दर्शनमात्रं कार्यम् । न तु
श्राद्धतर्पणादि । तदुक्तं घायवीये—

गयायां मुण्डवृष्टे च कूपे यूपे बटे तथा ।

दण्डं प्रदर्शयेद्भिक्षुः पितृभिः सह मुच्यते ॥ इति ।

जीवत्पितृको यदि प्रसङ्गेन गयां गच्छेत्तदा पितुः पित्रादीनां श्राद्धं
कुर्यात् । जीवत्पितृको मृतमातृकश्चेन्मातृश्राद्धार्थं गयां नाभिगच्छेत् ।
प्रसङ्गेन गतश्चेन्मातृश्राद्धं कार्यमेवेति त्रिस्थलीसेतौ । प्रयागादित्रिस्थ-
लीयात्रानुष्ठानादिविशेषास्त्रिस्थलीसेतौ काशीखण्डादौ च ज्ञेयाः । गौर-
वभयान्नेहोच्यन्ते । अथ गोदावरीप्रार्थनामन्त्रः—

नमो गङ्गे महागङ्गे महादेवस्य बल्लभे ।

महति त्वां महादेवि गोदावरि नमोऽस्तु ते ॥

अर्घ्यदानमन्त्रास्तु—

ब्रह्माद्रिशिखरोत्पन्ने त्रिकण्टकविराजिते ।

गृहाणार्घ्यमिदं गङ्गे प्रसीद परमेश्वरि ॥ १ ॥

त्र्यम्बकस्य जटोद्भूते गौतमस्याघनाशिनि ।

गौतमप्रार्थिते देवि गृहाणार्घ्यं नमोऽस्तु ते ॥ २ ॥

सर्वपापौघशमनी(नि) सुरासुरनमस्कृते ।

सप्तधा सागरं यासि गृहाणा० ॥ ३ ॥

सिंहस्थे गुरौ सिंहराशिगतबृहस्पतिमहापर्वनिमित्तमिति संकल्पवा-
क्योहः । कन्यागतबृहस्पतिमहापर्वनिमित्तमिति कन्यागते कृष्णायाम् ।
कृष्णाप्रार्थनामन्त्रः—

कृष्णे कृष्णाङ्गसंभूते जन्तूनां पापहारिणि ।

नमस्ते सरितां श्रेष्ठे महापापं विनाशय ॥

नमः कृष्णे महादेवि महादेवस्य बल्लभे ।

महति त्वां महाभागे कृष्णावेणि नमोऽस्तु ते ॥

अर्घ्यदानमन्त्राः-सह्याद्रिशिखरोत्पन्ने श्रीशैलोलुङ्गगामिनि ।
 कृष्णावेणीति विख्याते गृहाणार्घ्यं ॥ १ ॥
 महाबलजटोद्भूते कृष्णे ह्युभयतोमुखी(स्त्रि) ।
 वेदेन प्रार्थिते गङ्गे गृहाणार्घ्यं ॥
 बर्शनात्सर्वपापघ्नि स्पर्शनान्मोक्षदायिनि ।
 स्नानेन मुक्तिदे पुण्ये गृहाणार्घ्यं ॥ ३ ॥
 मुण्डनं चोपवासश्च गौतम्यां सिंहगे गुरौ ।
 कन्यागते तु कृष्णायां न तु तत्तीरवासिनाम् ॥

इत्यादयो विशेषा ग्रन्थान्तरतोऽनुसंधेयाः । सर्वत्रानुक्तौ गङ्गाप्रार्थना-
 र्घ्यदानमन्त्राश्चेति ।

अथ समुद्रयात्राविधिः । तत्स्नानकाल उक्तः स्कान्दे-

पुनाति पर्वणि स्नानात्तर्पणैः सरितां पतिः ।
 कदाचिदपि नैवात्र स्नानं कुर्यादपर्वणि ॥
 विना मन्त्रं विना पर्व क्षुरकर्म विना नरैः ।
 कुशाग्रेणापि तीर्थेशो न स्पष्टव्यो महोदधिः ॥

भारतेऽपि-अश्वत्थसागरौ सेव्यौ न स्पष्टव्यौ कदाचन ।

अश्वत्थं मन्दवारे तु सागरं पर्वणि स्पृशेत् ॥ इति ।

पर्वणि तु-चतुर्दश्यष्टमी कृष्णा अमावास्या च पूर्णिमा ।

पर्वण्येतानि चत्वारि रविसंक्रमणं तथा ॥ इति ।

एतानि नित्यानि । नैमित्तिकानि तु ग्रहणादीनि । क्वचित्स्थलविशे-
 षेऽपर्वण्यपि स्नानमुक्तं प्रमासखण्डे-

पर्वकाले च संप्राप्ते नदीनां च समागमे ।

सेतुचन्दे तथा सिन्धौ तीर्थेष्वन्येषु संयुतः ॥

एवमादिषु तीर्थेषु मेध्यो भवति वारिधिः ।

न कालनियमस्तत्र समुद्रे स्नानमाचरेत् ॥

देवतासमीपे सरःसरित्संगमेषु समुद्रस्नानं सदा कार्यमिति प्रायश्चित्ते-
 न्दुशेखरे । तत्रापि-

भृगुमौमदिने स्नानं नित्यमेव विवर्जयेत् ।

[*ग्रहणे रविवारे च पुत्रेप्सुर्नैतदाचरेत् ॥]

इति पुराणवचनान्द्रौमशुकवासरयोः स्नानं निपिद्धम् । पर्वणि तु मृगुमौमदिनेऽपि स्नानं भवत्येवेति गम्यते । पर्वकाले च संप्राप्त इति पूर्वोक्तबलवत्तरवचनात् । परशुरामक्षेत्रे तु सर्वदैव स्नानादि कर्तव्यम् । अत्र नियामिका सह्याद्विखण्डे परशुरामोक्तिः । सा च—

मत्क्षेत्रवासिभिः सर्वैर्नान्यैर्देशान्तरागतैः ।
 त्वं सेव्यः सर्वदा सिन्धो स्नानपानावगाहनैः ॥
 ये शापा ब्राह्मणैः पूर्वमस्पृश्याद्या महोदधे ।
 दत्तास्ते न भविष्यन्ति चतुरशीतियोजने ॥
 येऽत्र वासं करिष्यन्ति वर्णाः संकरजादयः ।
 मुक्ता एव भविष्यन्ति मत्प्रसादान्न संशयः ॥ इति ।

समुद्रदर्शनादिमहिमोक्तः स्कन्दपुराणे सह्याद्विखण्डे—

हन्त्येषं दर्शनादेव यद्विवारात्रसंचितम् ।
 स्पृष्टस्त्रिरात्रजं सम्यक्किल्बिषं निर्दहेत्सदा ॥
 सप्ताहोरात्रजं हन्ति प्रोक्षणाद्भगवानघम् ।
 पानेन पक्षजं पापं स्नानात्पक्षद्वयस्य च ॥
 संगमे च तथाऽष्टभ्यां पर्वस्नानाच्च वार्षिकम् ।
 भानावनुदिते नित्यं यः स्नाति लवणोदधौ ॥
 पूर्वोत्तरमवास्तेन पुरुपास्तर्पितास्त्रयः ।
 द्विसस्यान्तसमये यः स्नाति लवणोदधौ ॥
 कपिलायाः फलं तस्य दत्तायाः श्रोत्रिये ध्रुवम् ।
 व्यतीपाते दिनच्छिद्रे अयने विषुवे तथा ॥
 युगादौ तु नरः स्नात्वा विरजः स्यान्महोदधौ ।

दिनच्छिद्रलक्षणमाह दानकमलाकरे—

मृगुः—दिनच्छिद्रं तु कथितं तिथिकृत्योर्घटीद्वयम् ।
 नागवेदपलोपेतं तद्भेदे तत्त्वपलैर्युतम् ॥
 पलैः षोडशभिर्युक्तं नाडिकात्रितयं युतेः ।
 छेदादिसमयः प्रोक्तो दानेऽनन्तफलप्रदः ॥ इति ।

कृतिः करणम् । युतियोगः । तिथ्यादीनामादावन्ते चोक्तकालो दिनच्छिद्रमिति तत्रैव प्रयञ्चितम् ।

सामुद्रेण च तोयेन यत्तु देवादितर्पणम् ।
 क्रियते येन येषां च तेषां स्यादुत्तमा गतिः ॥
 सामुद्रेण च तोयेन यत्र नाद्यं हतं पयः ।
 तत्र स्नात्वा च पीत्वा च ब्रह्महत्यां व्यपोहति ॥
 आजन्मशतसाहस्रं यत्पापं समुपार्जितम् ।
 भस्मी भवति तत्सर्वं क्षणात्स्नानान्महोदधौ ॥
 भक्त्या यः कर्णमाधाय शृणुयाद्घोषमुत्तमम् ।
 सामुद्रं पितरस्तस्य मोदन्ते सुचिरं दिवि ॥
 दृष्ट्वा तद्रूमिसंघातं यस्तु तुष्येन्नमेन्नरः ।
 यत्कासरोपसलिलं (!) चन्द्रलोकमवाप्नुयात् ॥ इति ।

दर्शनप्रकारस्तत्रैव—

आदौ दर्शनमन्विच्छन्गृह्णीयाच्छ्रीफलं मुदा ।
 रत्नं पञ्चविधं पुष्पं ताम्बूलं च तदर्पयेत् ॥

अत्र श्रीफलशब्देन नालिकेरफलं गृह्यते । प्रार्थनादिमन्त्रांस्तु प्रयोगे
 वक्ष्यामः । अत्र मुण्डने विशेषः—

घृषभस्तत्र दातव्यः प्रवृत्ते क्षुरकर्मणि ।
 प्रथमं स्नाति यः सिन्धौ तस्यायमुदितो विधिः ॥
 ततः परं पूर्वविधिरब्धौ स्नाने प्रकीर्तितः ।
 पूर्वविधिः क्षुरकर्म विनेत्यर्थः ।
 पूर्वस्यां दिशि सुग्रीवं दक्षिणस्यां नलं स्मरेत् ।
 प्रतीच्यां च स्मरेन्मैन्दुमुदीच्यां शरभं स्मरेत् ॥
 रामं च सीतया मध्ये लक्ष्मणं च विभीषणम् ।
 अङ्गदं च हनूमन्तं स्मृत्वा स्नायान्महोदधौ ॥

अत्र तर्पणमुक्तं स्कान्दे—

पिप्पलादं विकण्वं च कृतान्तं जीवकेश्वरम् ।
 मन्युं च कालरात्रिं च निद्रां चाहर्गणेश्वरम् ॥
 वशिष्ठं वामदेवं च पराशरमुमापतिम् ।
 वाल्मीकिनं नारदं च वालखिल्यांस्तथैव च ॥
 नलं नीलं गवाक्षं च गवयं गन्धमादनम् ।
 जाम्बवन्तं हनूमन्तं सुग्रीवं चाङ्गदं तथा ॥

मैत्र्यं च द्विविदं चैव वृषभं शरभं तथा ।
 रामं च लक्ष्मणं चैव सीतां चैव यशस्विनीम् ॥
 एतांस्तु तर्पयेद्विद्वाञ्जलमध्ये विशेषतः ॥ इति ।
 एताः संतर्प्य च तथा यमतर्पणमाचरेत् ।
 यमं च धर्मराजं च मृत्युं चैवान्तकं तथा ॥
 वैवस्वतं च कालं च सर्वभूतक्षयं तथा ।
 औदुम्बरं च दध्नं च नीलं च परमेष्ठिनम् ॥
 वृकोदरं च चित्रं च चित्रगुप्तं च तर्पयेत् ॥ इति ।

स्नानोत्तरं च पूजनमुक्तं सह्याद्रिसण्डे-

पश्चात्तु सागरं भक्त्या त्वावाहनपुरःसरम् ।
 पौरुषेणाथ सूक्तेन नाममन्त्रेण वा पुनः ।
 आसनं च तथा पाद्यमर्घ्यमाचमनं तथा ॥
 स्नानं वस्त्रं तथा यज्ञोपवीतं गन्धलेपनम् ।
 पुष्पैश्च विविधैर्नागचम्पकाद्यैः प्रपूजयेत् ॥
 धूपं दीपं च नैवेद्यं षड्रसैश्च समन्वितम् ।
 ताम्बूलं दक्षिणादानं नीराजनमथो परम् ॥
 प्रदक्षिणा नमस्काराः कर्तव्या भक्तिभावतः ।
 मन्त्रैर्वेदोद्भवैर्देव्या पुष्पाञ्जलिरतन्द्रितः ॥
 ततस्तु ब्राह्मणान्सप्त पूजयेद्भक्तिसंयुतः ।
 तेभ्यश्च दक्षिणां दद्याद्यथाविभवसारतः ॥
 अन्येभ्यो दक्षिणां दद्याद्ब्राह्मणेभ्यश्च भूयसीम् ।
 कर्मणः साधुगुण्यार्थं दोग्धीं धेनुं सवत्सकाम् ॥
 स्वर्णशृङ्गो रौप्यसुरीमाचार्याय निवेदयेत् ।
 पितृणां तु ततः कुर्याच्छ्राद्धं चैव यथाविधि ॥
 यथा श्राद्धं गयायां तु मोक्षदं सागरे तथा ।
 पितृणां मोक्षकामोऽत्र श्राद्धं कुर्यात्प्रयत्नतः ॥
 यात्रायाः फलमन्विच्छन्ब्राह्मणान्भोजयेत्सुधीः ।
 दद्यात्सुवासिनीभ्यश्च कञ्चुकीकुङ्कुमादिकम् ॥
 तीर्थं प्राप्तस्तु यो विप्रो ब्रह्मणा सहशः किल ।
 न परीक्षेद्गतो विप्रान्ब्राह्मणास्तीर्थदा यतः ।
 क्रोधलोभौ त्यजेद्देवं विधिस्तीर्थस्य कीर्तितः ॥ इति ।

अयं विधिस्त्रिदिनसाध्यः । तदाह तत्रैव शौनकः—

प्राप्तेऽह्नि वपनं कुर्यादुपवासं च सागरम् ।
पूजयेत्परया प्रीत्या द्वितीये पितृतर्पणम् ॥
तृतीये तीर्थदेवानां तृप्तिदं कर्म वै चरेत् ॥ इति ।

तर्पणग्रहणं श्राद्धस्याप्युपलक्षणं शेषम् ।

अथ प्रयोगः । अत्रापि घृतश्राद्धादियात्राविधिः पूर्वोक्त एव । प्राप्ति-
दिने पानादि परित्यज्य पादचारी हस्ते पञ्च रत्नानि ताम्बूलं पुष्पाणि
नालिकेरफलं गुञ्जाक्षतादि गृहीत्वा सागरं दृष्ट्वा रत्नादि समर्प्य
साष्टाङ्गं प्रणमेत् ।

सागरः सर्वतीर्थेशः सर्वदा हरिबल्लभः ।

सर्वं हरतु मे पापं तीर्थराज नमोऽस्तु ते ॥ १ ॥

नमस्ते विश्वगुप्ताय नमो विष्णो अपां पते ।

नमो जलधिरूपाय नदीनां पतये नमः ॥ २ ॥

नमस्ते जगदाधार शङ्खचक्रगदाधर ।

देव देहि ममानुजां तव तीर्थनिपेवणे ॥ ३ ॥

ततो यथाशक्ति प्रायश्चित्तं वपनं दन्तधावनं च पूर्ववत्कृत्वा स्नानार्थं
पूर्वधन्महासंकल्पं कुर्यात् । तदशक्तौ संक्षेपतः कुर्यात् । यथा । अस्य
श्रीमन्महामगवतः सच्चिदानन्दरूपस्य श्रीमदादिनारायणस्याचिन्त्या-
परिमितशक्त्या भ्रियमाणानां महाजलौघमध्ये परिभ्रममाणानामनेकको-
टिव्रह्माण्डानामेकतमेऽस्मिन्ब्रह्माण्डकरण्डे भूर्लोकं भूमण्डले जम्बुद्वीपे
भारते वर्षे भस्तसण्डे दण्डकारण्ये भूमध्यरेखायाः पश्चिमादिग्भागे गोदा-
वर्या दक्षिणदिग्भागे कावेर्या उत्तरादिग्भागे सह्याद्रेः पश्चिमादिग्भागे
पश्चिममहोदधेः पूर्वतीरेऽस्मिन्श्रीपरशुरामनिर्मिते पुण्यक्षेत्रे लवणोदधि-
संनिधौ श्रीमदनेककोटिव्रह्माण्डघटनायासरोमविवरस्य विराड्रूपिणो
मगवतो महापुरुषस्य शेषपर्यङ्कशायिनः श्रीविष्णोराज्ञया प्रवर्तमानस्य
ब्रह्मणो द्वितीयपरार्धे श्वेतवाराहकल्पे वैवस्वतमन्वन्तरेऽष्टाविंशतितमे
महायुगेऽस्मिन्वर्तमाने कलियुगे तत्प्रथमचरणे बौद्धावतारे शालिवाह-
नशके प्रमोदनामसंवत्सरे दक्षिणायने वर्षतीर्ति भाद्रपदे मासि कृष्ण-
पक्षेऽमावास्यायां पुण्यतिथौ भृगुवारा उत्तराफल्गुनीनक्षत्रे शुक्ल-

योगे नागकरणे कन्यास्थे सूर्ये कन्यास्थे चन्द्रे सिंहस्थे मौमे तुलास्थे बुधे वृषमस्थे बृहस्पतौ तुलास्थे शुके वृश्चिकस्थे शनैश्चरे कन्यास्थे राहौ मीनस्थे केतावेवंगुणविशिष्टे पुण्यकालेऽमुकगोत्रस्या- मुकनक्षत्रेऽमुकराशौ जातस्यामुकनामधेयस्य ममेह जन्मनि जन्मान्तरे च नानायोनिषु ज्ञानतोऽज्ञानतश्च धाल्यकौमारयौवनवार्धकेषु जाग्र- त्स्वप्नसुषुप्त्यवस्थासु मनोवाक्कायकर्मभिः कामक्रोधलोभमोहमदमात्सर्यै- स्त्वक्चक्षुःश्रोत्रजिह्वाघ्राणवाक्पाणिपादपायूपस्थैः संभावितानां प्रकाश- कृतब्रह्महत्यादिमहापातकानां रहस्यकृतानां महापातकानां महापातकस- मपातकानां तत्संसर्गित्वाद्यतिपातकानां गोवधाद्युपपातकानां पिपीलि- कावधादिलघुपातकानां सृगवधादिसंकरीकरणानां कृमिकीटवधादिम- लिनीकरणानां निन्दितधनधान्यजीवनाद्यपात्रीकरणानां ब्राह्मणपीडना- न्यस्त्रीगमनादिजातिभ्रंशकरणानां विहितकर्मत्यागादिप्रकीर्णकानां च सकृत्कृतानामभ्यस्तानामत्यन्तचिरकालनिरन्तराभ्यस्तानां महापातका- दीनां प्रकीर्णकान्तानां नवविधानां बहुविधानां सर्वेषां पापानामपनो- दार्थं श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं समुद्रस्नानकल्पोक्तफलावाप्तयेऽस्मिन्क्षारमहो- दधौ स्नानमहं करिष्ये इति संकल्प्य तीरस्थपापाणमाचाराद्वालुकापिण्डं च गृहीत्वा

पिप्पलादसमुत्पन्ने कृत्ये लोकभयंकरे ।

पापाणं ते मया दत्तमाहारार्थं प्रकल्प्यताम् ॥

इति मन्त्रेण तं पापाणं वालुकापिण्डसहितं कृत्यायै समुद्रे निक्षिपेत् । ततः पूर्वोक्तप्रकारेण दशविधस्नानानि कृत्वा बद्धाञ्जलिः समुद्राभिमुख- स्तिष्ठन्प्रार्थयेत् ।

त्वं राजा सर्वतीर्थानां त्वमेव जगतः पिता ।

याचितं देहि मे तीर्थं सर्वपापैः प्रमृच्यते ॥

ॐ सागरस्वननिर्घोष दण्डहस्तासुरान्तक ।

जगत्स्रष्टर्जगन्मर्दिन्नमामि त्वां सुरेश्वर ॥

तीक्ष्णदंष्ट्र महाकाय क० महंसि ।

विश्वाची च घृताची च विश्वयोने विशांपते ।

सांनिध्यं कुरु देवेश सागरे लवणाम्मसि ॥

त्रितत्त्वात्मरुमीशानं नमो विष्णुमुमापतिम् ।

सांनिध्यं कुरु मे देव सागरे लवणाम्मसि ॥

इत्युक्त्वा नाभिमात्रे जले स्थित्वा ॐ नमो देवदेवाय० प्रणाशिनी ।
प्रपद्ये वरुणं देव० ॐ हिरण्यशृङ्गं वरुणं प्रपद्ये० मर्षणः ।

अग्निश्च यो निरनिलश्च देहो रेतोधा विष्णुरमृतस्य नाभिः ।

एतद्ब्रुवन्पाण्डव सत्यवाक्यं ततोऽवगाहेत पतिं नदीनाम् ॥

इति पठित्वा पूर्वस्यां दिशि सुग्रीवं दक्षिणस्यां नलं प्रतीच्यां मैन्द-
मुदीच्यां शरमं मध्ये श्रीरामं सीतां लक्ष्मणमङ्गदं विभीषणं हनूमन्तं च
स्मृत्वा त्रिवारमवगाह्य मार्जनादि कृत्वा पवित्रमन्त्रान्पठित्वाऽर्घ्याणि
दद्यात् । तत्र मन्त्राः—

सर्वरत्नो भवाऽश्रीमान्सर्वरत्नाकरो यतः ।

सर्वरत्नप्रधान त्वं गृहाणार्घ्यं महोदधे ॥ १ ॥

उदन्वन्सर्वतीर्थेश सर्वदा हरिवल्लभ ।

इष्टं प्रकुरु भक्तानां गृहाणार्घ्यं नमोऽस्तु ते ॥ २ ॥

नमः कमलनामायेत्यादि पूर्ववत् । ततोऽघमर्षणादि पूर्ववत्प्रानविधिं
कृत्वा नाभिमात्रे जले तिष्ठंस्तर्पणं कुर्यात् । तच्चेत्थम् । यज्ञोपवीती
साक्षताभिरद्भिर्देवतीर्थेन तर्पयेत् । पिप्पलादं तर्पयामि १ विक्रण्वं त०
२ कृतान्तं त० ३ जीवकेश्वरं त० ४ मन्युं त० ५ कालरात्रि त० ६
निद्रां त० ७ अहर्गणेश्वरं त० ८ वसिष्ठं त० ९ वामदेवं त० १० पराशरं
त० ११ उमापतिं त० १२ घाल्मीकिनं त० १३ नारदं त० १४ बाल-
सिल्यांस्त० १५ नलं त० १६ नीलं त० १७ गवाक्षं त० १८ गवयं त०
१९ गन्धमादनं त० २० जाम्बवन्तं त० २१ हनूमन्तं त० २२ सुग्रीवं
त० २३ अङ्गदं त० २४ मैन्दं त० २५ द्विविदं त० २६ वृषभं त० २७
शरभं त० २८ रामं त० २९ लक्ष्मणं त० ३० सीतां त० ३१ अथ यम-
तर्पणम् । यमं तर्पयामि १ धर्मराजं त० २ सृत्युं त० ३ अन्तरं त० ४
वैश्वस्यतं त० ५ कालं त० ६ सर्वभूतक्षयं त० ७ औदुम्बरं त० ८ दध्मं
त० ९ नीलं त० १० परमेष्ठिनं त० ११ वृकोदरं त० १२ चित्रं त० १३
चित्रगुप्तं त० १४

आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं यत्किञ्चित्सचराचरम् ।

मया दत्तेन तोयेन तृप्तिमेवाभिगच्छतु ॥

इति तर्पयित्वा पूर्ववत्प्रानाङ्गतर्पणं यक्षमतर्पणान्तं कृत्वा

ज्ञानताऽज्ञानतो वाऽपि यन्मया दुष्कृतं कृतम् ।

तत्क्षमस्वाखिलं देव तीर्थराज नमोऽस्तु ते ॥

इति क्षमाप्य पितृस्तर्पयित्वा पुरुषसूक्तेन नाममन्त्रेण वा सागरं षोडशोपचारैः संपूज्य समुद्राद्भूमिर्मधुमो उ० इत्यादिसमुद्रातिङ्गकैक(र्क)-
इमन्त्रैः समुद्राय वयुनाय सिन्धूनां पतये नमः । नदीनां सर्वासां पित्रे जुहुता विश्वकर्मणे विश्वाहा मर्त्यं हविः । इमं समुद्रं शतधारमुत्संव्य-
च्यमानं भुवनस्य मध्ये । घृतं दुहानामदितिं जनायाग्ने मा हिंसीः
परमे व्योमन् । इत्यादियजुर्मन्त्रैश्च पुष्पाञ्जलिं दद्यात् । अस्मिन्दिन
उपवासं कुर्यात् । इति प्रथमदिनकृत्यम् ।

अपरेद्युः स्नानादि कृत्वाऽपराह्णे पूर्वोक्ततीर्थश्राद्धविधिना श्राद्धं
कुर्यात् । इति द्वितीयदिनकृत्यम् ।

तृतीयदिने स्नानादि कृत्वा समुद्रप्रीतये यथाशक्ति जपहोमदानादि
कृत्वा महापूजां च कृत्वा तीरे सप्त ब्राह्मणान्सप्तसागररूपान्ध्याय-
शुपवेश्य ॐ लवणसागराय नमः १ ॐ इक्षुसागराय नमः २ ॐ
सुरासागराय० ३ ॐ सर्पिःसागराय० ४ ॐ दधिसागराय० ५ ॐ
क्षीरसागराय० ६ ॐ स्वादुसागराय० ७ इतिक्रमेणाऽऽसनाद्युपचारैर-
भ्यर्च्य वस्त्रालंकारादिभिर्भूषयित्वा यथाशक्ति प्रत्येकमामात्रानि दक्षि-
णात्वेन हिरण्यं च दद्यात् । तत आचार्यं संपूज्य तस्मै यात्रायाः संपू-
र्णकलावाप्तये दोग्धीं सवत्सां स्वर्णशृङ्गीं रौप्यगुरीमलंकृतां धेनुं दद्यात् ।
अशक्तौ तन्मूल्यं दद्यादन्येभ्यो ब्राह्मणेभ्यो भूयसीं दक्षिणां दत्त्वा यथा-
शक्ति ब्राह्मणान्भोजयेदिति तृतीयदिनकृत्यम् ।

आपत्तावेकास्मिन्नेव दिने सर्वं कुर्यात् । प्रत्यागत्य गृहप्रवेशे घृतश्राद्धं
पूर्ववत् ।

इति श्रीमच्चित्तपावनकेलक० श्राद्धमञ्जर्यां समुद्रयात्राविधिः ।

अथ प्रकीर्णकतीर्थधर्माः—

तर्पणं पितृदेवानां श्राद्धदानं सदक्षिणम् ।

तीर्थं तीर्थं च गोदानं नियतः प्राकृतो विधिः ॥

विशिष्टस्यातलिङ्गेषु वृषदानं विधीयते ।

स्नानं विलपनं पूजां देवतानां समाचरेत् ॥

ब्राह्मणानां मूर्ध्निदानं देवपूजाकराय च ।
 सर्वत्र देवयात्रायां विधिरेष प्रवर्तते ॥
 न तीर्थे पातकं कुर्यात्स्यजेत्तीर्थोपजीवनम् ।
 तीर्थे प्रतिग्रहस्त्याज्यस्त्याज्यो धर्मस्य विक्रयः ॥
 श्रौतस्मार्तक्रियां कर्तुं यो न शक्नोति मानवः ।
 तेन तीर्थानि सेव्यानि व्रतानि च तपांसि च ॥

यात्रार्थं गतस्य तु साधारण्येन तीर्थे दिनत्रयं वास आवश्यक ऊर्ध्व
 त्वैच्छिकः ।

अम्बुमध्ये गवां गोष्ठे तीर्थेष्वपि च पर्वसु ।
 राहोर्दर्शनकाले च सूतकं नैव विद्यते ॥

इदं शीघ्रमन्यत्र गमनसंभावनायां दानादिविषये ब्रह्मव्यमिति
 संक्षेपः ।

अथैकस्मिन्दिनेऽनेकश्राद्धसंपाते निर्णयः । तत्र समानदेशकालकर्तृदे-
 वताप्रधानाङ्गधर्मकाणां तन्त्रेणानुष्ठानम् । तन्त्रं यथा—अमुकश्राद्धानि
 तन्त्रेण करिष्ये इति संकल्प्य सर्वमनुष्ठानं सकृदेव कुर्यादिति । निमित्तं
 विना न श्राद्धावृत्तिः ।

श्राद्धं कृत्वा तु तस्यैव पुनः श्राद्धं न तद्दिने ।
 नैमित्तिकं तु कर्तव्यं निमित्तानुक्रमादयम् ॥

इति जायालिवचनात् । अत एव हेमाद्रिणा—अमायुगमन्वादिसं-
 क्रान्तिश्राद्धानि तन्त्रेण करिष्ये इति संकल्पवाक्यमुक्तम् । एवं युगादि-
 मन्वादिसंक्रान्तिकाम्यार्थोदयोद्यलभ्ययोगाष्टकाश्राद्धानां पिण्डरहितानां
 कालदेवतादिसमानजातीयानां विवाहाद्यनन्तरपिण्डरहितस्य दर्शश्रा-
 द्दस्य च तन्त्रेणानुष्ठानं कर्तव्यम् । एतेषामपि कालभेदेन प्राप्तौ नैव
 समासः । पिण्डरहितानां काम्याष्टकादर्शादीनां च तन्त्रमेवेत्येकः
 पक्षः । अपरस्तु दर्शयुगादिमन्वादिसंक्रान्त्यादिश्राद्धानां समानजातीयानां
 विजातीयानां वा प्रसङ्ग एवोचित इति । प्रसङ्गो नाम संकल्पादौ महा-
 तन्त्रवतः सपिण्डकस्य श्राद्धस्यैवोल्लेखः । न प्रसङ्गिनः समानाल्पत-
 न्त्रस्य पिण्डरहितस्य श्राद्धस्यैवोल्लेखः । तस्य तत्रापि ध्यानमात्रं कर्त-
 व्यम् । प्रसङ्गसिद्धिश्चोक्ता कालादर्श—

नित्यदार्शिकयोश्चोदकुम्भमासिकयोरपि ।
 दार्शिकस्य युगादेश्च दार्शिकालभ्ययोगयोः ॥

दार्शिकस्य तु मन्वादेः संपाते श्राद्धकर्मणः ।

प्रसङ्गादितरस्यापि सिद्धेरुत्तरमाचरेत् ॥ इति ।

इतरस्याल्पतन्त्रस्यापि सिद्धेरुत्तरं महातन्त्रमाचरोदित्यर्थः । माध-
वीये—काम्यतन्त्रेण नित्यस्य तन्त्रं श्राद्धस्य सिध्यतीति । देवताभेदे तु
नैव प्रसङ्गसिद्धिर्नापि तन्त्रम् । तदुक्तं तत्रैव—

नित्यस्य चोदकुम्भस्य नित्यमासिकयोरपि ।

नित्यस्य चाऽऽदिकस्यापि दार्शिकादिकयोरपि ॥

युगाद्यादिकयोश्चापि मन्वाद्यादिकयोरपि ।

प्रत्यादिकेषु चालभ्ययोगेषु विहितस्य च ॥

संपाते देवताभेदाच्छ्राद्धयुग्मं समाचरेत् ।

निमित्तानियतिश्चात्र पूर्वानुष्ठानकारणम् ॥ इति ।

श्राद्धसंपाते पाकस्य भेद एव । अशक्ती केयलीदनमात्रभेदो वा ।
गृहवाहादिना युगपन्मरणे त्वेक एव पाकः । तदाह सिन्धी भृगुः—

एककाले गतासूनां बहूनामथवा द्वयोः ।

तन्त्रेण श्रवणं कृत्वा कुर्याच्छ्राद्धं पृथक्पृथक् ॥ इति ।

अत्रापि मरणक्रमेण श्राद्धानि कर्तव्यानि । तदज्ञाने संबन्धक्रमेण ।
यद्येकः कर्ता द्वयोः पृथक्श्राद्धे कुर्यात्तदा पूर्वमृतस्याऽऽदौ कृत्वा घ्रात्वा
ततः पश्चान्मृतस्य पृथक्पाकेन कुर्यादिति कमलाकरः । एकरिमन्दिने
त्रयाणां श्राद्धं नैव कुर्यात् । तदाह सिन्धावाश्वलायनः—

नैकस्मिन्दिवसे श्राद्धं त्रयाणां कुत्रचिद्विजः ।

एकः कुर्यात्तथा प्राप्ते अन्यो भ्राता समाचरेत् ॥

भ्रातर्यविद्यमाने तु तत्परेऽद्वि समाचरेत् ।

अन्यथा श्राद्धहन्ता स्याच्छ्राद्धं संकरकृद्भवेत् ॥ इति ।

एकस्यां तिथौ मातापित्रोर्मरणे पूर्वं पितुः प्रत्यादिकं कृत्वा पश्चा-
न्मातुरिति चन्द्रिकायाम् । हेमाद्रिमते मरणक्रमेणैव । यर्गद्वयस्य दर्श-
वत्तन्त्रेण श्राद्धं कुर्यादिति कमलाकरः । पौर्वापर्याज्ञाने तु पितृपूर्वं
कुर्यादिति हेमाद्रिः । सहगमने तु तिथ्येकत्वे तन्त्रेण प्रत्यादिकश्राद्धम् ।
तिथिभेदे तत्तत्तिथौ तत्तच्छ्राद्धमिति केचित् । अन्ये तु तस्याः पतिमर-
णेन मृतप्रायत्वात्तिथ्यन्तरे सहगमनेऽपि मर्तृतिथावेव तन्त्रेण श्राद्धमि-
त्याहुः । अनेकनिमित्तप्राप्ती निमित्तक्रमेण श्राद्धानि कर्तव्यानि । यथा

दर्शं चेत्पितृक्षयाहस्तदा क्षयाहप्रयुक्तं श्राद्धं कृत्वां दर्शं कार्यम् । तदपि समाप्य ग्रहणं चेत्तन्निमित्तकमपि कृत्वा पुत्रजन्म यदि स्यात्तन्निमित्तकमपि कुर्वीत । एवं दर्शं प्रत्याब्धिकमहालयप्रसक्तावपि तथैव । तत्राऽऽदौ मध्याह्न एव सांवत्सरिकारम्भं कृत्वा ब्राह्मणविस्तारवजं महालयं कृत्वा पिण्डपितृयज्ञं कृत्वा सांकल्पविधिना दर्शश्राद्धं कुर्यात् । अन्यथाऽपराह्णे कर्मचतुष्टयासंभवात् । सति संभवे यथोक्तं कर्तव्यम् । एवमन्यत्रापि द्रष्टव्यम् । पित्राऽपि बहूनामेकस्यां तिथौ मरणे संबन्धक्रमेण मरणक्रमेण वा पृथक्पृथक्श्राद्धानि कर्तव्यानि । पार्वणैकोद्दिष्टयोर्युगपत्प्रसक्तौ पूर्वमेकोद्दिष्टं कृत्वा पश्चात्पार्वणं कुर्यात् । तीर्थश्राद्धे यत्र काश्यादावेकस्मिन्महातीर्थेऽनेकान्यग्रान्तरतीर्थान्येकदिने गम्यन्ते तदैकस्मिन्नपि दिने तत्तत्तीर्थप्राप्तिनिमित्तकानि बहूनि श्राद्धानि निमित्तक्रमेण कार्याणि । उपवासमुण्डने तु सकृदेव । यत्र तु व्याप्यतीर्थावच्छेदेन श्राद्धकरणाद्यापकतीर्थश्राद्धमपि सिध्यति तत्र प्रतिनिमित्तं नाऽऽवृत्तिः । किं तु तन्त्रेणैव श्राद्धानां सिद्धिः । यथा—गङ्गावेणीप्रयागनिमित्तकानां गङ्गाकाशीमणिकार्णिकानिमित्तकानां चेत्यादि । तत्र काशीनिमित्तकं मणिकार्णिकानिमित्तकं च श्राद्धं तन्त्रेण करिष्य इति संकल्प्यैकमेव श्राद्धं कुर्यात् । यदा तु प्रत्यासन्नप्राक्काले गङ्गायामकृतश्राद्धस्तदा गङ्गाश्राद्धं चेत्यपि वदेत् । एवं प्रयागगयादावपि द्रष्टव्यम् । यदा त्वन्योद्देशेन तीर्थं याति तदा तस्मिन्नादीनुद्दिश्याऽऽदौ श्राद्धं कृत्वा पश्चात्स्वपित्रुद्देश्यकं कुर्यादिति । श्राद्धसंपाते यादृशः श्राद्धानां प्रसङ्गस्तन्त्रं वा तेषां तर्पणेऽपि तथैव तन्त्रप्रसङ्गौ । श्राद्धावृत्तौ तु तर्पणस्याप्यावृत्तिरुक्तप्रकारेणाऽऽदावन्ते वेति दिक् ।

इति श्रीमच्चित्तपावनकेळकश्राद्धमञ्जरीं श्राद्धसंपाते निर्णयः ।

अथ श्राद्धविघ्ने निर्णयः । तत्र श्राद्धारम्भात्पूर्वमाशौचप्राप्तौ प्रत्याब्धिकमाशौचान्ते कर्तव्यम् । मासिकं नूत्तरेण सह । दर्शश्राद्धादीनां लोप एव । तत्राप्याशौचान्ते श्राद्धलोपप्रायश्चित्तार्थमुपवास इति कमलाकरः । श्राद्धारम्भोत्तरं कर्तुराशौचप्राप्तौ प्रारब्धं श्राद्धं समापनीयमेव । कर्मसमाप्तिपर्यन्तं कर्तुर्नाऽऽशौचम् । श्राद्धारम्भस्तु पाकारम्भ इत्येके । पाकसिद्धिरित्यन्ये । पाकप्रोक्षणमिति केचित् । विप्रनिमन्त्रण-

मित्यपरे । अत्राऽऽचाराद्यवस्था । भोक्तुर्दोषोऽस्त्येवेति कमलाकरः ।
 आशौचिनां गृहे श्रान्दभोजने यावन्कर्तुराशौचं तावद्भोक्तुराशौचम् ।
 आशौचान्ते भोक्त्रा सांतपनं प्रायश्चित्तं कार्यमिति मार्कण्डेयः । मास-
 मेकं व्रती भवेदिति शङ्खः । अज्ञानात्त्वेकरात्रमुपोष्य पञ्चगव्यं पिवेदिति
 च्छागलेयः । सर्वत्राभ्यासे द्विगुणमिति माधवीयादी । विप्रस्य त्वाशौच-
 प्राप्ती निमन्त्रणोत्तरमाशौचाभाव इति कमलाकरः । इदमामश्रान्दपर-
 मिति शुद्धिविवेकः । आसनदानोत्तरमाशौचाभाव इत्यन्ये । आवाहनो-
 त्तरमित्यपरे । इदमेव युक्तमिति प्रतिभाति । देहे पितृषु तिष्ठत्सु नाऽऽ-
 शौचं विद्यते क्वचिदिति ब्राह्मोक्तेः । अस्मिन्पक्षे आसनावाहनोत्तरं
 भोक्तुराशौचप्राप्ती विसर्जनपर्यन्तं नाऽऽशौचम् । आसनात्पूर्वमाशौच-
 प्राप्ती तत्स्थानेऽन्यं विप्रं निमन्त्र्य भोजयेत् । विप्रस्य भोजनसमये दानु-
 गृहे तद्धान्धवादिमरणादौ शेषमुच्छिष्टमन्नं त्यक्त्या परकीयशुद्धजले-
 नाऽऽचामेदिति हेमाद्रिः । केचित्प्रारब्धे श्रान्दे नाऽऽशौचमित्याहुस्त-
 च्चिन्त्यम् ।

अथ कर्तुर्भार्यारजोवर्शने । तत्र दार्शिकयुगादिमन्वादिसंक्रान्तिवैधृति-
 व्यतीपाताद्यावश्यकानि आमिना कार्याणि । शुद्धपत्न्यन्तरसत्त्वेऽन्नेनेव ।
 पञ्चमेऽहनि कार्याणीति कालादर्श । तत्र युक्तमिति चन्द्रिकाकारः ।
 पित्रोराब्धिकं तु तद्दिन एवान्नेन सपिण्डकं कार्यम् । मासिकेऽप्येवमेव ।
 केचिद्भार्यान्तरसत्त्वे तद्दिन एव । एकभार्यस्तु पञ्चमेऽहनि कुर्यादि-
 त्याहुः । इदं कमलाकरादीनां नाभिमतम् । तन्मत एकभार्याऽपि तद्दिन
 एव कुर्यादिति । महालयश्रान्दानि पत्न्यां रजस्वलायां सत्यामप्यन्नेनेव
 कार्याणि । सकृन्महालयश्रान्दं तु स्नातायां पूर्वोक्तकालान्तरे कार्यम् ।
 अष्टकाश्रान्दान्यारब्धानि चेदन्नेनेव । केचिन्मत उक्तान्यतममासे सकृ-
 त्कार्याणि । काम्यानां लोप एव । नैमित्तिकान्यावश्यकानि त्वामेन
 कार्याणि । अनावश्यकानां लोपः । अपुत्रकस्य स्त्री श्रान्दकर्त्री सा
 यदि रजस्वला चेत्तदाऽऽब्धिकं पञ्चमेऽहनि कुर्यात् । मासिकं तूत्तरेण
 सह । सकृन्महालयश्रान्दं पूर्वोक्तकालान्तरे । दर्शादीनां लोप एवेत्यन्यत्र
 विस्तर इति दिक् ।

इति श्रीमच्चित्तपावनकेळकरोपाभिधमहादेवात्मजयापूभट्टविरचि-
 तायां श्रान्दमञ्जरी श्रान्दविघ्ने निर्णयः ।

अथ श्रान्द्रभोजन आमाज्ञादिश्रान्द्रीयद्रव्यप्रतिग्रहे च प्रायश्चित्तानि । तत्रान्तर्दशाहे यानि श्रान्दानि तानि नवश्रान्द्रसंज्ञानि । तत्राऽऽपदि कायम् । अनापदि चान्द्रायणम् । अनापदि नवश्रान्द्रेषु कामतो मुक्तवतो विप्रस्य संवत्सरपर्यन्तं भोजनात्प्राक्मंहिताध्ययनमिति प्रायश्चित्तेन्दुशेखरे । एकादशाहे महैकोद्विटे चान्द्रायणम् । अनापदि चान्द्रं कायं च । प्रायश्चित्तान्ते पुनः संस्कार इति हेमाद्रिः । द्वादशाह आयमासिक ऊनमासिके च पादोनकायम् । अनापदि कायं पराकश्च । द्विमासिके त्रैपक्षिक ऊनपाण्मासिक ऊनाब्दे चार्धं प्राजापत्यम् । अनापदि पादोनम् । अतिकृच्छ्रो वा । त्रिमासादिसंवत्सरविमोक्षान्तेषु सपिण्डीकरणश्रान्दे चोपवासः । अनापदि कृच्छ्रः पादकृच्छ्रो वा । त्रिरात्रमुपवासः कृच्छ्रार्धं वा । प्राजापत्यमेव कृच्छ्रः । प्रथमाब्दिके द्वितीयाब्दिके तृतीयाब्दिके च पादोनकायम् । अनापदि चान्द्रम् । एषु श्रान्देषु भोजने दोष उक्तः काशिकायाम्—

मृतेऽहनि तु संप्राप्ते यावद्वदचतुष्टयम् ।
बहिः श्रान्द्रं प्रकुर्वीत न कुर्याच्छ्रान्द्रभोजनम् ॥
प्रथमेऽस्थीनि मज्जा च द्वितीये मांसमक्षणम् ।
तृतीये रुधिरं प्रोक्तं श्रान्द्रं शुद्धं चतुर्थं क्रमम् ॥ इति ।

स्मृत्यन्तरे च—

सप्तत्रिंशच्च यो मासाञ्श्रान्द्रे भुङ्क्ते तु मोहतः ।
स पाङ्क्तिद्रूपितः पापी प्रेताशी च भवेत्तु सः ॥ इति ।

चतुर्थाब्दिकादौ षट् प्राणायामाः । नक्तं वा । दर्शं षट् प्राणायामाः । अनुक्तौ पार्वणश्रान्द्रे दर्शातिदेशात्षट् प्राणायामाः । सर्वेषु श्रान्देषु दशकृत्शो गायत्र्याऽभिमन्त्रिता अपः पीत्वा संध्योपासनहोमादि यन्नित्यकर्म तत्कुर्यादिति प्रागेवोक्तम् । एतदनुक्तप्रायश्चित्तश्रान्द्रपरामिति विज्ञानेश्वरः । काम्यनैमित्तिकश्रान्देषु दोषाल्पत्वे दर्शवत्षट् प्राणायामाः । यस्मिञ्श्रान्द्रे भोक्तुर्दोषबाहुल्यं तत्र प्रायश्चित्तमपि तदनुसारेण कल्पनीयम् । उदाहरणं यथा निणयसिन्धावापस्तम्बः—

सूतके मृतके भुङ्क्ते गृहीते शशिभास्करे ।
छायायां हस्तिनश्चैव न भूयः पुरुषो भवेत् ॥ इति ।

तत्र चान्द्रायणादि प्रायश्चित्तं कल्पनीयमिति । सर्वत्र मित-
क्षरादावुक्तप्रकारेण यथोक्तं प्रायश्चित्तमाचरणीयम् । तदशक्तौ प्राय-
श्चित्तप्रतिनिधिं कुर्यात् । तत्र प्राजापत्यप्रत्याम्नायास्तु पर्यस्विनीधे-
नुदानम् । तदशक्तौ गोदानम् । तदभावे तन्मूल्यम् । धेनुमूल्यं
गोरपेक्षया पञ्चगुणम् । अद्युतगायत्रीजपः । गायत्र्या व्याहृति-
भिर्वा सहस्रतिलहोमः । गायत्र्या शतद्वयं घृताहुतयः । संहितापारा-
यणम् । प्राणायामशतद्वयम् । द्वादशविप्रभोजनम् । तीर्थोद्देशेन योजनग-
मनम् । रुद्रैकादशिनीजपः । शिरःशोषणपूर्वकद्वादश साङ्गानि स्नानानि ।
समुद्रगनदीस्नानम् । एतेषां प्राजापत्यप्रत्याम्नायानामन्यतमेन यथाधि-
कारं यथाशक्त्या(क्ति) प्रायश्चित्तमाचरणीयम् । काये पर्यस्विनीधेनुदानं
प्रत्याम्नायः । अशक्तौ प्राजापत्यत्रयम् । पराके द्वे पञ्च तिस्रो वा धेनवः ।
अशक्तौ तन्मूल्यं वा । उपवासे पञ्चगुञ्जापरिमितरौप्यदानम् । अतिकृच्छ्रे
धेनुद्वयम् । नक्तव्रते गुञ्जाद्वयपरिमितरौप्यदानं प्रतिनिधिरिति । पतित-
चाण्डालदुर्मरणादिमृतानां श्राद्धेषु द्विगुणं प्रायश्चित्तम् । गुरुद्रव्यार्थं
श्राद्धभोजने प्रायश्चित्तार्थम् । जपशीलस्य निस्पृहस्य च तदर्धम् ।
क्षत्रियादिश्राद्धेषु द्वित्रिचतुर्गुणानि प्रायश्चित्तानि ज्ञेयानि । सर्वत्राभ्यासे
द्विगुणं प्रायश्चित्तम् । आमहेमसंकल्पश्राद्धेषु तत्तदर्धानि प्रायश्चित्तानि ।
वृद्धौ प्राणायामत्रयं कृच्छ्रार्थं वा । सीमन्तनामकरणजातकर्मचूडाक-
र्माङ्गवृद्धिश्राद्धे सांतपनम् । सांतपने धेनुद्वयदानं प्रत्याम्नायः । अना-
पदि चान्द्रम । अन्यसंस्काराङ्गश्राद्धेषूपवासः । अनापदि त्रिरात्रमुप-
वासः । यतिर्व्रती ब्रह्मचारी चोक्तप्रायश्चित्तं कृत्वा त्रिनुपवासांस्त्रीन्प्राणा-
यामान्घृतप्राशनं चाधिकं कृत्वा व्रतशेषं समापयेत् । अनापदि तु द्विगुणं
प्रायश्चित्तं द्वादश प्राणायामाः पञ्चगव्यप्राशनं चेति । इति श्राद्धभोज-
नादौ प्रायश्चित्तम् ।

निमन्त्रितो विप्रो यदि प्रमादादन्यत्र भोक्तुं गच्छेत्तदा त्रिरात्रमुप-
वासं कुर्यात् । प्रमादाभावे तु प्राजापत्यम् । भोजनममये शूद्रान्त्यजा-
दिदर्शने भोजनोत्तरमाचमनपूर्वकं प्राणायामत्रयं कुर्यात् । इति ।

अथ श्राद्धकर्ता यदि श्राद्धदिने दन्तधावनं कुर्यात्तदा शतवारं
गायत्र्याऽभिमन्त्रितं जलं पिबेत् । कर्ता भार्यागमन उपवासः । अनृती

प्राजापत्यम् । वाग्लोपे विष्णुस्मरणम् । श्राद्धकर्तुः श्राद्धमोक्तुश्चोक्तनिय-
मलोपे दोपतारतम्यात्प्रायश्चित्तं कल्पनीयम् । दोपतातरथ्यं च निर्णयसि-
न्धुहेमाद्यादिग्रन्थेभ्योऽथगन्तव्यम् । विस्तरमयान्नेहोच्यते । उक्तप्राय-
श्चित्ताभावे सामान्यं प्रायश्चित्तमाचरणीयम् । तत्रानादेशे शतगायत्री-
जप इति प्रायश्चित्तेन्दुशेखरे । अत्रापि दोपबाहुल्ये जपबाहुल्यम् ।
मिताक्षरायां तु लघुदोपे त्वनादिष्टे प्राजापत्यं समाचरेदिति चतुर्विंशति-
मतम् । तत्रैवोशनसा चोक्तम्—

यत्रोक्तं यत्र वा नोक्तमिह पातकनाशकम् ।

प्राजापत्येन कृच्छ्रेण शुध्यते नात्र संशयः ॥ इति ।

प्रजापतिश्चाऽऽह—प्रमादात्कुर्वतां कर्म प्रच्यवेताध्वरेषु यत् ।

स्मरणादेव तद्विष्णोः संपूर्णं स्वादिति श्रुतिः ॥

प्रायश्चित्तान्यशेषाणि तपःकर्मात्मकानि वै ।

यानि तेषामशेषाणां कृष्णानुस्मरणं परम् ॥ इति ।

अलमतिप्रसङ्गेन । श्राद्धाकरणे दोष उक्त आदित्यपुराणे—

न सन्ति पितरश्चेति कृत्वा मनसि यो नरः ।

श्राद्धं न कुरुते तत्र तस्य रक्तं पिबन्ति ते ॥ इति ।

सुमन्तुरपि—श्राद्धात्परतरं नान्यच्छ्रेयस्करमुदाहृतम् । इति ।

श्राद्धकर्तुः फलमुक्तं कूर्मपुराणे—

योऽनेन विधिना श्राद्धं कुर्याद्वै शान्तमानसः ।

व्यपेतकल्मषो नित्यं याति नाऽऽवर्तते पुनः ॥ इति ।

सर्वं शिवम् ।

इति श्रीमच्चित्तपावनकेळकरोपाभिधमहादेवात्मजवापूभट्टविरचि-
तायां श्राद्धमञ्जरीं प्रायश्चित्तप्रकरणम् ।

क्षेत्रे भार्गवनिर्मितेऽनुधितटे राजापुरग्रान्तके

घाडग्रामसमीपवर्तिफणशीसंज्ञो लघुग्रामकः ।

तत्स्थः केळकरोपनामकमहादेवात्मजः शाण्डिलो

वापूभट्ट इमं प्रयोगमकरोत्तेनाच्युतः प्रीयताम् ॥ १ ॥

नामूलं लिखितं किञ्चित्कचिदप्यत्र पद्धतौ ।

धर्मशास्त्रनिबन्धादौ मूलवाक्यानि सन्ति च ॥ २ ॥

तानि दृष्ट्वा यथाज्ञानं निर्मिता श्राद्धमञ्जरी ।

कृपया शोधितव्ययं परोपकृतये बुधैः ॥ ३ ॥

विष्णोः प्रीतिकरा नित्यं तुलसीमञ्जरी यथा ।
 सदाऽस्तु विदुषां प्रीत्यै तथेयं श्राद्धमञ्जरी ॥ ४ ॥
 श्रीशालिवाहने शाके कराग्निमुनिभूमिते(१७३२) ।
 प्रमोदवत्सरे मार्गे मञ्जरीयं समापिता ॥ ५ ॥
 यन्नामोच्चारणाद्भूतं कर्म संपूर्णतां व्रजेत् ।
 तं नमामि महाविष्णुं शिवं च विमलेश्वरम् ॥ ६ ॥

इति श्रीमच्चित्तपावनकेळकरोपाभिधमहादेवात्मजबापूभट्टविरचिता
 श्राद्धमञ्जरी समाप्ता ॥

॥ च ॥ तथा निग्र मन्त्रोंसे भगवान् अनन्तकी प्रार्थना
॥ चाहिये—

नमस्ते देवदेवेश नमस्ते धरणीधर।

नमस्ते सर्वनागेन्द्र नमस्ते पुरुषोत्तम॥

न्यूनातिरिक्तानि परिस्फुटानि

यानीह कर्माणि मया कृतानि।

सर्वाणि चैतानि मम क्षमस्य

प्रयाहि तुष्टः पुनरागमाय॥

दाता च विष्णुर्भगवाननन्तः

प्रतिग्रहीता च स एव विष्णुः।

ताम्रात्त्वया सर्वमिदं ततं च

प्रसीद देवेश वान् ददस्य॥

इस व्रतकी कथा इस प्रकार है—

प्राचीन कालमें सुमन्तु नामके एक वसिष्ठगोत्रीय मुनि
नकी पुत्रीका नाम शीला था। पुत्री यथा नाम तथा गुण
[अत्यन्त सुशील थी। सुमन्तुने उसका विवाह

कौण्डिन्यमुनिके साथ किया था। शीलाने भाद्रपदमासके
शुक्लपक्षकी चतुर्दशीको अनन्तभगवान्का व्रत किया
और अनन्तसूत्रको अपने बायें हाथमें बाँध लिया। भगवान्
अनन्तकी कृपासे शीला और कौण्डिन्यके घरमें सभी
प्रकारकी सुख-समृद्धि आ गयी और उनका जीवन सुखिमय
हो गया।

दुर्भाग्यवश एक दिन कौण्डिन्यमुनिने क्रोधमें
आकर शीलाके हाथमें बाँधा अनन्तसूत्र तोड़कर आगमें फेंक
दिया। इससे उनकी सब धन-सम्पत्ति नष्ट हो गयी और वे
बहुत दुःखी रहने लगे। एक दिन अत्यन्त दुःखी होकर
कौण्डिन्यमुनि वनमें चले गये और वहाँ वृक्षों, लताओं,
जीव-जन्तुओं—सबसे अनन्तभगवान्का पता पूछते रहे।
दयानिधान भगवान् अनन्तने वृद्ध ब्राह्मणके रूपमें
कौण्डिन्यमुनिको दर्शन दिया और उनसे अनन्तव्रत करनेकी
कहा। शीला और कौण्डिन्यमुनि दोनोंने अनन्तव्रतकी किया
और पुनः वे सुख-समृद्धिपूर्वक रहने लगे।

अनन्तव्रत-कथाका रहस्य

(चक्रवर्ती श्रीरामाधीनजी चतुर्वेदी)

भाद्रपदमासके शुक्लपक्षकी चतुर्दशी तिथिको सम्पन्न
ले इस व्रतके महत्त्वको भगवान् श्रीकृष्णने युधिष्ठिरसे
रण प्रस्तुत किया है। जब युधिष्ठिर अपने भाइयों एवं
के साथ वनवासमें अनेक कष्ट सह रहे थे, उस समय
गने उन्हें कष्टसे छुड़ानेके लिये अनन्तव्रत करनेका
दिया था तथा जिसने इस व्रतका अनादर किया था
भी बताया था। जिसमें अनन्तभगवान्के विश्वरूप
ग्रन्थियाले प्रतीकरूप सूत्रके तिरस्कारका परिणाम भी
ण्डिन्यमुनिने अपनी पत्नीकी बाहुमें बाँधे हुए उस
सूत्रको तोड़कर अग्रिममें फेंक दिया था, जिससे वे
हुए थे। यात यह थी कि कौण्डिन्यमुनि
न्या शीलासे विवाह करके उसके साथ
ये। उस समय रास्तेमें ही नदीके किनारे
ने हुए देखकर शीलाने भी अनन्तव्रत
अनन्तसूत्रको बाँध लिया, जिसके
घर धन-धान्यसे परिपूर्ण

हो गया। एक दिन कौण्डिन्यकी दृष्टि अपनी भार्याकी बाहुमें
बाँधे हुए सूत्रपर पड़ी, जिसे देखकर मुनिने स्त्रीसे कहा—
क्या तुमने मुझे व्रतमें करनेके लिये यह सूत्र बाँधा है?
उसने कहा—नहीं, यह अनन्तभगवान्का सूत्र है। किंतु
ऐश्वर्यके मदमें क्रुद्ध होकर कौण्डिन्यने उसे तोड़कर आगमें
फेंक दिया। प्रायः लोग धनके मदमें मत्थाले हो जाते हैं,
किसीको कुछ समझते नहीं और सहसा अनुचित कार्य
करने लगते हैं। जिसका परिणाम होता है कि शुभ कर्मसे
प्राप्त सम्पत्ति नष्ट होने लगती है।

कौण्डिन्यकी भी यही स्थिति हुई, जिसके कारण वे
दीन-हीन होकर पत्नीसे परामर्श कर अपने दांपत्यका मार्जन
करनेके लिये—अनन्तभगवान्से क्षमा माँगनेहेतु घर छोड़कर
वनमें चले गये। रास्तेमें जो कोई मिलता वससे अनन्तभगवान्का
पता पूछते जाते थे, किंतु अनन्तदेवका पता न मिलनेपर वे
निराश होकर वृक्षकी शाखाओं पर टटकने जा ही रहे थे कि
उसी समय एक वृद्ध ब्राह्मणने उन्हें रोक दिया और कहा—